स्वर्ण जयन्ती प्रकाशन 2013

BIHAR YOGA

रिखियापीठ सत्संग

भाग 3

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

रिखियापीठ सत्संग

भाग 3



WORLD YOGA CONVENTION 2013

GANGA DARSHAN, MUNGER, BIHAR, INDIA

23rd–27th October 2013

रिखियापीठ सत्संग 3

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

रिखियापीठ, देवघर में अक्टूबर, 1997 में
श्री स्वामीजी द्वारा दिये गये सत्संग



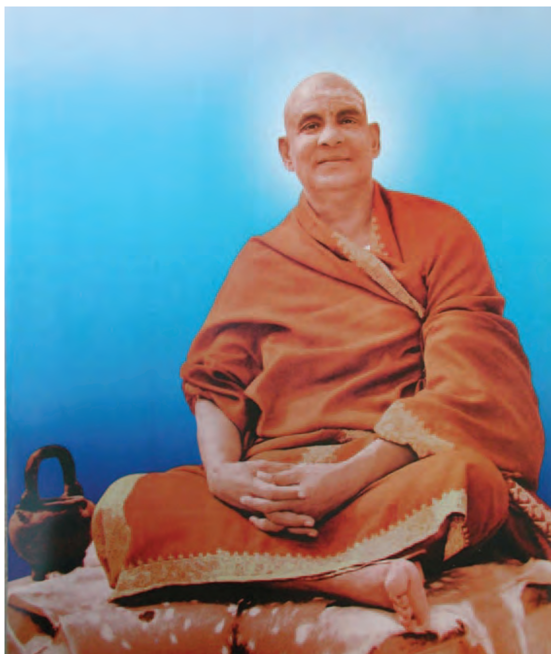
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट द्वारा *प्रथम प्रकाशन 2012*
पुनर्मुद्रण 2013

ISBN: 978-93-81620-16-8

प्रकाशक एवं वितरक—योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट,
मुंगेर, बिहार, भारत
मुद्रक—थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड
नयी दिल्ली

वेबसाइट: www.biharyoga.net
www.rikhiapeeth.net



सविनय समर्पण

स्वामी शिवानन्द सरस्वती के चरणों में
जिन्होंने स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को योग के रहस्यों की शिक्षा दी



नमो नारायण

योगविद्या भारतवर्ष की सबसे प्राचीन संस्कृति और जीवन-पद्धति है तथा इसी विद्या के बल पर भारतवासी प्राचीनकाल में सुखी, समृद्ध और स्वस्थ जीवन बिताते थे। जब से भारत में योग विद्या का ह्रास हुआ, तभी से भारतवासी गरीब, दुःखी और अस्वस्थ हैं। पूजा-पाठ, धर्म-कर्म से शान्ति मिलती है और योगाभ्यास से धन-धान्य, समृद्धि और स्वास्थ्य। भारत में सुख, समृद्धि, शक्ति और स्वास्थ्य के लिए हर व्यक्ति को योगाभ्यास करना चाहिए।

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती
रिखियापीठ, 2005



अध्याय 1

सुख और शान्ति का साधन न परिवार है, न पैसा। सुख और शान्ति का साधन तो भगवान का नाम है। चाहे सवेरे लो, चाहे शाम को लो, चाहे दोनों बार लो। अगर भगवान की कृपा हो, बटुए में पैसा हो तो फिर दिन-भर भगवान का नाम लो। सुख-शान्ति का अन्य कोई साधन है ही नहीं। यदि कोई कहे कि पैसा हो तो सब अच्छा हो जायेगा, यह सही नहीं। पैसे वाले लोग तो लाखों की संख्या में भाग-भाग कर हिन्दुस्तान आ रहे हैं। जिनके यहाँ पैसा धूल के बराबर है, जहाँ पैसा, नौकरी, बीवी, मकान वगैरह बिल्कुल सुलभ हैं, वे लोग भी भाग-भाग कर यहाँ आ रहे हैं, क्यों आ रहे हैं? जिन देशों में पैसा पानी के मोल चलता है, पैसा उनके लिए कुछ भी नहीं है, वे लोग यहाँ क्यों आ रहे हैं? क्या उनके यहाँ नौकरी नहीं मिलती? उनके यहाँ तो फोन करने से नौकरी मिल जाती है। फिर वे यहाँ क्यों आ रहे हैं?

सुख और शान्ति का साधन आश्रम जीवन, भगवान का नाम और तीर्थ स्थानों का सेवन है। यह हम लोगों की भारतीय संस्कृति है। यूरोप और अमरीका वालों ने सिखाया कि व्यापार कैसे करते हैं, ज्यादा पैसा कैसे कमाते हैं। वे अर्थ और काम की विद्या सिखा रहे हैं। जैसे आज अमरीका सोने की चिड़िया है, जहाँ चुगने के लिए सब जाते हैं, वैसे किसी जमाने में हिन्दुस्तान को भी सोने की चिड़िया कहते थे। लेकिन ऋषि-मुनियों ने देख लिया कि सोने की चिड़िया होने से आदमी रुक जाता है। तब उन्होंने लोगों से कहा, 'अगर तुम्हारे मन में वैराग्य का भाव हो, तो गृहस्थ आश्रम में मत जाओ। थोड़ी-सी भूख लगी और झट-से खाना खा लिया, यह गलत है। जब तक भूख असह्य न हो, तब तक भोजन नहीं खाना। जब तक संसार की

तरफ वासना और ममता प्रबल न हो, तब तक गृहस्थ आश्रम में नहीं जाना। थोड़ा-सा मोह और वासना तो सबको होता है। संसार में माया-मुक्त तो कोई नहीं है। मगर थोड़ी-सी वासना हो और उसके कारण व्यक्ति गृहस्थ आश्रम में घुस जाए, यह ठीक नहीं है। जब वासना बहुत तीव्र हो, तभी आदमी को गृहस्थ आश्रम में रहना चाहिए, नहीं तो एकान्त में जीवन व्यतीत करना चाहिये। हमारे शास्त्रों और महापुरुषों ने गृहस्थों के लिए भी एकान्त-सेवन का अनुमोदन किया है। मुहम्मद साहब और ईसा मसीह ने भी यही बताया कि सुख और शान्ति भगवान का नाम लेने में है। सवेरे करो तो बहुत अच्छा, समय मिले तो शाम को भी और यदि बटुवे में पैसा ज्यादा हो जाये तो दिन-भर करो। उसी में मन लगे तो काम क्यों करोगे, बटुवे में पैसा तो है ही।

जितने अमीर देश हैं, उनकी बीमारियाँ भी उसी स्तर की होती हैं। गरीब देशों में आम बीमारियाँ होती हैं, किसी को दस्त लगता है तो किसी के शरीर में खुजली होती है। यहाँ सबसे गम्भीर बीमारी टी.बी. है, जबकि वहाँ तो गम्भीर बीमारियों का अन्त ही नहीं है। दिल की बीमारी, कैंसर की बीमारी, और जो आजकल नयी बीमारी निकली है–एड्स। चिकित्सा विज्ञान में इनका कोई इलाज नहीं है। डॉक्टर ने अगर कह दिया कि तुमको कैंसर है, मानो तुमको मौत का वारण्ट मिल गया। वहाँ जवान लड़के-लड़कियों को कैंसर हो जाता है। उनके पास इतनी सुविधाएँ हैं, बड़े-बड़े डॉक्टर हैं, पर वे कुछ नहीं कर पाते। यहाँ तो पुदीन-हरा ले लिया और पेट ठीक हो गया।

यदि कोई चीनी खाये और वह पच नहीं पाये तो उस चीनी का क्या होगा?

चीनी सफेद जहर है। अगर तुम्हारे शरीर में इन्सुलिन पर्याप्त मात्रा में नहीं बन रहा तो डबलरोटी पचा सकते हो, पर शक्कर को पचाना असम्भव है। यहाँ तक कि दूध या अन्य खाद्य पदार्थों में पाई जाने वाली प्राकृतिक शर्करा को भी नहीं पचा पाओगे। जो व्यक्ति तनाव में होता है उसके शरीर में इन्सुलिन कम मात्रा में बनता है, क्योंकि उसके शरीर का परानुकम्पी नाड़ी मण्डल काम करना कम कर देता है।

जब शर्करा पचती नहीं है तब वह रक्त और मूत्र में चली जाती है। अगर पेशाब करते हो और पेशाब के चारों ओर चींटियाँ आ जाती हैं तो समझो वह चीनी की वजह से है। चीनी को नियन्त्रण में लाना बहुत जरूरी होता है।

क्या नवरात्रि के दौरान भोजन में नमक डालना चाहिए?

अगर तुम नमक नहीं खाओगे तो अच्छा है। सब्जियों में तो नमक रहता ही है। पर यह उन लोगों के लिए है जिनके शरीर में चयापचय की क्रिया धीमी होती है, जो कम मेहनत करते हैं। जो ज्यादा मेहनत करते हैं, उन्हें बहुत ज्यादा पसीना आता है। फिर उन्हें बाहर से नमक की जरूरत पड़ती है।

आजकल कई लोग भोजन में बहुत नमक डालकर खाते हैं। उससे क्या होता है? उनका खून गाढ़ा हो जाता है। बुढ़ापे में खून को बहाने वाली नलिकाएँ सिकुड़ जाती हैं। जैसे संकरी नाली से कचरा नहीं बह पाता, वैसे ही गाढ़ा खून उन नलिकाओं में से बह नहीं पाता। अगर नमक छोड़ दिया जाय तो सबसे उत्तम है। सब्जी उबाल कर ले लो। दूध लेने में भी कोई हर्ज नहीं है। उसमें नमक, चीनी, प्रोटीन और अन्य बहुत-सी चीजें होती हैं।

उबला हुआ और बिना नमक का भोजन जिगर के लिए फायदेमंद होता है। जिगर हमारे शरीर का सबसे बड़ा अंग है, उसी में गड़बड़ी होने से पीलिया की बीमारी, एनीमिया या खून की कमी और अन्य कई प्रकार की बीमारियाँ होती हैं। जिसे भी पीलिया हो वह सीधा-सादा, उबला हुआ खाना खाए तो पाँच-दस दिन में सब ठीक हो जाएगा। जैसे ही जिगर ठीक हुआ तो पीलिया ठीक हो जाता है। जिगर शराब पीने और मांस खाने से खराब होता है। बहुत मसालेदार भोजन भी जिगर पर भार डालता है। काली मिर्च, लौंग जैसे मसालों का जरूरत से ज्यादा उपयोग जिगर के लिए हानिकारक है।

मसालों का रिवाज कैसे आया? पहले तो मसाला नहीं खाया जाता था।

मसाले का यह रिवाज अफ्रीका और दक्षिण-पूर्व एशिया से आया है। वैसे इसको मसाला कहना ही गलत है। अँग्रेजी में इसे या तो काँडीमेंट कहेंगे या हर्ब कहेंगे। हर्ब का मतलब होता है, औषधि या वनस्पति। धनिया, जीरा, मिर्च, लौंग–ये सब तो वनस्पतियाँ हैं। विभिन्न देशों में कई प्रकार की वनस्पतियाँ पाई जाती हैं। काली मिर्च, हरी मिर्च, जीरा, धनिया जैसी सभी वनस्पतियों में औषधीय गुण होते हैं। इसलिए हमें इन्हें खाद्य रूप में नहीं, औषधि के रूप में उपयोग करना चाहिए। ऐसा नहीं कि धनिया और जीरा खराब हैं, मगर ये औषधियाँ हैं और इन्हें इसी रूप में खाना चाहिए, भोजन के रूप में नहीं।

उदाहरण के तौर पर धनिया है, यह गुर्दे को साफ करता है। हल्दी अन्दर के घाव को सुखाती है। जीरा पाचक है। इन सब से फायदा होता है, मगर अब दवाई को तुम खाद्य की तरह लेने लगो, तो सही नहीं। लाल मिर्च, हरी मिर्च, वगैरह ये जितनी चीजें हैं, इन्हें मत खाओ, ऐसा नहीं कहते, मगर भोजन के रूप में नहीं। जैसे हरी मिर्ची है, यह पानी के दुर्गुण को खत्म करती है। पानी के कीटाणुओं का एक ही उपचार है, हरी मिर्च। बहुत साल पहले मुझे लंदन में डॉ. राममूर्ति मिश्रा मिले, वे दूषित पानी से होने वाली बीमारी से पीड़ित थे। मैंने उनसे कहा, हरी मिर्च खाओ, ठीक हो जाओगे। उन्होंने दस दिन तक हरी मिर्च खाई और ठीक हो गये! कोई-सी भी मिर्च पानी के कीटाणुओं को खत्म करती है, पर इसका अर्थ यह नहीं कि तुम इसे हर रोज खाओ।

मेरे पति को कण्ठ में बहुत बलगम हो जाता है, उसके लिए क्या करना चाहिये?

हमारे शरीर में केवल तीन चीजें होती हैं–कफ, वात और पित्त। कफ को अँग्रेजी में म्यूकस कहते हैं। कसाई की दुकान में जाकर अगर देखो तो कभी-कभी माँस के ऊपर पतली-सी प्लास्टिक जैसी परत दिखायी देती है। उसको कहते हैं कफ। यह सारे शरीर में है, शरीर को कहीं पर भी काटो, म्यूकस की पतली-सी परत दिखायी देगी। इसमें जब छोटा-सा घाव हो जाता है, तब उसमें जो पीप-सा बनता है, उसे कहते हैं बलगम। इसका मतलब यह कि तुम्हारा जो स्वर यंत्र है, जहाँ से श्वास आती-जाती है, वहाँ पर संक्रमण है। श्वास की नली फेफड़े से जुड़ी होती है और भोजन की नली पेट से। गले में इनका संयोग होता है, और वहीं से पानी पेट की तरफ और हवा फेफड़े की तरफ जाती है। उस रास्ते से कोई जहरीली चीज जाने से वहाँ सूजन जैसी हो जाती है। श्वास नली में सिर्फ हवा जाती है, उसमें दूसरी चीज नहीं जा सकती। हवा के अलावा अगर एक कण भी उसमें गया तो आदमी तुरन्त मर जायेगा। कुदरत की क्या विचित्र चीज है, उसमें पानी नहीं जा सकता है, केवल ऑक्सीजन गैस। यदि कोई दूसरी गैस जायेगी, चाहे गोबर-गैस या लकड़ी का धुआँ, तो फिर सूजन हो जाएगी। तुमने देखा है न कि मिर्ची जलने पर खाँसी होती है। मानो अन्दर से कोई कहता है–गेट आउट।

तुम लोग शहरों में रहते हो, दिनभर वहाँ गाड़ियों के पीछे से जो धुआँ निकलता है, वह तुम्हारे फेफड़ों में जाता है। इसलिए वहाँ सबको सर्दी-

खाँसी की बीमारी है। उसे दूर करने का एक ही तरीका है, कुछ दिन किसी आश्रम या गाँव में जाओ, वहाँ शान्ति से रहो। आजकल तो आश्रम भी गन्दे शहरों में हो गये हैं। दिल्ली वगैरह के आश्रम कोई आश्रम होते हैं? आश्रम तो यह है साफ-सुथरा। हिन्दुस्तान में ऐसे कई आश्रम हैं, वहाँ जा कर रहो एकान्त में। नाड़ी-शोधन प्राणायाम करो, सवेरे-शाम थोड़ा-सा टहलो, गरिष्ठ भोजन से परहेज रखो। काले बाल वाले गरिष्ठ भोजन खा सकते हैं, मगर सफेद बाल वालों को गरिष्ठ भोजन नहीं खाना चाहिये। काले बाल वाले तो हट्टे-कट्टे, तगड़े हैं, वे कुछ भी खावें, उन लोगों की मोटर तो खूब अच्छी चलती है, पर हम सब तो पुराने मॉडल हैं।

इसलिए जहाँ पेड़ ज्यादा हों, पानी ज्यादा हो, वहाँ रोज सवेरे-शाम पन्द्रह मिनट टहलो। इस बात को याद रखना कि हवा में ऑक्सीजन के अलावा और भी कुछ होता है, जिसे आयन्स कहते हैं। आयन्स का सम्बन्ध प्राणशक्ति से है। हवा में जो ताकत होती है, उसे प्राणशक्ति कहते हैं। किसी हवा में प्राणशक्ति कम होती है, किसी में ज्यादा। हवा में यह जो प्राणशक्ति होती है, वह ऑक्सीजन के अलावा है।

ऑक्सीजन ज्वलनशील होती है, उसका शरीर पर गर्म असर होता है। इसलिये जब तुम प्राणायाम करोगे तो ठण्ढी नहीं लगेगी, तुम्हारे शरीर में गर्मी आ जायेगी। हवा जितनी शुद्ध होती है, उसकी तासीर में उतनी गर्मी होती है। हवा चाहे बर्फानी हो, मगर उसकी तासीर गर्म होगी, क्योंकि ऑक्सीजन ज्वलनशील गैस है। जब हम सांस द्वारा कुछ गर्म लेते हैं, तब हमारे शरीर में भी गर्मी उत्पन्न होती है। ऑक्सीजन हमारे शरीर के अंगों को क्रियाशील बनाती है।

क्या बुखार में ऑक्सीजन बढ़ जाने के कारण शरीर गर्म रहता है?

नहीं, मैं सामान्य शरीर की बात कर रहा हूँ। जब तुम बीमार पड़ते हो तो इसका मतलब है कि गाड़ी में कहीं कुछ गड़बड़ी है। तुम्हारी गाड़ी में कहीं चाबी अटक गयी है या प्लग में कार्बन जम गया है। समझो कि बीमार गाड़ी और स्वस्थ गाड़ी के काम अलग-अलग होते हैं। बीमारी में प्राणायाम नहीं करना। जब तुम किसी तीव्र बीमारी से पीड़ित हो तब तुम्हें योग का कुछ भी अभ्यास नहीं करना चाहिए। तीव्र बीमारी का मतलब होता है, बुखार, टाइफॉइड, पारा-टाइफॉइड, दस्त, आदि। अगर किसी दीर्घकालिक, संरचनात्मक बीमारी से पीड़ित हो, तब

योग शीघ्रता से काम करता है। संरचनात्मक बीमारी माने वह बीमारी जो शरीर में घर कर गयी है, जैसे मधुमेह या दमा। पर यदि तुम दस्त, बुखार, आदि से पीड़ित हो, और तब तुमने योगाभ्यास किया तो तुम मर भी सकते हो।

मुझे बीमारी है, मात्र यह कह देने से कोई फायदा नहीं होता। उसका इलाज खोजना चाहिए। श्वास की बीमारी का इलाज शुद्ध वायु, हल्का भोजन, थोड़ा-सा घूमना-फिरना और भगवान का नाम लेना है। 'मैं भगवान का नाम नहीं ले सकता, मुझे बहुत काम हैं, बाल-बच्चों को तकलीफ है' यह सब बहानेबाजी है। आखिर सबको एक दिन दुनिया छोड़कर जाना है, कोई भी हमेशा के लिए तो आया नहीं है। हम लोग जिस दिन दुनिया में पैदा हुए, उसी दिन साथ में वापसी टिकट भी ले आए हैं। जब तक चने के बीज को भूना नहीं जाएगा, तब तक उसमें से पौधा पैदा होता रहेगा। लेकिन ज्ञान प्राप्त हो जाए तो फिर वापस नहीं आना पड़ता। इसलिये भगवान का नाम तो याद करना ही चाहिये।

स्वामी जी, इसे राम जी से नाराजगी है, क्योंकि राम जी ने सीता का त्याग किया और सीता को बहुत कष्ट हुआ। इसलिये यह कृष्ण को ज्यादा मानती है।

नहीं, ऐसी बात नहीं है। श्री राम भले ही भगवान के आदमी थे, मगर वे एक समाज में पैदा हुए थे और जिस समाज में तुम रहते हो, उस समाज की एक मर्यादा होती है, नियम और कानून होते हैं, जिन्हें तुमको मानना पड़ेगा। राम जी मर्यादा पुरुषोत्तम थे, माने उन्होंने उस समय के समाज की सभी मर्यादाओं का पालन किया। पिता की आज्ञा है कि जंगल चले जाओ तो चले गये, क्योंकि मर्यादा है कि माता-पिता जो कुछ कहें, बच्चों को मानना चाहिये। यह इस देश की मर्यादा है। सिर्फ यहाँ की नहीं, पूरे एशिया की मर्यादा है, इस्तानबुल से लेकर जापान तक। हाँ, अब तुम कहोगे कि माँ-बाप की गलत बात का पालन क्यों किया? कैकेयी ने तो गलत बात कही थी, जिससे सारा राज्य अव्यवस्थित हो गया, बाप मर गया और अगर भरत नहीं होते तो तीनों रानियाँ भी सती हो जातीं। मगर राम जी ने समाज के बनाये हुए नियम का पालन किया।

हर समाज का एक नियम होता है। हमारे समाज में भी आज से बीस साल पहले घूँघट रहता था न? लेकिन आज घूँघट उठ गया। आज समाज की

मर्यादा यह है कि लड़की को घर से बाहर निकलकर पढ़ना चाहिए, ब्राह्मण और शूद्र को एक-दूसरे से घृणा नहीं करनी चाहिए, हिन्दू और मुसलमान को एक-दूसरे से मिलकर रहना चाहिए, यह सब आज की मर्यादाएँ हैं। पहले वैष्णव और शैव के बीच झगड़ा रहता था, याद है न? मगर आज नहीं रहता। हर जमाने में समाज अपने लिये एक व्यवस्था बनाता है। उस समय व्यवस्था थी कि यदि औरत किसी भी वजह से दूसरे के घर में रह जाये, तो फिर उस औरत को अपने पास नहीं रखना चाहिए। समाज ने यह नियम बनाकर रखा था और यह नियम अभी भी है, नहीं है क्या? सब पालन नहीं करते हैं, मगर यह नियम है तो सही। अगर राम जी ही इस नियम को नहीं मानते, तो बाकी लोग कैसे मानते?

आज के लोग पढ़े-लिखे हैं, आज के दृष्टिकोण से राम जी ने गलत किया। जब आदमी दो दिन बाहर रह सकता है, तो औरत क्यों नहीं रह सकती? प्राचीन समाज में स्त्री-पुरुष के लिये समान मर्यादाएँ नहीं बनायी गयीं, स्त्री और पुरुष में फर्क रखा गया। लेकिन आज के समाज ने इस फर्क को स्वीकारना बंद कर दिया है। यह विचारधारा पश्चिम से आयी है। समाज के पढ़े-लिखे लोग कहते हैं कि स्त्री और पुरुष के कानूनी, धार्मिक और सामाजिक अधिकार समान होने चाहिये। जब औरत विधवा होती है, तो सफेद कपड़े पहनती है। तो जब पुरुष विधुर होता है, उसे भी सफेद कपड़े पहनने चाहिये। जब स्त्री विधवा होती है, तो मंगल कार्य में नहीं जाती। विधुर पुरुष को भी मंगल कार्य में मत जाने दो। यह दोहरी मान्यता क्यों?

तुमको शायद एक बात मालूम नहीं कि वैदिक धर्म में तलाक था ही नहीं। यह कानून 1962 में बना है। पण्डित नेहरू ने संसद में हिन्दु कोड बिल पास करवाया। हिन्दुस्तान में भयंकर हल्ला हुआ, आन्दोलन पर आन्दोलन, जुलूस पर जुलूस निकले, क्योंकि हिन्दू लोग तलाक को समझते ही नहीं हैं। कहते हैं कि पति-पत्नी का तो जन्म-जन्म का सम्बन्ध होता है, तो तलाक कैसे हो सकता है। उस समय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद राष्ट्रपति थे, बहुत ही धार्मिक, सज्जन और साधु आदमी थे, उन्होंने विधेयक पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया।

अपने वैदिक धर्म में पुरुष स्त्री को तलाक नहीं दे सकता। प्राचीन काल से यही कानून रहा है। जब राम जी ने सीता को त्यागा तो वह तलाक नहीं, वियोग था। सीता जी तब भी उनकी पत्नी थीं। उनसे पैदा हुए पुत्र, कानूनन

उनके पुत्र थे, राज्य के अधिकारी थे। चाहे स्त्री और पुरुष के बीच पटे या न पटे, चाहे आदमी नालायक हो या औरत नालायक हो, चाहे आदमी या औरत बीमार हो, कोढ़ी हो, क्षयरोगी हो, कुछ भी हो, इससे फर्क नहीं पड़ता, वह औरत पत्नी ही रहेगी। पुरुष कभी भी तलाक नहीं दे सकता। यह वैदिक धर्म की मान्यता है। इससे सम्पत्ति का अधिकार सुरक्षित रहता था।

किन्तु समय बदला, लड़कियाँ पढ़-लिख गयीं। अब वे कहती हैं कि आदमी शराब पीता है, हम इसके साथ नहीं रह सकते। पढ़ी-लिखी लड़कियाँ जिस आदमी को पसन्द नहीं करेंगी, उसे सहन भी नहीं कर सकेंगी, क्योंकि पढ़े-लिखे लोगों में सहनशक्ति और समझदारी कम होती है। आदमी से कुछ गलती हुई, तो छोड़ दिया। औरत से कुछ गलती हुई, छोड़ दिया। यह पढ़े-लिखे लोगों की सोच है, क्योंकि वे बहुत संवेदनशील होते हैं। ऐसा होते-होते पण्डित नेहरू ने हिन्दू संहिता विधेयक बनाया। बहुत मुश्किल हुई बनाने में। अभी भी दुनिया में सबसे कम तलाक हिन्दुस्तान में ही होते हैं। गाँवों में तो होते ही नहीं हैं। जबकि यूरोप में सबसे ज्यादा तलाक होते हैं। कल शादी हुई और आज तलाक हो जाता है।

दुनिया में जितनी भी माताएँ हैं, वे सभी राम जैसा पुत्र चाहती हैं। कृष्ण जैसा बेटा किसी को नहीं चाहिये, क्योंकि वह तो परेशान करके रख देगा। रोज शरारत करेगा और मार खायेगा, कभी माखन चुरायेगा, कभी किसी लड़की से छेड़खानी करेगा। दुनिया में सभी राम जी की तरह आज्ञाकारी पुत्र चाहते हैं।

आज की पीढ़ी और योग

लड़कों और लड़कियों के शरीर में मूलत: अन्तर होता है। तुमने देखा होगा कि कई बीमारियाँ लड़कों में होती हैं, लड़कियों में नहीं जबकि कुछ बीमारियाँ लड़कियों में होती हैं तो लड़कों में नहीं। औरतों को मधुमेह की बीमारी बहुत कम होती है, आदमियों को ही ज्यादा होती है। इसलिये शरीर में टॉनिक भी उसी तरह से लेना चाहिये। तुम लोग जिस पीढ़ी के हो, उसमें तो तुमको योग अवश्य करना चाहिये, चाहे वह राजयोग हो या हठयोग या ज्ञानयोग। जैसे विज्ञान में रसायन शास्त्र, भौतिक शास्त्र, इत्यादि विषय होते हैं, वैसे ही योग के बहुत पक्ष होते हैं। आज की पीढ़ी के लिये योग बहुत महत्त्वपूर्ण है। मन और शरीर में जो भी कमजोरी होती है,

उसका कारण तंत्रिका तंत्र होता है। तंत्रिका तंत्र को मस्तिष्क नियंत्रित करता है। मस्तिष्क में जो विचार चलते रहते हैं, वे अनुकम्पी और परानुकम्पी तंत्रिका तंत्र पर असर करते हैं।

इस जमाने के लड़के-लड़कियों का दिमाग ही ज्यादा चलता है। अपने से पूछ कर देख लो कि तुम्हारा शरीर कितना चलता है और दिमाग कितना। तुमको पता लगेगा कि दिमाग की गतिशीलता तो प्राय: चौबीस घण्टे है जबकि शरीर की गतिशीलता कम है। कोई ऐसा अभ्यास करना चाहिये, कोई ऐसा रास्ता निकालना चाहिये, जिससे दिमाग सन्तुलित रहे। यह दिमाग भगवान का बनाया हुआ गजब का सुपर-कम्प्यूटर है। इसके अन्दर विद्युतीय परिवर्तन होते हैं। जैसे तुम कम्प्यूटर में प्रोग्रामिंग करते हो, सिस्टम एनालिसिस करते हो, वैसे ही दिमाग में भी प्रोग्रामिंग होती है, सिस्टम एनालिसिस होता है। तुम्हारे दिमाग की प्रोग्रामिंग हो चुकी है। बचपन में तुम्हारी माँ ने की है, जिसे बेसिक प्रोग्रामिंग कह सकते हैं। सात साल में बच्चे की बेसिक प्रोग्रामिंग पूरी हो जाती है। दूसरे ढंग से कहा जाए तो बच्चे की संस्कारी शिक्षा सात साल में पूरी हो जाती है। उसके बाद बच्चा जो भी सीखता है, वह बाहरी चीज सीखता है, अन्दर की चीज नहीं। बच्चे को शिक्षा देने वाली सबसे पहले माँ होती है। यदि माँ गँवार और फूहड़ होगी तो बच्चा भी गँवार और फूहड़ होगा। अगर माँ विदूषी होगी तो बच्चा भी विद्वान् होगा। पेट में रहा तो माँ का खून, बाहर आया तो माँ का दूध और माँ के साथ रहा तो माँ के संस्कार बच्चे को मिलते हैं। सात साल तक। सात साल के बाद जो स्कूल जाते हो, कॉलेज जाते हो, काका, मामा, चाचा, ताऊ वगैरह से सीखते हो, उसे कहते हैं शिक्षा। शिक्षा का मतलब वह चीज जो बाहर से सीखी जाए।

अब इसमें एक महत्त्वपूर्ण चीज है योग। योग का मतलब हुआ कि मनुष्य के दिमाग के अन्दर होने वाले कार्यों में जहाँ-कहीं गड़बड़ी होती है, उसे ठीक करना है। इस दिमाग के अन्दर जो पदार्थ है, वह बिल्कुल जेली की तरह होता है। थोड़ी-सी असावधानी हो, तो यहाँ से वहाँ हो जायेगा, सब गड़बड़ हो जायेगा। दिमाग के अन्दर जो नसें होती हैं, वे बिजली की तार की तरह नहीं होतीं, सब जेली की तरह होती हैं। हमने तो हजारों बार अपनी आँखों से देखा है। दिमाग में भी विद्युत-चुम्बकीय तरंगें बहती हैं, जो चार स्तर पर होती हैं। पहले को कहते हैं बीटा तरंग, फिर अल्फा तरंग, थीटा तरंग और डेल्टा तरंग। डेल्टा तरंग में बिजली एकदम धीमी गति में होती है, और उसका सम्बन्ध योग

से है। योग दिमाग में चलने वाली विद्युत-चुम्बकीय तरंगों को नियंत्रित करने की ताकत देता है।

दु:ख-सुख कितनी बड़ी चीज होती है! मान लो किसी का कोई प्रिय व्यक्ति मर जाये या लॉटरी में बहुत पैसा मिल जाये, तो उसके दिमाग की क्या हालत होगी। एक बार किसी आदमी को दिल की बीमारी थी, वह अस्पताल में आया। उस आदमी ने अस्पताल आने से पहले लॉटरी लगायी थी। जो डॉक्टर उसका इलाज कर रहा था, उसने एक दिन अखबार में देखा कि उसके बीमार रोगी का लॉटरी नम्बर निकला है। उसने अपने रोगी से यह नहीं कहा कि तुम्हारी लॉटरी लगी है, बल्कि यह पूछा कि अगर लॉटरी लग गयी तो क्या करोगे। रोगी बोला, 'लॉटरी क्या लगेगी, हमने तो ऐसे ही लगा दी थी।' डॉक्टर बोला, 'अगर लग गयी तो?' रोगी बोला, 'आधा पैसा तुमको दे दूँगा।' यह सुनकर डॉक्टर को दिल का दौरा पड़ गया, वह भी दूसरे पलंग पर आ गया!

दु:ख और सुख दोनों का दिल पर असर पड़ता है। यदि तुम्हें सुख होता है, तो उसे भी तो किसी जगह रोकना पड़ेगा न? दु:ख होता है, उसे भी कहीं रोकना पड़ेगा। या दु:ख झेलते ही जाओगे? कोई भी व्यक्ति दु:खी नहीं होना चाहता, मगर फिर भी तुम दु:खी हो। तुम इसे नियंत्रित क्यों नहीं करते? अपने दिमाग को नियंत्रित करके ही इन भावनाओं को सम्भाल सकते हो, क्योंकि दु:ख की यह भावना दिमाग से ही पैदा होती है। सुख और दु:ख बाहर नहीं हैं, ये तुम्हारे मन की अवस्थाओं के नाम हैं। सुख-दु:ख जीने-मरने या अमीरी-गरीबी में नहीं, बल्कि मनुष्य के दिमाग में है। अगर वहाँ ठीक कर दो, तो किसी के मरने पर दु:ख नहीं होगा।

सुख-दु:ख को कैसे नियंत्रित करें?

इतनी जल्दी नहीं बता सकते। अगर तुम हमसे पूछो कि अँग्रेजी भाषा कैसे सीखें, तो हम क्या बतायेंगे, पहले ए-बी-सी-डी सीखो, फिर शब्द सीखो, व्याकरण सीखो। उसी तरह से हर विज्ञान और विद्या की ए-बी-सी-डी होती है। योग की ए-बी-सी-डी होती है, आसन और प्राणायाम। उसे सीखने के लिये कहीं घूमना नहीं पड़ेगा। दुनिया में सबसे बड़ा योगाश्रम तो मुंगेर में है। मुंगेर जैसा आश्रम न जर्मनी में है, न फ्राँस में, न अमेरिका में और न ही इंग्लैण्ड में। ऐसा आश्रम कहीं नहीं है।

चौदह जुलाई को वैद्यनाथ के ज्योतिर्लिंग को मुक्त किया गया, उसमें शालीग्राम बिठा दिया गया। यह उचित है क्या?

इसमें हर्ज क्या है। यह जो पुनर्स्थापना हुई है, इसके बारे में वैखानस सूत्रों की राय है कि किसी भी देवमूर्ति के लुप्त या भ्रष्ट या खण्डित हो जाने पर, यदि वह ज्योतिर्लिंग नहीं हो तो वहाँ उसकी पुनर्स्थापना की जा सकती है। यह तो पक्की बात है कि वैद्यनाथ लिंग स्वयंभूलिंग नहीं है। रावण उसे लाया था। स्वयंभूलिंग या ज्योतिर्लिंग जहाँ से निकलता है, वहीं उसकी स्थापना होती है, उसे वहाँ से खिसकाया नहीं जाता। यह ज्योतिर्लिंग है नहीं। वैखानस सूत्र कहते हैं कि ऐसी अवस्था में जो प्रतिष्ठित देवमूर्ति होती है, उसकी पंच उपचार, अष्ट उपचार या षोडश उपचार पद्धति से पूजा करके उसे किसी भी अन्य देवमूर्ति का आधार दिया जा सकता है। अन्य देवमूर्तियों में तो सर्वप्रथम शालीग्राम ही आते हैं। अपने यहाँ शालीग्राम, नर्मदेश्वर और गोमतेश्वर, ये तीन लिंग माने जाते हैं। इन्हें स्वयंभू नहीं माना जाता। ये कहीं निकलते हैं और कहीं पाये जाते हैं। स्वयंभू का मतलब होता है, जो अपने आप पैदा हुआ, तुमने उसे प्रतिष्ठित नहीं किया।

हमारे यहाँ जो बारह ज्योतिर्लिंग माने जाते हैं, उनमें वैद्यनाथ के बारे में पहले विवाद था। एक तो इसे मानते थे, दूसरा वैद्यनाथ कुमाऊँ में है, उसे भी मानते थे और एक परली, महाराष्ट्र में है, उसे भी मानते थे। मगर अन्त में सन्त-महात्माओं ने प्राचीन ग्रन्थों को देखकर पता लगाया तो मालूम हुआ कि परली में जो वैद्यनाथ है, वह स्वयंभू है और इसलिये ज्योतिर्लिंग है, अर्थात् वहीं उसकी उत्पत्ति हुई, वहीं उसकी प्रतिष्ठा हुई, वह कहीं से लाया नहीं गया।

वैखानस सूत्रों में ज्योतिर्लिंग के बारे में ऐसी कोई मान्यता नहीं है। अगर वह खो जाय तो क्या होगा? इस बारे में बहुत मुश्किल है। इतिहास में जब काशी विश्वनाथ पर हमला हुआ, तब विश्वनाथ जी को ज्ञानवापी में छुपाया गया। ज्ञानवापी एक कुएँ का नाम है। बाद में उन्हें ज्ञानवापी से लाकर पुनः प्रतिष्ठित किया गया। हिन्दुस्तान में इसका बहुत विरोध हुआ। यह कैसे हो सकता है, विश्वनाथ तो फिर ज्योतिर्लिंग रहा ही नहीं। बड़ा हंगामा हुआ था। देश के पण्डितों, आचार्यों, उपाध्यायों और बड़े-बड़े विद्वानों ने कहा कि स्वयंभू ज्योतिर्लिंग की स्थापना वहीं होती है, जहाँ उसका जन्म होता है। इनको तो तुमने हटाकर ज्ञानवापी में डाल दिया। अब पुनः इनको प्रतिष्ठित करोगे तो

किसको ज्योतिर्लिंग कहोगे? हमारे हिन्दुस्तान के लोग कर्मकाण्डी तो हैं ही, मगर कर्मकाण्डी के साथ भावुक भी हैं। 'अरे भाई! पहले ये शिवजी हैं, बाद में ज्योतिर्लिंग हैं।' खैर शिवजी को पुन: प्रतिष्ठित किया। विश्वनाथ बाबा भले ही अस्थिर हुए, फिर भी उन्हें ज्योतिर्लिंग के रूप में ही सम्मान दिया जाता है। यह भक्तों की भावना का परिणाम है।

शास्त्र विश्वनाथ की पुनर्प्रतिष्ठा को नहीं मानता, मगर यहाँ वैद्यनाथ की पुनर्स्थापना को मानेगा। इसमें कुछ गलत नहीं है, यह हो सकता है। अगर वैद्यनाथ ज्योतिर्लिंग होता तो नहीं हो सकता था। इसी तरह से जब औरंगजेब की सेना महाराष्ट्र की तरफ बढ़ती हुई आ रही थी तब नासिक का त्र्यम्बकेश्वर मन्दिर उसकी हिट लिस्ट में था। त्र्यम्बकेश्वर मन्दिर में शिवलिंग प्लिन्थ के नीचे है। पहले ऊपर आते हैं, फिर दो-तीन सीढ़ी नीचे उतर कर शिवलिंग के पास जाते हैं। तो वहाँ के पण्डों ने क्या किया? ज्योतिर्लिंग के ऊपर पूरी की पूरी मिट्टी भर दी, और उसके ऊपर सुरखी, चूना, पत्थर, वगैरह डालकर वहाँ एक दूसरा शिवलिंग स्थापित कर दिया और आराम से पूजा करने लगे। औरंगजेब आया और उसको तोड़कर चला गया। उसके बाद पण्डों ने मिट्टी वगैरह निकालकर फिर ज्योतिर्लिंग की पूजा शुरू कर दी। यह है त्र्यम्बकेश्वर की कहानी।

शिवलिंग के बारे में शिव पुराण, स्कन्द पुराण, वैखानस सूत्रों तथा अन्य शास्त्रों में बहुत-सी बातें बतायी हैं। इतनी सारी चीजों का पालन तो आजकल हम कर नहीं सकते, क्योंकि वैदिक युग तो अब रहा नहीं। अब तो कलयुग आ गया है और कलयुग में आचार्य-उपाध्याय सब नष्ट हो चुके हैं। कुछ नहीं रहा क्योंकि लोगों पर दबाव बहुत बढ़ गया है। पण्डों के लड़के नौकरी करने लगे हैं क्योंकि पण्डों को ज्यादा पैसा मिलता नहीं। पण्डों को पैसा क्यों कम मिलता है? क्योंकि उनकी आदतें बिगड़ गयी हैं। ढाई सौ की घड़ी होनी ही चाहिये, दो सौ रुपये का जूता होना ही चाहिये, घर में रेडियो-ट्रान्जिस्टर-टीवी होना ही चाहिये, थोड़ा अण्डा-मुर्गी-मांस तो होना ही चाहिये। अब इसके लिये तो पैसा चाहिये, बिना पैसे के तो कुछ होगा नहीं। अब ब्राह्मण का सरल जीवन तो रहा नहीं। पहले ब्राह्मण का रहन-सहन भिखारियों जैसा था। शास्त्र कहता है कि ब्राह्मण को तो भिक्षु की तरह रहना चाहिये। प्राचीन काल में ब्राह्मण कुश आसन पर सोते थे, भिक्षा पर जीवन व्यतीत करते थे। अब कहाँ है वह सब? धीरे-धीरे सामाजिक दबाव, आर्थिक दबाव, पारिवारिक

दबाव बहुत बढ़ गया है। स्वाभाविक है कि अब ब्राह्मण विद्यादान भी नहीं कर सकते हैं। उन्हें नक्षत्रों का ज्ञान नहीं है, शास्त्रों का ज्ञान नहीं है। यहाँ के पण्डों से पूछो, कुछ नहीं जानते। यहीं नहीं, सारे हिन्दुस्तान में यही हाल है। दक्षिण भारत में कुछ बेहतर स्थिति है, पर उत्तर में तो पूर्ण विनाश हो गया। यहाँ हम लोगों के धर्म की शास्त्रीय प्रणाली लुप्त हो गई है। सब बस देवी की पूजा मनाते हैं। भावना है, पर किस तरह होना चाहिये यह नहीं मालूम। जैसे दशहरा में जो देवी पूजा होती है, वह तान्त्रिक है। इसका वर्णन आगम शास्त्र में आता है। यंत्र क्या चीज होती है, किस तरह से स्थापना होती है, किस तरह से कुण्डलिनी की पूजा होती है, किस तरह से दस महाविद्याओं की पूजा होती है, किस तरह से कलश की पूजा होती है, अन्तिम दिन नौ कन्याओं की किस तरह पूजा होती है, अब यह सब तो समाप्त हो गया। पैसा है तो नौ लड़कियों को बुलाकर खिला दीजिये और कुछ ज्यादा पैसा हो तो एक पाठा ले आइये। थोड़ा पैसा है तो कबूतर से काम चल जायेगा। आज लोग तंत्र-शास्त्र जानते ही नहीं हैं। तंत्र-शास्त्र के लिये दूसरा ही जीवन बिताना पड़ता है। असल में वैद्यनाथ धाम को दूसरे नम्बर का तन्त्र-पीठ मानते थे। कामाख्या नम्बर एक तान्त्रिक पीठ है और वैद्यनाथ धाम नम्बर दो।

पहले का जमाना ऐसा था कि सारा जीवन ही साधना और यज्ञ था। अभी का जमाना साधना-उन्मुख नहीं, उपार्जन-उन्मुख है। बेटा जितना कमा सके, बाप जितना कमा सके, बहू जितना ला सके। कलयुग में अर्थ और काम प्रधान है। भारत के पास तो बहुत विद्याएँ थीं, प्रायः सभी लुप्त हो गयी हैं। मनुष्य की उम्र इतनी छोटी है कि वह कुछ भी सिद्ध नहीं कर पाता है। पच्चीस साल तक तो उसे अकल आती नहीं और पचास का होते-होते वह बूढ़ा हो जाता है, दाँत टूटने लगते हैं, आँखें कमजोर होने लगती हैं, बाल सफेद होने लगते हैं, बीमारियाँ आने लगती हैं और अन्त में आदमी मर जाता है। कुछ नहीं हो पाता है उससे। गुरु गोरखनाथ कहते थे पारा सिद्ध करो, मगर पारा सिद्ध करने के लिये जिन चीजों का उपयोग किया जाता है, उन चीजों का उपयोग करोगे तो मार खाओगे। पारा सिद्ध किया जाता है विधि द्वारा, और वह विधि है हठयोग। जानते हो तुम? कम-से-कम 150 साल तक आदमी जिन्दा रहे तब तो कुछ करेगा न। पच्चीस साल तक बेवकूफी रही, पचास साल तक भोग किया और पचास के बाद तो आदमी बूढ़ा हो जाता है। बेटा मरा, बेटी मरी, पत्नी मरी, चाचा मरा, तो काका मरा, जितने दुःख

हैं, सब दिमागी कम्प्यूटर में जमा होते हैं। पारा सिद्ध करने के लिये जितने भी रसायन होते हैं, उन रसायनों को अगर कोई उपयोग करने लगेगा तो मार खायेगा, जेल चला जायेगा, कत्ल हो जायेगा, क्योंकि समाज जानता ही नहीं है, समाज तो अंधा है। समाज हर युग में मर्यादा में रहा है। तुमने आज के युग की एक मर्यादा बना दी है। क्या सही है, क्या गलत, यह सब तुमने बनाया है। तुम जिसे गलत कहते हो, हमें भी उसे गलत कहना पड़ता है। जिसे तुमने सही कहा, उसे हमने भी सही कहा। इसे कहते हैं मर्यादा।

हठयोग में पारा सिद्धि होती है, अनेकों नागा लोगों को पारा सिद्धि सिखाई जाती थी। मगर अब यह कर नहीं सकते क्योंकि कलयुग की मर्यादा ही खत्म हो गयी है। कलयुग में साधना का कोई अर्थ ही नहीं है। साधना तो एक घोड़े को साधने जैसी है। जंगली घोड़े या हाथी को लाकर तुम कैसे साधते हो? अगर प्रशिक्षित घोड़े का बच्चा भी हुआ, तो भी प्रशिक्षण देना पड़ता है न? वही प्रशिक्षण साधना है और वह साधना बाहर की नहीं है। उसमें मन को रोकना पड़ता है।

मन को रोकने से क्या होगा? आदमी पागल हो जायेगा। मन माने विचार, मन माने संकल्प। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, स्त्री-पुरुष, गर्म-ठण्ढा, मीठा-कड़ुवा, इन सब चीजों की जानकारी मन से ही होती है। इस ज्ञान को रोककर चेतना को शून्य में स्थिर करते हैं। आदमी पागल हो जाता है। तब उसके लिये औषधि की आवश्यकता होती है। पातंजल योग में पढ़ा होगा तुमने– *जन्मौषधिमंत्रतपः समाधिजाः सिद्धयः*। इस सूत्र में महर्षि पतंजलि ने जन्म, मन्त्र, तप, औषधि और समाधि को सिद्धि का स्रोत बताया है। जब तुम औषधि लेते हो तो शरीर और दिमाग पर उसका असर पड़ता है। जिस तरह शराब, कोकीन, अफीम, हेरोइन, बीयर या नींद की दवाई का असर पड़ता है, उसी तरह से औषधियों का भी दिमाग पर असर पड़ता है। जितने भी हमारे देश के साधु-महात्मा अब तक इनका सेवन करते आये हैं, उनकी जीवन शैली उत्तम रही है। पर अब साधु-महात्मा भी बदल गये हैं। वे अच्छी तरह से रहते हैं। साधु को ज्यादा-से-ज्यादा खुले में रहना चाहिये, अग्नि के सामने रहना चाहिये। जल में रहना, दिन में तीन-चार बार स्नान करना, शरीर को नंगा रखना, जितना हो सकता है अल्प भोजन करना, शरीर को अधिक सुख में नहीं रखना। बढ़िया गद्दा, तकिया और मखमल की चादर लग रही है, ऐसा नहीं होना चाहिए। जहाँ तुम आराम देखते हो, वहाँ भोग है, और

भोग तथा योग एक साथ सिद्ध नहीं होते। भोग का तात्पर्य इन्द्रियों को मज़ा देने वाली चीजों से है। ऐसे अच्छे साधु-महात्मा बहुत रहे हमारे देश में, पर अब उनकी संख्या कम हो रही है। आखिर कल तुम ही तो साधु बनोगे और वैसे ही रहोगे जैसे अभी हो। साधु कोई ऊपर से तो गिरता नहीं, तुम्हीं लोगों में से तो आता है न।

गीता, गंगा, गायत्री, गुरु और गौ सेवा

हमारे धर्म में गीता, गंगा, गायत्री, गुरु और गाय की सेवा होती है। सेवा तीन तरह से होती है, तन से, मन से और धन से। शरीर से जो सेवा करते हैं, उसे कर्मयोग कहते हैं। बहुत-से लोग तन से नहीं कर सकते तो उन्हें धन से करनी चाहिये। जो लोग दोनों से नहीं कर सकते, वे मन से करें। बहुत-से लोग कंजूस होते हैं, पैसा होने पर भी नहीं छोड़ते। उन्हें मानसिक रूप से सेवा करनी चाहिये। गीता, गंगा, गायत्री, गुरु और गौ सेवा हमारे यहाँ सबसे पवित्र मानी जाती है। जिस घर में गाय रहती है उस घर में साक्षात् भगवान का निवास होता है।

हमने भी यहाँ गोशाला बनायी है। हमारी गाय 15-20 लीटर दूध देती है। दो स्वामी हैं देखभाल के लिए, फिर गाँव से भी कभी-कभी लोग आते हैं सेवा करने के लिये। गाय को दुहते हैं, उसका गोबर उठाते हैं, उसके लिये घास काटते हैं, सब कुछ करते हैं। कभी-कभी हम ज्यादा गाय भी रख लेते हैं। तब गाँव से 3-4 पार्टियों को बुला लेते हैं और उनसे कहते हैं कि एक-दो महीने सेवा करो। वे लोग आकर उसकी सेवा करते हैं, कभी पत्नी आती है, कभी बच्चे आते हैं। दो महीने के बाद हम कहते हैं कि अब यह गाय अपने साथ ले जाओ।

गाय के बारे में एक बढ़िया बात बताते हैं। दुनिया में जितने भी प्राणी होते हैं, उनमें से जो अपशिष्ट पदार्थ निकलता है, वह सब अपवित्र होता है। गधे, घोड़े, हाथी, शेर, मनुष्य, कीड़े-मकोड़े, मेंढक, चूहे-छिपकली का मल-मूत्र शुद्ध होता है क्या? कोई गधे की लीद से मकान लीपता है क्या? नहीं, उसको छूने से भी बीमारी हो जाती है, उसमें खतरनाक कीटाणु होते हैं। केवल गाय ही एक ऐसा प्राणी है जिसका अपशिष्ट पदार्थ भी पवित्र होता है।

– 11 अक्टूबर, 1997



अध्याय 2

कर्म सब करते हैं। हर कर्म का फल मिलता ही है, चाहे तुम बेल लगाओ, घास लगाओ, जहर लगाओ, अमृत लगाओ। चाहे तुम गाय पालो, कुत्ता पालो, शेर पालो, चाहे तुम शादी करो, संन्यास लो, जो भी कर्म तुम करोगे, उसका फल निश्चित है, उससे कोई नहीं छूट सकता। रामजी भी नहीं छूट सके। परन्तु चिन्ता करना मन का स्वभाव है। यदि चिन्ता की कोई बात न भी हो, तब भी हम चिन्तित होना चाहते हैं, क्योंकि चिन्ता व्यस्त रहने का एक बहुत अच्छा तरीका है। चिन्ताओं में तल्लीन होना हमें अच्छा लगता है। जब तुम्हारे बेटा-बेटी योग्य हैं, कमा रहे हैं, सब कुछ तो अच्छा है, फिर चिन्ता किस बात की?

मनुष्य का दिमाग एक सुपर कम्प्यूटर की तरह है। हम बोल रहे हैं और सब समझ रहे हैं। वह कौन-सी प्रक्रिया है, जिससे हम तुरंत समझ लेते हैं? वह कौन-सी प्रक्रिया है, जिससे हम योजनाओं, विचारों, वाक्यों और व्याकरण में इतनी जल्दी सह-सम्बन्ध बना लेते हैं। यह सब मनुष्य के दिमाग में है। सुपर कम्प्यूटर की तरह दिमाग की भी एक भाषा होती है। जब तक इस भाषा का ज्ञान नहीं होता, तब तक तुम कुछ नहीं कर सकते। अगर कम्प्यूटर पर केवल दो संख्याओं को जोड़ने का प्रोग्राम बनाया गया हो, तो कम्प्यूटर नहीं समझ पाता कि तीन संख्याओं के साथ क्या करना है। इसी तरह हमारे दिमाग के साथ है, कई बातों को हम नहीं समझ पाते हैं। जैसे किसी को खबर मिलती है कि उसकी माँ मर गयी, या पिताजी मर गये, तो उस समय उसे समझ में नहीं आता कि क्या करना है। लोग रोने लगते हैं, माथा पीटने लगते हैं, चूड़ियाँ तोड़ने लगते हैं। जब तुम्हें यह खबर मिलती

है कि तुम्हारी माँ या पिता मर गये हैं, तो तुम्हारा दिमाग काम करना बंद कर देता है। समझ में नहीं आता कि क्या करें, कैसे व्यवहार करें, क्योंकि दिमाग में इसकी प्रोग्रामिंग नहीं हुई है। हमें खबर लगी कि हमारा बाप मर गया, अब मालूम ही नहीं है कि क्या करना है, तो रोने लगते हैं, सिर मारने लगते हैं। और यदि गुरु ने कहा होता कि 'देखो भाई, जीना-मरना तो लगा ही रहता है, क्या फर्क पड़ता है? वे तो मरकर मुक्त हो गए,' तो इसका एक प्रोग्राम बना होता।

मनुष्य के मन में ज्ञान का एक प्रोग्राम होना चाहिए, जो तुम्हें यह बताये कि चिन्ता मत करो, मरना तो अनिवार्य है, हर व्यक्ति मरता है। तब तुम यह जान पाओगे कि इस परिस्थिति में कैसे नियंत्रण रखना है। नहीं तो किसी औरत को पता लगे कि उसका पति मर गया है, तो वह तुरंत चूड़ी तोड़ती है, और सिर को दीवार से फोड़ती है। उसे कुछ मालूम नहीं रहता, उसका दिमाग काम करना बंद कर देता है, क्योंकि कम्प्यूटर में यह लिखा ही नहीं है कि जब कोई मर जाता है, तो क्या करना। बहुत-से लोग पागल भी हो जाते हैं।

इसलिए उपदेश एक प्रकार की प्रोग्रामिंग है। गुरु, शास्त्र, बाइबिल, ज्ञान, आदि सब इस मस्तिष्क रूपी कम्प्यूटर के प्रोग्रामर हैं। जितने गुरु होते हैं, सभी ज्ञान देते हैं। यह ज्ञान तुम्हारे मन में रहता है और जब जरूरत पड़ती है, उस समय काम करता है। वैसे देखा जाये तो हम सब की प्रोग्रामिंग हो चुकी है। जो तुम सोचते हो, वह सच नहीं है, वह प्रोग्रामिंग का परिणाम है। सामाजिक व्यवस्था एक प्रोग्रामिंग व्यवस्था है, धर्म एक प्रोग्रामिंग व्यवस्था है। ये सब मनुष्य की प्रोग्रामिंग करते हैं। जो कुछ धर्मशास्त्रों, रामायण और गीता में लिखा है, वह सब दिमाग में भरा रहता है। तुम्हारी जितनी मान्यताएँ हैं, वे सब तुम्हारे दिमाग में पहले से भरी गयी हैं। तुम लड़की हो तो ऐसा करो, तुम लड़के हो तो वैसा करो, तुम ब्राह्मण हो तो ऐसा करो। यह सब प्रोग्रामिंग है, जिसे हम लोगों की भाषा में कहते हैं, संस्कार देना।

कहते हैं माँ सात साल तक संस्कार देती है। एक ही माँ के पाँचों बच्चों का स्वभाव अलग-अलग होता है, तो एक ही माँ अलग-अलग संस्कार कैसे देती है?

जब माँ बच्चे को जन्म देती है, तो शरीर माँ का रहता है, खून, खाना सब माँ का रहता है, मगर बीज औरत का नहीं होता, बीज तो पुरुष का होता है। अब

गेहूँ का बीज है, वह तो गेहूँ के पौधे से ही निकला न? मगर जब उसे धरती में डालते हैं, तो धरती उस बीज को पोसती है, फिर उसमें से पौधा निकालती है, फिर उसमें से बहुत-से बीज निकलते हैं। तो धरती माँ है, और बीज पुरुष है। अब इस बीज में जो सूक्ष्म पदार्थ है, वह है डी.एन.ए.। रसायनशास्त्र में मनुष्य के वीर्य का विश्लेषण करके उसमें लवण कितना है, पानी कितना है, यह सब तुम पढ़ते हो, मगर वह उसका भौतिक विश्लेषण है। इसके पीछे एक और चीज होती है, जिसे जैनेटिक विज्ञान में डी.एन.ए. कहते हैं। तुम्हारे अन्दर जो डी.एन.ए. है, वह तुम्हारे माता और पिता का है। यह बात याद रखना कि तुम्हारे शरीर के प्रत्येक कोश में, प्रत्येक कण में, प्रत्येक डी.एन.ए. में तुम हो। आजकल अपराधियों की पहचान उनसे प्राप्त डी.एन.ए. के विश्लेषण से की जाने लगी है। उँगलियों के निशान की जाँच-पड़ताल की पुरानी प्रक्रिया समाप्त हो चुकी है। अब तो डी.एन.ए. से ही किसी व्यक्ति का रूप प्राप्त हो जाता है। मतलब यह है कि व्यक्ति अपने शरीर के प्रत्येक कोश, प्रत्येक अणु, प्रत्येक परमाणु में विद्यमान रहता है। कण-कण में भगवान। भगवान हर चीज में, हर कदम पर विद्यमान है।

जब माँ ने तुम्हें पैदा किया, उस समय उन्होंने तुमको संस्कार दिये। अब संस्कार माँ कैसे देगी? पहली चीज तो यह है कि माँ क्या संस्कार दे सकती है? दो-तीन साल तक दूध पिलाएगी, खाना खिलाएगी, गोद में लेगी, खिलौना खिलाएगी, उसने क्या संस्कार दिया है? क्योंकि तुम्हारी माँ के लिए तो तुम सात साल तक बच्ची थीं। और माँ जो भी सिखाएगी, वह बच्चे के बड़ा होने पर सिखाएगी। जबकि सिखाना चाहिए सात साल के पहले। कहानी आती है न प्रह्लाद की। प्रह्लाद एक असुर पुत्र थे, उनके पिता एक आतंकवादी राजा थे। प्रह्लाद को भी उनके समान होना चाहिए था, लेकिन प्रह्लाद ऐसे नहीं थे।

जब प्रह्लाद गर्भ में थे, उस वक्त नारद जी ने प्रह्लाद की माँ को मन्त्र दिया, *'ॐ नमो नारायणाय।'* नौ महीने तक उनकी माता *'ॐ नमो नारायणाय'* जपती रहीं। जपते-जपते उसका पूरा असर बच्चे पर पड़ा। वास्तव में उनकी माता उन्हें संस्कार दे रही थीं। बच्चा तो गर्भ में छोटा-सा, अंगूठे के बराबर होता है। उससे शरीर कैसे बना? हर एक आदमी के अन्दर शरीर के अलावा, बाप के बीज के अलावा एक और चीज होती है, आत्मा। तुम्हारे पास एक शरीर है, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। आँख से देखते हो, कान से सुनते हो, नाक से सूँघते हो, जीभ से स्वाद लेते हो, त्वचा से स्पर्श करते

हो, इस प्रकार पाँच ज्ञान तथा पाँच कर्म इन्द्रियाँ होती हैं। इनके अलावा एक मन होता है, जिससे तुम सोचते हो, याद करते हो, विचार करते हो, डरते हो, इच्छा करते हो, दु:ख-सुख का अनुभव करते हो। इसके अलावा एक और चीज है, जो हमारे शरीर में रहती है, उसको कहते हैं आत्मा। ईश्वर का सूक्ष्म रूप है आत्मा। अब वह आत्मा कहाँ रहती है? कोई कहता है हृदय में रहती है, कोई कहता है भ्रूमध्य में। उसके बारे में अलग-अलग बातें लिखी गयी हैं। वह इतनी सूक्ष्म है कि उसका कोई वजन नहीं है। वह शरीर, मन और संवेदनाओं से अलग है। वस्तुत: वह परमात्मा का लघु रूप ही है।

जिस भगवान ने यह दुनिया बनायी है, उसका सूक्ष्म रूप तुम्हारे अन्दर 'आत्मा' के रूप में विद्यमान है। उसी को पुरुष भी कहते हैं। पुरुष का मतलब मर्द नहीं होता है। जो पुरी में सोता है, उसको कहते हैं पुरुष। पुरी का मतलब होता है शहर। देवघर एक पुरी है, जगन्नाथ एक पुरी है। 'सोता है' का मतलब प्रसुप्त है। जैसे लकड़ी में आग छुपी है, जैसे वीर्य में जीवन छुपा है, उसी तरह से जो आत्मा पुरी में छुपी हुई है, उसको कहते हैं पुरुष। तुम्हारा शरीर नौ द्वारों की नगरी है। द्वार का तात्पर्य उस स्थान से है, जहाँ से अंदर-बाहर आया-जाया जा सके–

बंगला खूब बना महाराज जिसमें नारायण बोले ।
इस बंगले में नौ दरवाजे, बीच पवन का खम्भा ।
आवत-जावत कोऊ न देखा, सबसे बड़ा अचम्भा ॥

इस बंगले में नौ दरवाजों के बीच पवन का खम्भा है। रीढ़ की हड्डी को ही पवन का खम्भा कहते हैं ।

तुम्हारे अन्दर जो आत्मा है, वह तुम्हारी बहन या भाई से अलग है। तुम्हारी बहन दूसरी आत्मा है। सबकी आत्मा अलग है। पूर्व जन्म में तुम सिन्धी या बिहारी थोड़े ही थीं। यह भी जरूरी नहीं कि पूर्व जन्म में तुम औरत थीं, हो सकता है पूर्व जन्म में तुम मर्द हो। हर आदमी के बहुत जन्म होते हैं। सात साल तक माँ बच्चे को जो संस्कार देती है, वह जीवन भर काम आता है। पर यदि पूर्व जन्म में तुम्हारी आत्मा महा बदमाश आदमी की रही हो, गुण्डे की रही हो या बड़े भारी सन्त की रही हो, तो आगे जाकर तुम वही निकलोगे। माने तुम्हारी माँ जाहिल है, गँवार है, उसने तुम्हें कुछ नहीं दिया, प्रशिक्षण तो उसने तुम्हें बिल्कुल गँवार का दिया है, पर यदि तुम्हारे अन्दर पूर्व जन्म के एक सिद्ध पुरुष

की पुण्यात्मा है, तो तुम गँवार की तरह ही जीओगे, पर कोई घटना जीवन में ऐसी होगी कि फिर से दरवाजा खुल जाएगा। फिर सारी चीज बदल जाती है।

भगवान बुद्ध राजा के पुत्र थे, वे तो ऐशो-आराम से रहते थे। उनकी रानी का नाम यशोधरा था। वह बहुत सुन्दर थीं। महल में ठण्ढी के दिनों में गर्मी और गर्मी के दिनों में ठण्ढक रहती थी, बहुत सुख था। उन्होंने कभी किसी आदमी को दु:खी नहीं देखा था। वे छत्तीस साल तक ऐसे ही चल रहे थे। अंधेरे में थे। फिर छत्तीसवें साल में क्या हुआ? एक दिन वे अपने नौकरों के साथ घूमने गये, तो उन्होंने रास्ते में एक बूढ़े आदमी को देखा और पूछा कि यह क्या है। नौकरों ने कहा, 'महाराज, यह बूढ़ा आदमी है।' उन्होंने पूछा, 'बूढ़ा किसे कहते हैं?' नौकरों ने कहा,'एक दिन सब बूढ़े हो जायेंगे।' फिर पूछा, 'मैं भी ऐसा हो जाऊँगा?' नौकर ने कहा, 'हाँ।' फिर आगे जाकर उन्होंने मरे हुए आदमी को देखा। फिर पूछा, 'यह क्या है?' नौकर ने कहा, 'यह मर गया।' उन्होंने पूछा, 'मरना क्या होता है?' नौकर ने कहा, 'मरना माने सब काम खत्म। इसका टिकट कट गया, पूर्ण विराम हो गया।' उन्होंने पूछा, 'मैं भी मरूँगा?' तो नौकर ने कहा,'हाँ, आप भी मरोगे।'

भगवान बुद्ध का सारा दिमाग खुल गया। रातभर सोचते रहे, 'बीमारी, बुढ़ापा, मृत्यु, यह सब क्या चीज है? जीवन क्या है? हम पैदा होते हैं तो क्यों पैदा होते हैं? मरते हैं तो क्यों मरते हैं?' उनको जब इन प्रश्नों का उत्तर नहीं मिला तो वे घर छोड़कर चले गये। बाकी कहानी तो तुम लोग जानते हो। छत्तीस साल वे अंधेरे में रहे। सभी के जीवन में यह ब्रेकथ्रू, यह अनायासिक घटना घटती है।

एक माता के बहुत-से बेटे-बेटियाँ हो सकते हैं। उनको एक ही तरह का खाना मिलता है, एक ही तरह की साथ-संगति मिलती है, एक ही तरह का वातावरण मिलता है, मगर उन सबकी जो नियति, भाग्य या लीला है, वह अलग-अलग होती है। आखिर हमारी माताजी ने जो हमको दिया, वही हमारे भाइयों को भी दिया होगा। पर कोई तो साधु नहीं बना। क्यों नहीं बना? इसलिए कि हमारी आत्मा ही दूसरी थी, जो भटक रही थी। हमें अठारह वर्ष तक आध्यात्मिक जीवन के बारे में कुछ नहीं मालूम था। ऐसी कोई इच्छा भी नहीं थी, बेशक मैंने बहुत पढ़ा था। हम लोग आर्य समाजी थे। मैंने वेद, उपनिषद्, गीता सब पढ़ी थीं, लेकिन गीता पढ़ लेना आध्यात्मिक होना नहीं होता। हम यह सब पढ़ते थे, लेकिन कभी संन्यास और साधना का

ख्याल नहीं था। अठारह साल की उम्र में हमें एक तान्त्रिक योगिनी मिली। महाबदसूरत, गांजा पीने वाली, गंदी जबान, एकदम मोटी और काली-कलूटी बैंगन की तरह। उसके शरीर से बहुत बास आती थी। वह तंबाकू खाती थी और उसके मुँह से सड़कछाप गालियाँ निकलती रहती थीं।

एक दिन मैं नैनीताल जा रहा था। उसने मुझे देखा और बुलाया। जब मैं उसके पास गया तो उसने कहा, दूध ले आओ और एक लोटा दे दिया। मैंने बाजार से एक लीटर दूध लाकर दे दिया। फिर मैं बैठ गया। उसने चिलम दी तो मैंने कहा, 'हम चिलम नहीं पीते।' बोली, 'अरे! कितने दिन तुम अपने आपको धोखा दोगे। एक दिन तो तुमको पीना ही पड़ेगा।' फिर मैंने पी। दो-चार लोग उसके आस-पास बैठे थे। अब वह आज्ञा चक्र, कुण्डलिनी योग और नाड़ियों जैसे विषयों पर बोलने लगी। मैंने यह सब विवेकानन्द जी की किताबों में पढ़ रखा था। उस समय स्वामी दयानन्द जी की किताब भी पढ़ी थी। मैंने किताबें तो सब पढ़ी थीं। मैंने सोचा, यह गँवार नहीं है, सब जानती है। मैंने पूछा, 'कहाँ तक पढ़ी हो?' तो वह बोली, 'क, ख, ग, घ छोड़कर सब पढ़ा है।' मैंने सोचा कि यह तो काम की चीज है। मैंने कहा, मुझे भी कुछ सिखाओ। वह बोली, इन्तजाम करो, सिखायेंगे।

हम तो किसान के पुत्र थे, हमारे पास डेढ़ हजार एकड़ जमीन थी, खेती थी, ढाई हजार एकड़ निजी जंगल थे, पहाड़ी जमीन थी। वहाँ एक गुफा में उसका इन्तजाम कर दिया। वह दिनभर बोतल पीती रहती थी, और चिलम फूँकती रहती थी। हमने गाँव वालों से कहा, वहाँ नहीं जाना, नहीं तो शाप लग जाएगा। वह बिल्कुल नंगी रहती थी। वैसे सुन्दरता नाम की कोई बात नहीं थी उसमें। उसने मुझे बहुत चीजें सिखायीं। उसी ने मुझे छः महीने में व्यावहारिक रूप से तंत्र सिखाया। उस समय मैं शहर के स्कूल में पढ़ता था। हर शनिवार को शहर से गाँव आकर शनिवार-रविवार को उससे सीखता था। स्कूल भी जाता था, घर का काम भी देखता था, कभी-कभी छुट्टी रहती थी, तो छः-सात दिन लगातार सीखता था। वह रोज शाम को सिखाने के लिए बुलाती थी। कुमाऊँ के जंगल और वहाँ की चौकस जिंदगी प्रसिद्ध है। उन जंगलों में शेर ऐसे मिलते हैं, जैसे यहाँ मेंढक। वहाँ तुम बिना रायफल के नहीं चल सकते। पर वह मुझे कहती थी, राइफल नहीं लाना, किसी भी जानवर को नहीं मारना। मेरा गाँव मुक्तेश्वर से पाँच कि.मी. नीचे है। रात को डर-डर कर काफी दूर जाना पड़ता था। पर एक-दो दिन बाद मेरा डर खत्म हो गया। वह तो छः महीने

के बाद चली गयी, मगर उसने मेरा सारा दिमाग घुमा दिया। जाते समय मैंने उससे कहा, 'हमको दीक्षा दो', तो वह बोली, 'नहीं, हम गुरु नहीं हैं, दीक्षा के लिए गुरु खोजो। हमको जो बताना था, सो बता दिया।' दीक्षा नहीं दी, माने चेला नहीं बनाया। चेला बनना और सीखना, दोनों अलग-अलग चीजें हैं।

भले ही तुम अपने जीवन के प्रारम्भिक समय में आध्यात्मिक न रहे हो, लेकिन जीवन में कुछ घटनाएँ ऐसी घट जाती हैं, जो जीवन के लक्ष्य को पूरी तरह बदल देती हैं। यदि मेरे जीवन में वह योगिनी नहीं आती, तो मैं एक अच्छा किसान रहा होता, शायद एक अच्छा पति और एक बहुत अच्छा बाप रहा होता। मैं बच्चों की देखभाल बहुत अच्छे से कर सकता हूँ। मैं वैसा बाप नहीं जो अपनी बेटी से जल्दी से शादी कर लेने को कहे, ताकि उसे मन की शान्ति मिल सके और वह अपना फर्ज पूरा मान सके। मैं तो कहता, 'तुम्हारे पास दिमाग है, शादी करनी है तो करो, नहीं तो बैठी रहो।'

बाप का काम लड़की की शादी करना थोड़े ही है। बाप का काम केवल उसे पढ़ा-लिखाकर तैयार करना है। एक बार बच्चे बड़े हो गये, वे अपना सुख-दुःख खुद देखेंगे। जो दिमाग हममें है, वही दिमाग उनमें भी तो है। आखिर एक दिन मेरी उम्र भी तो तुम्हारी उम्र की रही होगी न। और अपना निर्णय तो मैंने लिया न? जब मैंने अपने जीवन का निर्णय लिया, तो तुम भी अपने जीवन का निर्णय ले सकते हो। हर एक व्यक्ति में अपने जीवन का निर्णय लेने की क्षमता है। हर एक आदमी के व्यक्तित्व में पूर्व जन्म का आदमी रहता है। वह अच्छा भी हो सकता है और बुरा भी। कई लोग अच्छे घर में पैदा होते हैं, बचपन में बहुत अच्छे होते हैं, पर बाद में बदमाश हो जाते हैं। क्यों? पूर्व जन्म के कारण। बचपन में माँ-बाप ने अच्छी तरह से ठीक-ठाक करके रखा था। बाद में जब वह स्वतन्त्र हुआ, तो बदमाशी शुरू कर दी। हालाँकि सामाजिक दृष्टि से माता-पिता और बच्चे एक पारिवारिक इकाई हैं, पर अगर सचमुच में देखा जाये तो बीज अलग-अलग खेतों के हैं। बीज अलग-अलग हैं, नाम उसका धान है। बीज अलग-अलग हैं, मगर नाम मूली है। बीज अलग-अलग हैं, मगर नाम ककड़ी है। तुम देखते हो न वनस्पति जगत् में, धान अलग-अलग जाति की नहीं होती है क्या? गेहूँ अलग-अलग जाति का नहीं होता है क्या? सब्जी अलग-अलग जाति की नहीं होती है क्या? उसी तरह से जितने भी बच्चे हमारे घर में पैदा होते हैं, वे अलग-अलग जातियों-प्रजातियों के होते हैं। वे अपना-अपना कर्म लेकर आते हैं।

इसलिए हर एक आदमी को अपने को जानना चाहिए। सुकरात कहते थे–'अपने को जानो'। रमण महर्षि कहते थे–'अपने से पूछो, मैं कौन हूँ?' वेदान्त कहता है–'अपने बारे में जानो। तुम कौन हो?' आज तुम जिस तरह रहते हो, सोचते हो, क्या तुम वही व्यक्ति हो या कोई और हो? और जिस दिन तुमको पता चल जाएगा कि तुम कौन हो, उस दिन हो सकता है तुम नेता बन जाओ, हो सकता है तुम लेखक बन जाओ। कितने ही लोगों ने डॉक्टरी छोड़ दी है, किसी और काम में लग गये हैं। मैं कुछ ड्रेस डिज़ाइनरों को जानता हूँ, वे पढ़े कुछ, बने कुछ। किसी ने मेडिकल पढ़ा, किसी ने इंजीनियरिंग पढ़ी, पर बन गये ड्रेस डिज़ाइनर। क्यों बने? इसलिए कि एक उम्र में उनके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि मेरी लाइन यही है।

ऐसा बहुतों के साथ होता है। अपने देश में इसलिए नहीं होता कि एक बार नौकरी लगने के बाद अगर वह छूट गयी और दूसरी नहीं मिली, तो बाल-बच्चों को क्या खिलाओगे। पर जहाँ आजादी है, जहाँ स्वतन्त्रता है, वहाँ तुम कह सकते हो कि हम डॉक्टरी नहीं, वकालत करेंगे। क्यों? घर में पैसा है, बाल-बच्चे हैं, खा-पी रहे हैं, वकालत करने के लिये दो साल और पढ़ना पड़ेगा। डॉक्टरी छोड़ कर वकील बन गये। नहीं, हम डॉक्टरी भी नहीं करेंगे, वकील भी नहीं बनेंगे, क्या बनोगे? हम तो इकोलॉजिस्ट बनेंगे। चलो, पाँच साल और लगाओ। यह तभी हो सकता है, जब तुम्हारे पास सुविधा हो। अमेरिका वगैरह में तो यही होता है। व्यक्ति जिस विषय में डिग्री या योग्यता प्राप्त करता है, उस क्षेत्र में काम न करके कोई दूसरा पेशा करता है। मैं बहुत-सी लड़कियों को जानता हूँ जो चिकित्सा-शास्त्र में स्नातक हैं, लेकिन वे ड्रेस डिज़ाइनर बन गईं। उनमें से कुछ साहित्य जगत् में चली गईं, क्योंकि उन्होंने अपनी व्यक्तिगत प्रतिभा को जाना। इस तरह तुम सब महसूस कर सकते हो कि मैं किस कार्य को करना चाहता हूँ, मैं किस कार्य के लिए उपयुक्त हूँ। तुम डिग्री लेते हो, क्योंकि स्कूल और कॉलेज तुम्हें केवल यही देना चाहते हैं। यहाँ तक कि माता-पिता भी यही चाहते हैं। मेडिकल की डिग्री लो, डॉक्टर बनो, डॉक्टरी करो। पर यह आवश्यक नहीं कि तुम्हारे व्यक्तित्व और जीवन का लक्ष्य वही हो।

तुम्हारे माता-पिता ने तुम्हें चिकित्सा या विज्ञान में ग्रेजुएट बना दिया क्योंकि वे तो बच्चों पर हावी रहते ही हैं। वे बच्चों को अपनी छाया में बढ़ाना चाहते हैं। माता-पिता बच्चों को स्वतन्त्र नहीं छोड़ते। इसीलिए यहाँ के बच्चे

प्रतिभाशाली नहीं हैं। हाँ, बी.ए., एम.ए. हो जाते हैं, पर बी.ए., एम.ए. हो जाना प्रतिभाशाली होना नहीं है। प्रतिभाशाली व्यक्ति के अन्दर से एक प्रकाश का उदय होता है, जिसका अनुभव मुझे हुआ है। जीवन में एक विचार आता है, बिल्कुल स्पष्ट आता है, बिजली की तरह आता है, प्रकाश की तरह आता है, आवाज की तरह आता है, साफ-साफ दिखता है। योग तो मेरा विषय है ही नहीं, मैंने इसकी एक भी किताब नहीं पढ़ी। मैंने योग पर जो भी किताबें पढ़ी हैं, वे अपनी ही लिखी हुई पढ़ी हैं, क्योंकि मुझे उनमें सुधार करना पड़ता था। मैं तो वेदान्त का विद्यार्थी हूँ। शंकर वेदान्त, अद्वैत भाष्य, रामानुजम् वेदान्त, विशिष्ट अद्वैत भाष्य, मीमांसा, ये सब मेरे विषय थे। मैं तो संस्कृत ऐसे बोलता हूँ जैसे हिन्दी और अंग्रेजी। संस्कृत तो मेरी प्रथम भाषा है।

मैं सन् 1968 में विश्व भ्रमण पर निकला और वह भ्रमण कैसे हुआ, यह भी बड़ा विचित्र वृत्तान्त है। मैंने विदेश जाने की बात कभी सोची नहीं थी। मेरे दिमाग में यह ख्याल तक नहीं आया। एक बार मैं टाटा के निजी विमान में बम्बई से सौराष्ट्र जा रहा था। वहाँ किसी फर्टिलाईजर कम्पनी का उद्घाटन करने के लिए मुझे बुलाया गया था। वह चार सीटर विमान था, बगल में पायलट बैठा था। उसने मेरा नाम पूछा। मैंने अपना नाम बताया और कहा कुमाऊँ का हूँ। उसने पूछा, 'आपका पहले का नाम क्या था?' मैंने अपना पुराना नाम बताया। तो उसने पूछा, 'आप मुझे पहचानते हो?' मैंने कहा,'नहीं।' तब उसने अपना नाम बताया। मुझे याद आया कि हम फ्लाइंग क्लब में एक साथ फ्लाइंग सीखते थे। फिर उसने कहा, 'स्टीयरिंग आप चलाइये।' हमने कहा, 'नहीं भाई, पच्चीस-तीस साल हो गये हैं, जहाज गिरा दिया तो?' पर उसने स्टीयरिंग छोड़ दिया और कहा, 'आप चलाइये।' जैसे ही मैंने स्टीयरिंग पर हाथ रखा, तत्क्षण खट् से निर्णय हुआ कि हिन्दुस्तान छोड़ना है। एकदम अंत:प्रेरणा की तरह अन्दर से आवाज आयी। फिर वहाँ पहुँचे, शाम को उद्घाटन था। वहाँ से सोमनाथ का दर्शन करके फिर वापस आये। वापस आते ही मैंने अपने मेजबान से कहा, पासपोर्ट बनाओ। उसने चौबीस घण्टे के अन्दर मेरा पासपोर्ट बनवाया और मैंने भारत छोड़ा। तो जीवन में ऐसी एक अनुभूति होती है, जो 'ब्रेक थ्रू' घटना होती है। वह जीवन को बिल्कुल ही बदल देती है।

– 12 अक्टूबर, 1997



अध्याय 3

माता-पिता अपने बच्चों को स्कूल इसलिये भेजते हैं कि वे अर्थ-उपार्जन में उनकी मदद करें। हालाँकि वे चाहते हैं कि उनके बच्चे अच्छे बनें, पर ऐसे आदर्श विद्यालय जहाँ यह सिखाया जाता है कि ऐसे खाओ, वैसे बैठो, ऐसा करो, वैसा मत करो–उन्हें लोग पसंद नहीं करते। खासकर साधारण वर्ग के लोग वहाँ अपने बच्चों को नहीं भेजते। हिन्दुस्तान में जितने भी आदर्श विद्यालय बने हैं, सबके अपने-अपने ट्रस्ट हैं। गाँधीजी के जन्मस्थान पोरबंदर में एक विशाल कन्या विद्यापीठ है, जहाँ चार-पाँच हजार लड़कियाँ रहती हैं। उस गुरुकुल का जबरदस्त फण्ड है, उसके संस्थापक कालीदास मेहता अरबपति थे। वहाँ वेद, संस्कृत, मंत्र, आदि सभी चीजें पढ़ाते हैं। वहाँ ज्यादातर ऐसी गुजराती लड़कियाँ पढ़ती हैं जिनके माता-पिता कीन्या या यूगाण्डा जैसे देशों में रहते हैं। बहुत-से प्रवासी हिन्दुस्तानी अपने बच्चों को सांस्कृतिक शिक्षा दिलवाने के लिए यहाँ के गुरुकुलों में भेजते हैं। शांतिनिकेतन जैसे बहुत-से गुरुकुल और विद्यालय हैं, जहाँ विशाल सम्पत्ति और साधन हैं।

इनमें सबसे अच्छा उदाहरण है आर्य समाजियों का। आर्य समाजियों ने पंजाब और उत्तर-प्रदेश में बहुत-से डी.ए.वी. महाविद्यालय खोले। डी.ए.वी. यानि दयानंद ऐंग्लो वर्नाकुलर। ये बहुत सफल रहे। उन्होंने अँग्रेजी, हिन्दी, गणित, विज्ञान, आदि सभी विषयों पर जोर देकर शिक्षा का बहुत अच्छा समन्वय किया है। नारायण गुरु आधुनिक केरल के सुधार के जनक माने जाते हैं। उन्होंने केरल में समाज के हर क्षेत्र में सुधार करना शुरू किया। आज केरल हिन्दुस्तान में शिखर पर है, चाहे वह शिक्षा का क्षेत्र हो या अर्थव्यवस्था का या चिकित्सा का। वहाँ जनसंख्या वृद्धि शून्य हो गयी है। केरल के

लोगों का कहना है कि हिन्दुस्तान की जनसंख्या को घटाने के जितने तरीके सरकार विदेश से सीख कर अपना रही है, वे सब गलत हैं। केवल एक रास्ता अपनाओ तो जनसंख्या घट जाए। कौन-सा रास्ता? स्त्रियों की शिक्षा, बस, उन्होंने यही मंत्र दिया है। अगर स्त्रियों की सम्पूर्ण शिक्षा हो, सब लड़कियाँ पढ़ी-लिखी हों, कम-से-कम मैट्रिक या ग्रेजुएट हों, तो जनसंख्या अपने आप घट जाए। गर्भनिरोधक दवाओं से कुछ नहीं होगा, केवल स्त्रियों को शिक्षित कर दो, जनसंख्या अपने आप घट जाएगी।

राजस्थान में गंगानगर के पास एक स्थान है। वहाँ जितनी शादियाँ होती हैं, सबमें औरत की उम्र ज्यादा और आदमी की कम होती है। वहाँ की यह परम्परा है, मर्द होगा बीस साल का तो औरत होगी पच्चीस साल की।

इस परम्परा के पीछे कोई कारण तो होगा?

वे राजस्थानी लोग हैं, उनके अपने विचार हैं। वे लड़की की उम्र इसलिये ज्यादा रखते हैं कि वह पति से पहले मरे, विधवा न हो। हमारे समाज में आज भी विधवा होना अच्छा नहीं माना जाता। विधवा होना माने दु:ख की बात। हमारी सामाजिक व्यवस्था ही कुछ ऐसी है। पश्चिमी देशों में ऐसा नहीं है, मगर यहाँ औरतों के कानूनी, सामाजिक, धार्मिक और व्यक्तिगत अधिकार परिभाषित नहीं हैं। जबकि मर्द कहीं भी रह सकते हैं, किसी से भी बात कर सकते हैं, कहीं भी नौकरी कर सकते हैं, सम्पत्ति खरीद और बेच सकते हैं, दाढ़ी-मूँछ रख भी सकते हैं, काट भी सकते हैं, लम्बे बाल रख सकते हैं या सिर मुड़ा सकते हैं, धोती भी पहन सकते हैं, पतलून भी पहन सकते हैं, ये उनके व्यक्तिगत अधिकार हैं। औरतों के व्यक्तिगत अधिकार नहीं हैं। वे बाल मुड़ा सकती हैं क्या? नहीं, पूछना पड़ेगा। इसलिए सोचा गया कि विधवा होने से अच्छा है, दस-पाँच साल बड़ी होगी तो पहले ही निकल जाएगी।

हमारे समाज में पति के मरने के बाद स्त्री का वही हाल होता था, जो एक सूटकेस का होता है। अगर रेलगाड़ी में कोई आदमी मर जाए तो उसका सूटकेस किसका? जिसके हाथ लग गया उसी का। हमारे समाज में पति के बिना स्त्री का रुतबा नहीं था। उसकी पहचान केवल पति से होती थी और पति न रहने से उसकी कोई पहचान नहीं रह जाती थी। उसका हाल लावारिस सूटकेस जैसा होता था। इसलिये जैसे ही पति मरता था वह सती हो जाती थी। समाज के दबाव की वजह से, या कुछ परम्परा ही ऐसी बन गई कि उन्हें

लगता था कि हमारा पति मर गया तो हमें सती होना ही है। मगर यह प्रथा व्यापक नहीं थी। सामान्य वर्ग में सती प्रथा नहीं थी, वह केवल उच्च वर्ग में थी। गरीब आदमी को क्या फर्क पड़ता है, मगर बड़े घर की औरत कहीं चली जाए तो हंगामा हो जाए। खैर वह प्रथा तो खत्म हो गयी, पर आज भी स्त्रियों की हालत ठीक नहीं है। पढ़ी-लिखी जरूर हैं, पर शिक्षा से भी स्त्रियों की दशा में उतना परिवर्तन नहीं आया है जितना आना चाहिए।

सती प्रथा अभी भी कहीं है क्या?

नहीं, प्रथा नहीं है। इधर-उधर कभी कोई घटना हो सकती है, पर प्रथा खत्म हो गई। अब युग बदल रहा है। आने वाले युग में बहुत-सी चीजें बदलेंगी। पिछले पचास-सौ सालों में इन्सान ने जो नये विचार प्राप्त किये हैं, जो नया सामाजिक जीवन प्राप्त किया है, उसमें पाश्चात्य सभ्यता सभी का आदर्श बनकर, हर समाज में व्याप्त हो गई। भारतीयों को ही देखो, वे कैसे खाते हैं, पार्टी में जाते समय कैसा पहनावा पहनते हैं, कैसे तैयार होते हैं, कैसे तरीके के कानून अपनाते हैं, कैसे एकाउन्टिंग करते हैं। सब जगह पाश्चात्य सभ्यता की झलक दिखलाई देती है। तुम चाहे शिक्षा व्यवस्था में देखो, न्याय, पुलिस या फौज व्यवस्था में चले जाओ, यह सब जगह हो रहा है।

पुराने जमाने में सेना के सबसे आगे राजा या सेनापति होता था, फौजी सबसे पीछे रहता था। आज फौजी सबसे आगे रहता है, और सेनापति अपने मुख्यालय में कहीं शराब पीता रहता है। वह तो लड़ाई में जाता तक नहीं, क्योंकि वह मुख्य सेनापति जो है। तो आज के जमाने में सारी परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं।



भारत में हिन्दू कोड बिल के पारित होने से पहले तलाक नहीं था। वैदिक व्यवस्था में तलाक प्रथा थी ही नहीं। वियोग प्रथा थी, परित्याग की प्रथा थी। पर तलाक का मतलब विवाह-विच्छेद है, जब पति और पत्नी के बीच कानूनी सम्बन्ध

समाप्त हो जाते हैं। पति और पत्नी के बीच कई प्रकार के सम्बन्ध होते हैं। उनमें से एक सम्बन्ध है कानूनी, अन्य सम्बन्ध पारिवारिक, सामाजिक, भावनात्मक और शारीरिक होते हैं। मैं कानूनी सम्बन्ध की बात कर रहा हूँ। जिसे तुम तलाक कहते हो, वह ऐसी प्रक्रिया है जिसमें पति-पत्नी के कानूनी सम्बन्ध में विच्छेद हो जाता है, जबकि त्याग ऐसी प्रक्रिया है जिसमें पति और पत्नी के सामाजिक और शारीरिक सम्बन्धों में विच्छेद होने पर भी वह कानूनी रूप से पत्नी ही रहती है।

जब राम जी ने सीता जी का परित्याग किया तो उनके सामाजिक सम्बन्ध समाप्त हो गये पर कानूनी सम्बन्ध बरकरार थे। राम उन्हें दुबारा स्वीकार कर सकते थे, उनके बच्चे राजगद्दी पर बैठ सकते थे। अगर बच्चे नहीं भी होते और राम जी मर जाते तो सीता जी गद्दी सम्भाल सकती थीं। कानूनी सम्बन्ध उन्हें वहाँ बैठाता। यह थी वियोग प्रथा। मगर सन् 1962 में हिन्दू कोड बिल बना। उसमें पति-पत्नी के सम्बन्धों को लेकर संविधान में संशोधन किया गया जिसे तुम आज तलाक कहते हो। उससे पहले हिन्दू आचारसंहिता में तलाक का प्रावधान नहीं था। इसी वजह से कई हिन्दू ईसाई या मुसलमान बने थे। यह बात याद रखो कि ईश्वर की वजह से ही कोई धर्मपरिवर्तन नहीं करता। संसार में शायद ही किसी व्यक्ति ने धर्मपरिवर्तन इसलिये किया है कि नया धर्म पुराने धर्म से श्रेष्ठ है, भगवान के पास जाने का बेहतर रास्ता बताता है। यह केवल कहने की बात है। असली कारण कुछ और होता है। कई हिन्दू मुसलमान इसलिए बने कि तलाक मिल जाएगा। कितने पारसी हिन्दू हो गये। महाबलेश्वर में एक पारसी औरत रहती थी, जिसने एक यहूदी से शादी कर ली थी। जब वह मृत्यु-शय्या पर थी, तो सवाल उठा कि मरने के बाद उसका क्या करेंगे। पारसियों के मुताबिक क्रिया-कर्म करने की अनुमति नहीं है, और यहूदी लोग उसे अपने कब्रिस्तान में दफनाने नहीं देंगे। अंत में हिन्दू हो गई, चिता को आग मिल गई।

धर्म परिवर्तन का असली उद्देश्य सामाजिक जटिलताओं को दूर करना है। हिन्दुस्तान में बहुत-से लोग मुसलमान इसलिए बने कि उन्हें बहुत-सी सुविधाएँ दी गईं। उनमें से एक सुविधा यह थी, तलाक की सुविधा। हजारों आदमी अपनी औरत को छोड़ना चाहते हैं, सोचते हैं दूसरी छोकरी रख लेंगे। पर क्या करें, तलाक तो है ही नहीं। पहली औरत को भी रखना पड़ेगा। मायके में रहेगी तो भी सम्पत्ति में से हिस्सा तो देना होगा। इसलिए हजारों हिन्दू

मुसलमान बने, हजारों ईसाई बने। तलाक वहाँ की परम्परा है। जब हिन्दुस्तान में हिन्दू कोड बिल पारित किया जा रहा था तो हंगामा हो गया था। इतना दंगा-फसाद हुआ कि लगता था हिन्दुस्तान जल रहा है। राजेन्द्र बाबू राष्ट्रपति थे, उन्होंने तो इसे स्वीकार ही नहीं किया। वे धार्मिक थे, सनातनी विचारधारा को मानते थे, उन्होंने विधेयक वापस कर दिया। पर नेहरू जी पढ़े-लिखे थे, वे कहते थे कि नहीं, स्त्री को पुरुष को छोड़ने का और पुरुष को स्त्री को छोड़ने का अधिकार है। स्त्री और पुरुष का एक साथ रहना तभी तक उचित है, जब तक कि दोनों के बीच में पटरी बैठती हो। जब तुम्हारे और हमारे बीच पटरी नहीं बैठती तो आढ़ा-टेढ़ा मुँह बनाकर रहने का क्या फायदा।

हिन्दुस्तान में अभी भी तलाक बहुत कम होते हैं। यह प्राय: एक वर्ग विशेष में ही होता है। सामान्य वर्ग तलाक को बुरा ही मानता है। पर पश्चिम में ऐसा नहीं है। वहाँ तो बहुत विचित्र बातें होती हैं। एक बार मैं कहीं बाहर गया था तो एक महिला से परिचय हुआ। उसने अपने पति को तलाक दे दिया था। एक बार उसने कहा कि मैं आपको अपने पति के लड़के से मिलाने ले चलती हूँ। हमने कहा तुम्हारा लड़का न, तो वह बोली नहीं, नहीं, मेरे पति का लड़का। हमें बड़ा विचित्र लगा, क्योंकि हम तो उनकी संस्कृति में पले-बढ़े नहीं हैं। उसका मतलब था कि उसके पति का किसी दूसरी औरत से बच्चा है, और यह बात हम लोगों की समझ में नहीं आती।

मनुष्य ने समय-समय पर अलग-अलग ढंग से समाज बनाने की कोशिश की, लेकिन कहीं पर भी पूरी तरह सफल नहीं रहा। किसी भी प्रकार के समाज को देख लो। पाश्चात्य सभ्यता भी ज्यादा दिन चलने वाली नहीं। कोई-न-कोई सामाजिक दुर्घटना होगी, जैसे मिस्र, रोम या यूनान में हुई।

क्या शादी एक बन्धन नहीं है?

मैं समझता हूँ मनुष्य के लिये बन्धन जरूरी है। मनुष्य मूलत: जानवर है, उसके जितने भी व्यवहार हैं, जितने भी क्रिया-कलाप हैं, वे सब मूलप्रवृत्तियों से प्रेरित हैं। ईर्ष्या, द्वेष, भय, प्यार, कामुकता, यह सब जानवरों में भी होती है। अंतर इतना ही है कि जानवरों की विवेक-बुद्धि विकसित नहीं हुई है, सब कुछ मूलप्रवृत्तियों पर निर्भर है। हमारे अन्दर प्रवृत्तियाँ और बुद्धि, दोनों हैं, इसलिए हम उनसे ज्यादा जंगली हैं। जंगल में साँप भी रहता है, बिच्छू, बकरी, घोड़ा, शेर और गधा भी रहता है, वे प्रकृति के नियमों का पालन करते

हैं। वे कहीं नियमों का उल्लंघन नहीं करते। हम लोग नियमों को तोड़ देते हैं, क्योंकि हमारे पास बुद्धि है जो कहती है कि तुम नियम तोड़ सकते हो। इसलिये मनुष्य के लिये बन्धन की आवश्यकता है।

वास्तव में देखा जाए तो विवाह एक सम्बन्ध है। इसके लिए बन्धन शब्द कहना ही गलत है। बन्धन शब्द बड़ा क्रूर है। उससे 'न' निकाल कर 'सम्' डाल दो तो 'सम्बन्ध' हो गया। शादी को बन्धन न कहकर सम्बन्ध कह दो। विवाह बहुत अच्छी परम्परा है, मैं इसके विरोध में नहीं हूँ, पर इतना जरूर है कि यह सब के लिये अनिवार्य नहीं है। विवाह स्वेच्छा पर निर्भर है, अगर हम शादी नहीं करना चाहते तो हमारी शादी नहीं होनी चाहिये। माँ-बाप जबरदस्ती नहीं कर सकते।

शादी केवल एक व्यक्तिगत आवश्यकता नहीं, एक सामाजिक आवश्यकता भी है। बहुत दूर तक देखना पड़ता है। वैदिक धर्म में वह दूरदृष्टि है, मगर फिर भी बहुत सुधार की आवश्यकता है। मेरे विचार से हमारी विवाह-व्यवस्था किसी भी अन्य संस्कृति से बेहतर है। हमने तो इसका अध्ययन किया है, और हम यह भी जानते हैं कि दूसरी संस्कृतियों में लोग किस तरह से रहते हैं, क्या करते हैं। फिर भी हम मानते हैं कि यहाँ सुधार की आवश्यकता है। और वह यही कि लड़की को थोड़ा-सा पढ़ाओ-लिखाओ, दो-चार साल वह नौकरी कर ले, जब तक बच्चा नहीं होता पाँच-दस हजार रुपये कमा ले, और जब बच्चा हो जाए तो घर में बैठ जाए। घर को देखना भी जरूरी है, नौकरानी या चपरासी घर को नहीं देख सकता। घर देखने के लिये घरवाली होनी चाहिये, मगर घरवाली नौकरानी नहीं होनी चाहिए। तुम्हें उसके कानूनी अधिकारों को स्पष्ट रूप से परिभाषित करना होगा। लड़कियों को सुरक्षा प्रदान करने के लिये उन्हें मार्शल आर्ट सिखाना होगा। उन्हें रिवॉल्वर नहीं आत्म-रक्षा की कला दो। उन्हें जानना चाहिए कि कार कैसे चलाते हैं, इन्कम टैक्स कैसे भरते हैं। उन्हें कानून और राजनीति के बारे में जानकारी होनी चाहिए। तुम्हारी स्त्री, तुम्हारी बेटी विदुषी होनी चाहिए।

मनुष्य जन्म का क्या लक्ष्य होना चाहिये?

मनुष्य जीवन का लक्ष्य प्रकृति ने पहले से ही निश्चित कर रखा है। मनुष्य प्रकृति का ही परिणाम है। जैसे खेत में रुई निकली, तुमने रुई को साफ किया, उसमें से सूता काता, सूते का थान बनाया, थान से कमीज बनाई, अब

बताओ कमीज का प्रयोजन क्या है? शरीर का आवरण। मगर रुई का प्रयोजन तो आवरण नहीं है। रुई का प्रयोजन सूत है, सूत का प्रयोजन थान, थान का प्रयोजन वस्त्र और वस्त्र का प्रयोजन शरीर को गर्मी-ठण्ढी-हवा से सुरक्षित रखना। इसी तरह से मनुष्य जीवन एक सूक्ष्म अण्डे से पैदा हुआ है। वेदान्त में इसे पिण्डाण्ड अर्थात् लघु जगत् और ब्रह्माण्ड अर्थात् बृहत् जगत् कहते हैं। जब तुम चौरासी लाख योनियों में थे, तो कैसे जीते थे? खाते थे, सोते थे, प्रजनन करते थे और मर जाते थे। कीड़े-मकोड़ों को देखते ही हो न। उस समय मन अव्यक्त रूप में था। जैसे बीज में वृक्ष रहता है, वैसे ही छोटे-से कीड़े-मकोड़े या पशु-पक्षी में जीव था और सीमित इन्द्रियाँ थीं, किन्तु मन सोया था, प्रसुप्त था। इसलिये हम लोगों के शास्त्रों में उस जीव को जो कुत्ते, हाथी, घोड़े, गधे, काग, कुरंग, पतंग, सबमें है, उसे पुरुष कहते हैं। पुरुष का मतलब मर्द नहीं होता, पुरुष का मतलब वह चीज जो इस नौ दरवाजे वाली पुरी में सोया है।

मनुष्य शरीर प्राप्त करके मनुष्य का सबसे पहला लक्ष्य यह जानना है कि मैं कौन हूँ और मुझे बनाने वाला कौन है? बस यही जानना है। पर यह सोचने से नहीं होता। चिन्तन से कुछ चीजें स्पष्ट होती हैं पर अनुभव नहीं होता। अनुभव के लिए साधना करनी पड़ती है और साधना का आधार होता है मन और भावना। इसमें श्रद्धा और विश्वास आधार बनते हैं, क्योंकि ईश्वर को तो तुमने कभी देखा नहीं, मगर तुम यह भी नहीं कह सकते हो कि ईश्वर नहीं है, क्योंकि तुम्हें पता नहीं। ईश्वर है, यह भी तुम्हें नहीं पता। लोगों ने कह दिया तो तुमने मान लिया। यहाँ श्रद्धा और विश्वास की आवश्यकता पड़ती है। श्रद्धा-विश्वास के बिना तुम यह भी नहीं जान सकते कि तुम्हारा बाप वाकई तुम्हारा बाप है। आदमी को कहीं पर तो श्रद्धा और विश्वास का सहारा लेना ही पड़ता है, जहाँ पर जानने का कोई दूसरा जरिया नहीं होता।

श्रद्धा और विश्वास को लेकर पहले साधना की जाती है। साधनाओं में मन को प्रशिक्षण देते हैं। पूजा-पाठ साधना का पहला पक्ष है। हमारे यहाँ जो पूजा-पाठ, जप-तप, तीर्थयात्रा आदि शब्द आते हैं, ये प्राथमिक साधनाएँ हैं। इन्हें करने के बाद जब शरीर और मन जम जाए, तब जाकर योग साधनाएँ आती हैं, जिनमें मन से सीधा सम्बन्ध बनाया जाता है। मन ही मेरे और ईश्वर के बीच का सेतु है। अगर मेरा मन कमजोर है, तो सेतु कमजोर है। मन ही वह रास्ता है जो भगवान तक जाता है। मन तुम्हें साधना के मार्ग में बहुत दूर तक

ले जाता है। मन के द्वारा तुम जीवन के बहुत उच्च स्तर पर पहुँचते हो। जप, तप, ध्यान, पूजा, प्रार्थना, यह सब मन से ही होता है। कथा या सत्संग सुनते हो, सब मन से ही तो सुनते हो।

मन तुम्हें बहुत दूर तक ले जा सकता है, पर अगर वह मन बदमाश होगा, कमजोर होगा, लूला-लंगड़ा होगा, तो वह पुरानी गाड़ी की तरह होगा। कभी टायर पंक्चर हो रहा है, कभी क्लच खराब हो रहा है तो कभी कार्बोरेटर पर कार्बन जम रहा है। इसलिए मन सशक्त और शुद्ध होना चाहिए, तब यह तुम्हें आगे ले जाएगा। और एक जगह ले जाकर छोड़ देगा। समुद्र तक रास्ता गया, उसके आगे रास्ता ही नहीं है। उसके आगे तुम्हें क्या करना पड़ेगा? पानी का जहाज पकड़ना पड़ेगा न? गीता में भगवान श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि हे अर्जुन! तब मैं साधक को बुद्धि योग देता हूँ। साधक को एक नई चेतना, एक नया मन मिलता है, जिसे अंग्रेजी में हायर माइंड कहते हैं। गीता उसे 'बुद्धि योग' कहती है। *'ददामि बुद्धियोगं तं'*, उसे मैं बुद्धि योग देता हूँ, *'येन मामुपयान्ति ते'*, जिसके द्वारा वह मुझ तक पहुँचता है।

कमजोर मन का क्या कारण है?

मन कमजोर नहीं होता। उदाहरण के लिए, तुमसे अगर कहें कि आज खाने में दाल-भात है, तो तुम कहोगे, भूख नहीं है। पर थोड़ा बाहर जाओगे तो बिरयानी वगैरह खा लोगे। अब तुम्हारी भूख कहाँ से आ गयी?

मन कमजोर तब होता है, जब उसकी किसी चीज में दिलचस्पी या रुचि नहीं होती। मनुष्य का मन कमजोर नहीं है, कोई भी आदमी फिसड्डी नहीं होता। अगर फिसड्डी है तो इसलिए कि उस चीज में उसकी रुचि नहीं है। वासना, क्रोध, लोभ, द्वेष, अविद्या या अज्ञान में कोई कमजोर है क्या? पर जब ज्ञान का मार्ग आता है, वहाँ मनुष्य कमजोर हो जाता है। तुम दस घण्टे बैठ कर टी.वी. सीरियल देख सकते हो, पर आधे घण्टे बाद माला गिर जाती है। तब तुम कहते हो, स्वामीजी, मेरा मन बहुत कमजोर है, आधे घण्टे के बाद जप करने का मन नहीं करता।

मन कमजोर नहीं है, रुचि कमजोर है। मनुष्य बनने के लिए पहली चीज है सत्संग। बस, और कुछ नहीं। सत्संग इंजेक्शन है। सत्संग एक प्रकार से मनुष्य के मन को खुराक देता है। सत्संग मिलता भी उसी को है, जिसके ऊपर भगवान की कृपा होती है।

बिनु सतसंग बिबेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ॥
सतसंगत मुद मंगल मूला। सोई फल सिधि सब साधन फूला ॥

संग का मतलब चिपकना, सत् माने अच्छा, तो सत्संग का मतलब अच्छी चीज के साथ चिपकना। और कुसंग का मतलब बुरी चीज के साथ चिपकना। सत्संग से विवेक आएगा, जिससे तुम यह जान सकते हो, 'मैं कमजोर नहीं मजबूत हूँ, केवल मेरे अन्दर अभी तक तमोगुण बहुत है, इसलिए मुझे कमजोरी लगती है। नहीं तो मैं मजबूत हूँ।'

सत्संग से आदमी के अन्दर बहुत आत्मविश्वास आता है। अब देखो, एक छोटा-सा हवाई जहाज बनाने के लिए लाखों कलपुर्जे लगते हैं, कितनी मेहनत करनी पड़ती है। उसी तरह ईश्वर को प्राप्त करने के लिए बहुत मेहनत करनी पड़ती है, एक जन्म काफी नहीं है। एक ही साल में कोई ग्रेजुएट बन जाए, यह सम्भव नहीं। उसी प्रकार एक ही जन्म में आदमी ईश्वर को प्राप्त कर ले जाए, जो कि जीवन का अन्तिम ध्येय है, यह बहुत मुश्किल है। ईश्वर को प्राप्त करना ही अन्तिम लक्ष्य है, आखिरी पड़ाव है। वह 'चट मंगनी, पट ब्याह' वाला हिसाब यहाँ नहीं होता कि आज पूजा करो और कल भगवान का दर्शन हो जाए। हाँ, किसी-किसी को होता भी है। मीराबाई की बात छोड़ो, हम-तुम तो मीरा बाई नहीं हैं, न ही हम लोग चैतन्य महाप्रभु हैं। हम साधारण मानव हैं। अपने जप-तप का नियम हमें करना चाहिए, ताकि जीवन का लक्ष्य हम कभी न कभी प्राप्त कर सकें।

मंद स्मृति का कारण शारीरिक है या कुछ और?

जिस तरह कम्प्यूटर में 'मेमरी' होती है, जिसमें तुम डाटा डाल सकते हो और निकाल सकते हो, उसी तरह दिमाग में भी एक स्मृति केन्द्र होता है। जितनी भी चीजें तुम सुनते हो, देखते हो, पढ़ते हो या करते हो, वे सब इसमें जमा हो जाती हैं। यदि कभी दिमाग पर कोई आघात लगे, चाहे वह बहुत दुःख का हो या बहुत खुशी का, तो वह केन्द्र गड़बड़ा जाता है और स्मृति कमजोर हो जाती है। मंद स्मृति का एक कारण तो यह है।

दूसरा कारण यह है कि जब आदमी की उम्र ज्यादा हो जाती है, उस समय शरीर में बहुत-सी चीजें धीरे-धीरे काम करना बन्द कर देती हैं। शरीर उन्हें पोषित नहीं कर पाता। जैसे 70-75 साल के बाद थायराइड के कार्य खत्म हो जाते हैं। 50 साल के बाद प्रोस्टेट ग्रंथि की कार्यक्षमता कम होने लगती है,

औरतों का प्रोजेस्ट्रान हॉरमोन कम होने लगता है। यह सब इसलिए होता है कि शरीर के पास पोषण के लिए पर्याप्त खुराक नहीं होती। ज्यादा उम्र होने पर खुराक तो मिलती नहीं, शरीर के बहुत-से कार्य कमजोर पड़ने लगते हैं। स्मृति का बटन बंद हो जाता है, इसलिए ज्यादा उम्र वाले लोगों को याद करने में बहुत कठिनाई होती है। इस तरह से बहुत-सी चीजों का कारण शारीरिक है।

पर युवा लोगों में भी कमजोर स्मृति देखी गई है।

हाँ, जैसे कम्प्यूटर में कभी-कभी वायरस चला जाता है, वैसे ही मनुष्य के दिमाग को भी वायरस खा जाता है। पर स्मृति का एक केन्द्र होता है, यह पक्की बात है। यह स्मृति केन्द्र स्थूल शरीर में भी होता है और सूक्ष्म शरीर में भी। यह जन्म-जन्मान्तर तक रहता है। जब नया जन्म होता है, तब जीव पुरानी बातों को, पुराने कर्मों, संस्कारों और वासनाओं को लेकर आता है। वे कहीं तो जमा होंगे न? जब अमरूद का बीज लगाते हो, तो अमरूद का पेड़ ही होता है, आम तो नहीं होता। क्यों? इसलिए कि वह बीज अमरूद के सारे गुणों को लेकर आया है। इसी तरह मनुष्य के कर्म बीज रूप में संचित हो जाते हैं।

कर्म किसे कहते हैं? केवल हाथ हिलाने, पैर चलाने, फावड़ा चलाने, गाड़ी चलाने या किताब पढ़ने को ही कर्म नहीं कहते, बल्कि शरीर की हर हलचल को कर्म कहते हैं। विचार, स्मृति, राग-द्वेष–ये सब कर्म है। जानकारी हो रही है कि वह चीज लाल है या हरी है, यह भी कर्म है। कर्म का मतलब केवल शारीरिक क्रिया नहीं होता, जीवन की हर गति को कर्म कहते हैं। आदमी चुपचाप बैठा है, आँखें बन्द हैं, फिर भी कर्म हो रहा है, क्यों? क्योंकि विचार चल रहे हैं। विचार भी कर्म है। गीता कहती है, *'न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्'*–हे अर्जुन! एक क्षण के लिए भी मनुष्य अकर्मण्य नहीं रह सकता। क्यों? वह सत्त्व, रजस् और तमस्–इन तीन गुणों से प्रेरित होकर कर्म में प्रवृत्त रहता है। *'कार्यते ह्यवश: कर्म सर्व: प्रकृतिजैर्गुणै:'* अर्थात् प्रकृति के गुणों द्वारा विवश होकर वह कर्म करता है। निद्रा भी कर्म है। केवल मृत्यु और पुनर्जन्म के बीच की अवस्था में वह कर्म नहीं करता, उस समय वह सुषुप्त अवस्था में रहता है। उसकी अवस्था वही रहती है, जो एक गेहूँ या चने के बीज के अन्दर रहती है। बस उतनी देर तक वह कर्महीन रहता है। नहीं तो कर्म रहित कोई नहीं रह सकता। तुम बच नहीं सकते। कर्म से कोई पलायन नहीं कर सकता। गीता में अर्जुन ने कहा–

चंचलं हि मन: कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥ 6.34 ॥

भगवान बताइये, मन तो बड़ा चंचल और बलवान् है, उसका निग्रह करना, उसे पकड़ कर रखना दुष्कर है। तब श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं,

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ 6.35 ॥

हे अर्जुन! तुम ठीक कहते हो, मन को वश में करना बहुत कठिन है, किन्तु तुम इस चीज को प्राप्त कर सकते हो अभ्यास और वैराग्य से। वैराग्य का मतलब क्या है? कोई मर गया तो मर गया, काम खत्म। कल दु:ख हुआ था, आज नहीं। माने मनुष्य का सुख-दु:ख से केवल व्यावहारिक रिश्ता होना चाहिए, भावनात्मक नहीं। थोड़े समय के लिए रिश्ता होना चाहिए, दूरगामी नहीं। इसे वैराग्य कहते हैं। दुनिया में तो बहुत-सी घटनाएँ होती हैं, जो तुम्हें पसंद नहीं हैं। पर उनसे दु:खी होने का क्या फायदा। थोड़ी देर के लिए दु:ख हो सकता है, जैसे कि अगर कोई बच्चा पहलवान को धक्का दे, पहलवान हिल तो जाता है, पर गिरता तो नहीं है।

उदासीनता और वैराग्य में क्या फर्क है?

उदासीन शब्द में उद् माने ऊपर और आसीन माने बैठा। जो ऊपर बैठा है, वह उदासीन है। मतलब जो आदमी सुख-दु:ख से हटकर बैठा है, उसे उदासीन कहते हैं। और वैराग्य का मतलब होता है कि तुमने जो विषय अनुभव किये हैं, उनकी मन में एक तृष्णा रहती है, याद रहती है, 'हमारा कितना बढ़िया घर था', 'हमारी मम्मी हमें कितना प्यार करती थीं', 'मेरा बेटा कितना सुन्दर था, बेचारा मर गया'। उस तृष्णा और याद पर नियंत्रण को वैराग्य कहते हैं। *दृष्टानुश्राविकविषयवितृष्णस्यवशीकारसंज्ञा वैराग्यम्*– यह वैराग्य की शास्त्रीय परिभाषा है। देखे गये या सुने गये विषयों की तृष्णाओं को बस में करने का नाम वैराग्य है। वैराग्य कोई सम्प्रदाय नहीं है कि सफेद कपड़ा पहनो, तिलक लगाओ, जटा बढ़ाओ या जनेऊ पहनो।

दु:ख-सुख की घटनायें सब जगह होती हैं। सब के घर में कोई-न-कोई मरता है और कोई-न-कोई पैदा होता है। पैसा आता है और जाता है। प्यार होता है, झगड़ा होता है। अब कहाँ तक तुम इनमें उलझे रहोगे। हर चीज में

उलझे रहोगे तो दिमाग पर असर पड़ेगा। अगर हर फिल्म का तुम पर असर पड़ जाए तो मन भ्रमित हो जाएगा। दिन में पाँच-छ: फिल्म तो देखते ही हो। आखिर यह दुनिया फिल्म ही तो है। नहीं है तो भी मानकर चलो कि दुनिया फिल्म है। अगर ऐसा मानकर नहीं चलोगे तो तुम्हें सब चीजें यथार्थ लगेंगी। झगड़ा-प्यार, दु:ख-सुख, आमदनी-खर्चा, जन्म-मृत्यु, सब यथार्थ लगेगा।

संचित कर्म का कैसे क्षय किया जाए?

संचित कर्म क्षय करना केवल संन्यासी के हाथ में है। यहाँ मैं संन्यास सम्प्रदाय की बात नहीं कर रहा हूँ। हमारे यहाँ संन्यास सम्प्रदाय भी होता है, संन्यास भावना भी होती है और संन्यास आश्रम भी होता है। लोग 70-75 के बाद संन्यास ले लेते हैं, अपना बादाम-किशमिश भी खाते रहते हैं, दूध भी पीते रहते हैं, बाल-बच्चों को भी देखते रहते हैं, वह केवल आश्रम है। संन्यास सम्प्रदाय भी होता है कि सर मुड़ाकर बैठ गये। मगर वास्तव में संन्यास एक भावना है। संन्यास भावना का मतलब होता है अपने लिए कुछ नहीं, सब कुछ दूसरों के लिए। कमाना दूसरों के लिए, बोलना दूसरों के लिए, जीना दूसरों के लिए, सब कुछ दूसरों के लिए। संन्यास का मतलब ट्रस्ट। जैसे तुम अपने पैसे से अन्धों के स्कूल के लिए ट्रस्ट खोलते हो। अब वह पैसा तुम्हारा नहीं है, वह अन्धों के स्कूल के लिए खर्च होगा। उसी तरह से जब मनुष्य अपने को एक ट्रस्ट बना देता है, अपनी बुद्धि, शक्ति, पैसे, अपने सभी साधनों को केवल दूसरों के लिए खर्च करता है, तब वह संन्यासी बन जाता है। संन्यासी अपने लिए केवल अपनी जरूरत जितना खर्च करता है, बाकी सब दूसरों के लिए होता है। तब चित्त की चंचलता समाप्त होती है, अन्यथा नहीं।

केवल क्रियमाण कर्म पर मनुष्य का नियंत्रण है। क्रियमाण कर्म का मतलब वह कर्म जो तुम अभी कर रहे हो। प्रारब्ध कर्म पर कोई नियंत्रण नहीं है। उस पर तो भगवान का भी नियंत्रण नहीं। वह तो बंदूक से निकली हुई गोली है, किसी को तो लगेगी ही। संचित कर्म बंदूक में रखे कारतूस की तरह है। चाहो तो निकालो, चाहो तो रखो। मगर प्रारब्ध कर्म बंदूक से निकली हुई गोली है। वह जब फल देने लगता है, तब तुम उसे नियंत्रित नहीं कर सकते। क्रियमाण कर्म में बंदूक हाथ में है, अंगुली ट्रिगर पर है, चाहो तो चलाओ, चाहो तो मत चलाओ। क्रियमाण कर्म पर तुम्हारा नियंत्रण है, पर प्रारब्ध कर्म तो *'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतकर्म शुभाशुभम्'*। चाहे वह साधु हो, महात्मा हो,

जो कोई भी हो, उसे भोगना ही पड़ेगा। प्रारब्ध कर्म से कोई नहीं बच सकता। भगवान कृष्ण को व्याध ने तीर मारा न? राम जी प्रारब्ध से छूटे क्या? सीताजी से कितना प्रेम करते थे, पर छोड़ना ही पड़ा।

संचित कर्म को मनुष्य परमार्थ कर्म से काट सकता है। दूसरों के लिए जियो, अपने लिए नहीं। मेरा कुछ नहीं है, सब दूसरों का है। संचित कर्म क्षय हो जायेंगे। इसलिए हमारे यहाँ दान-धर्म करते हैं। दान से, दया से, उपकार से, दूसरों की मदद करने से संचित कर्म क्षय होते हैं। कोई दूसरा उपाय नहीं है। चाहे तुम तीर्थाटन करो, हिमालय में जाकर तप करो, प्राणायाम करो, कुण्डलिनी जगाओ, अष्ट सिद्धियाँ और नौ निधियाँ प्राप्त करो, मगर जब कर्म फलने वाला होता है तो संचित कर्म ही प्रारब्ध बनता है, वह किसी को छोड़ने वाला नहीं है। यह हमारे शास्त्रों में लिखा है। संचित कर्म शुभ हों या अशुभ, वे फलते ही हैं।

क्या भगवान का नाम लेने से संचित कर्म नहीं कटता?

थोड़ा-सा कटता है, मगर सारा नहीं कटता। जहर की औषधि तो जहर ही होती है। लोहे को लोहे से ही काटा जाता है। उसी तरह से संचित कर्म भी दया और दान से ही दूर होते हैं, क्योंकि जितने भी संचित कर्म होते हैं, वे मनुष्य के साथ आते हैं। जब तुम अपने लिए कुछ करते हो, तब कर्म करते हो, और अगर तुम परमार्थ के लिए कर्म करते हो, तो वह कर्म रहेगा ही नहीं, वह तो कल ही खत्म हो गया। तुमने जो खाना बनाया, वह दूसरों को खिला दिया, तुम्हारे लिए तो है ही नहीं, वह दूसरों के पेट में गया। जब तुमने दूसरों के लिए काम किये, तो वे कर्म तुम्हें कैसे मिलेंगे? कर्म दो प्रकार के होते हैं–स्वार्थी और परमार्थी। जो अपने लिए करते हैं, उसे कहते हैं स्वार्थी, और जो दूसरों के लिए करते हैं, उसे कहते हैं परमार्थी। कर्म तब संचित होते हैं जब उन्हें अपने लिए करते हैं, दूसरों के लिए नहीं। जब स्वार्थ के लिए करते हैं, परमार्थ के लिए नहीं। परमार्थ के लिए कर्म करोगे तो वह कर्म दूसरों को मिलेगा, तुम्हें थोड़े ही मिलेगा। तुमने अपने लिए कुर्ता बनाया, तो तुमने पहना, मगर जब तुमने कुर्ता दूसरे के लिए बनाया तो वह तुम्हारे ऊपर कैसे आएगा? तुमने दूसरों के लिए घर बनाया, तो दूसरे उसमें रहेंगे, तुम क्यों रहोगे? कर्म संचित तब बनते हैं, जब मनुष्य स्वार्थ से प्रेरित होकर कर्म करता है। इसलिए इससे छूटने के लिए आदमी परमार्थ में जुटे।

अपने पचहत्तर साल के जीवन में मेरा तो यही अनुभव है कि जो कुछ होगा, दूसरों के लिए होगा। हमारा पैसा हमारा है ही नहीं, उतना ही खर्च करेंगे, जितना शरीर को जरूरत है। इतने साल हुए, मैंने अपने लिए कभी घड़ी नहीं खरीदी। चाहता तो सर्वोत्तम घड़ी खरीद सकता था, लेकिन नहीं, हम जो कुछ भी करेंगे, पहले दूसरों के लिए करेंगे। जब पहले इस सिद्धान्त को लागू करते थे तो थोड़ा अस्पष्ट था, पर अब स्पष्ट होता जा रहा है। जैसे-जैसे स्पष्ट होता जाएगा, वैसे-वैसे हमारे अन्दर एक प्रकाश प्रकट होता जाएगा। हमें तो सबसे ज्यादा फायदा इसी सिद्धान्त से हुआ है। न संन्यास से इतना फायदा हुआ, न तीर्थाटन से, न शास्त्र पढ़ने से, और न योग से। अब निर्णय ले लिया है कि मैं सिर्फ दूसरों के लिए जीयूँगा। मैं तो कहता हूँ कि हर व्यक्ति को यही करना चाहिए। मैं सबसे यही बात कहता हूँ कि तुम लोगों को अपनी कमाई का एक हिस्सा दीन-दुखियों, गरीब-जरूरतमंदों के लिए निकाल देना चाहिए। अगर घर में पचास साड़ियाँ आती हों तो दो साड़ियाँ किसी गरीब के लिए निकाल दो। अगर घर में आठ-दस जोड़े जूते हों तो दो जोड़े जूते किसी गरीब के लिए निकाल दो। अगर घर में दस तोला सोना हो, तो एक तोला सोना किसी गरीब लड़की की शादी में लगाओ। अगर दस का दस तोला दे दो तो बहुत ही अच्छा है, तब तो झंझट ही नहीं रहेगा। पर उसके लिए दिल चाहिए।

कोई भी आदमी स्वयं पैसा नहीं कमाता है, समाज की वजह से कमाता है। अगर यह समाज न होता तो मैं पैसा भी नहीं कमा पाता। हम सब समाज के ऋणी हैं। जो कुछ आज हमारे पास है, वह समाज का ही है। उस पर समाज का भी उतना ही अधिकार है, जितना तुम्हारा। यह विचार मुझे यहाँ प्राप्त हुआ और धीरे-धीरे यह विचार स्पष्ट होता गया। इसलिए मैं अपने आसपास सिर्फ ऐसे लोगों को इकट्ठा कर रहा हूँ जो दूसरों के लिए जियेंगे। संन्यासी हों या गृहस्थ, विवाहित हों या अविवाहित, जवान हों या बुजुर्ग, मैं इसकी परवाह नहीं करता। बस दूसरों के लिए जीयो। दो बार रोटी खा लो, और दूसरों के लिए काम करो। हमारी और कोई जरूरत नहीं, हमें चेला नहीं चाहिए। हमें ऐसा आदमी चाहिए जो अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए जी सकता हो।

अपने लिए तो सारी दुनिया जीती है, पर दूसरों के लिए कौन जी रहा है? तुम जो पैसा कमाते हो, वह अपने माता-पिता, बीवी-बच्चों और सगे-सम्बन्धियों के लिए ही तो खर्च करते हो। नहीं, दूसरों के लिए खर्च करो। यदि हर आदमी इस विचार को ग्रहण कर ले, हर आदमी अपनी तरफ से

एक-एक बालू का कण इकट्ठा करे, तो सेतु बनाने में मदद होगी। गिलहरी की कहानी मालूम है न? यह जरूरी नहीं कि तुम्हें दस-बीस लाख रुपया देना है, हजारों साड़ियाँ देनी हैं, या कोई बहुत बड़ा महल बनाना है। यदि हर व्यक्ति एक मोमबत्ती जलाए तो अंधेरा दूर हो जाए। एक-एक आदमी एक-एक काम में जुटे और प्रत्येक के मन में यह भावना होनी चाहिए। गरीब और अमीर, दोनों में परमार्थी भावना आनी चाहिए। कंगाल और भिखारी के मन में भी यह भावना आनी चाहिए। चोर-डाकू के अन्दर भी यह भावना आ जाए तो बहुत अच्छा है। चोर सोचे कि आज डकैती करेंगे, बढ़िया माल मिलेगा, तो किसी गरीब का घर बना देंगे, किसी को गाय दे देंगे, उस लड़के की चार सौ रुपये फीस दे देंगे, किसी की लड़की की शादी के लिए बीस हजार रुपया दे देंगे। चाहे कोई चोर हो या वेश्या, व्यभिचारी, डाकू, साधु, महात्मा, गृहस्थ, वकील, डॉक्टर, व्याख्याता, कंगाल या भिखमंगा, हर एक के मन में दूसरे के प्रति भावना जागनी चाहिए। तब जाकर कर्मों का नाश होगा। नहीं तो संचित कर्मों का फल जरूर मिलेगा, जिसे भोगना ही पड़ेगा।

– 13 अक्टूबर, 1997





अध्याय 4

हमारे यहाँ कहते हैं कण-कण में, जर्रे-जर्रे में भगवान हैं। भगवान की परिभाषा क्या है? *'तत् त्वम् असि।'* परमाणु सिद्धान्त भी तो यही कहता है। अणु में इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन और न्यूट्रॉन होते हैं, और वह अपने आप में पूर्ण होता है। कई साल पहले आइंस्टाइन के समय में यह पता चला था कि जैसे हमारा यह सौर मण्डल है, जिसमें शुक्र ग्रह, गुरु ग्रह, मंगल ग्रह, शनि ग्रह आदि सूर्य के चारों ओर घूमते रहते हैं, वैसे ही बहुत सूक्ष्म अणु होता है, जिसका अनुसन्धान करने पर वही चीज पायी गयी है। वहाँ भी वही हो रहा है। विराट् सृष्टि और महासूक्ष्म सृष्टि, माने कण-कण में सृष्टि। सृष्टि केवल बाहर नहीं है। जो बाहर है, वही अन्दर है। जो अन्दर है, वही बाहर है। *यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे।* बाहर और अन्दर में कोई अन्तर नहीं है। रामचरितमानस कहता है–*जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।* वीचि माने तरंग। पानी में तरंग है या तरंग में पानी, बोलो? यही तो वेदान्त का सिद्धान्त है।

हिन्दु दर्शन को कोई भी विज्ञान गलत नहीं कह सकता है, क्योंकि यहाँ सब चीजें विज्ञान पर आधारित हैं। ऋषि-मुनियों ने साफ-साफ कह दिया कि एक गोत्र में शादी नहीं होनी चाहिये। एक अनुवांशिक समूह की उसी अनुवांशिक समूह में शादी नहीं होनी चाहिये। नहीं तो अस्वस्थ और रोगी बच्चे पैदा हो जाएँगे। वही देख रहे हैं, पारसियों में घर ही घर में शादी हो जाती है, इसलिए सब घटते जा रहे हैं। मानव डी.एन.ए. के संयोग को जितना तुम सुरक्षित बनाओगे, उतना ही वह अच्छा परिणाम देता है। इस पर तो बहुत काम हो रहा है।

आज के जमाने में लोग फिर से धर्म, अध्यात्म और भक्ति की ओर उन्मुख हो रहे हैं।

मेरी समझ में भक्ति आन्दोलन और आध्यात्मिक आन्दोलन इसलिए आवश्यक हैं कि व्यक्ति का अशान्त मन शान्त हो। जो पैसे वाले देश हैं, वहाँ बहुत अशान्ति है। स्वीडन दुनिया का सबसे सम्पन्न राष्ट्र है। जैसे यहाँ तुम दुकान में जाकर बीड़ी और पान मोल लेते हो, वैसे वहाँ नौकरी मिलती है, घर मिलता है। कोई नहीं कह सकता कि इंतजार करो। चाय की दुकान पर चाय लेने जाते हो तो कोई कहता है क्या कि इंतजार करो। यहाँ से जो लोग जाते हैं, अपने आश्रम की बात कहता हूँ, उन्हें दूसरे दिन घर और नौकरी मिल जाती है। यहाँ से किसी को चिट्ठी लिख दी कि मेरे लिये घर और नौकरी की तलाश कर लेना। यहाँ से सबेरे पहुँचते हैं, घर में घुसते हैं, दूसरे दिन नौकरी मिल जाती है। लेकिन फिर भी वहाँ आत्महत्या की दर दुनिया में सब से अधिक है।

तो उसका क्या कारण है?

वही तो तुम्हें बता रहा हूँ। वहाँ आध्यात्मिकता का अभाव है, मन अशान्त है, विषादग्रस्त है। आत्महत्या कब होती है? जब मनुष्य विषाद में चला जाता है। सामान्य आदमी थोड़े ही आत्महत्या करेगा। अमरीका जैसे देशों में, जहाँ पर यौन सम्बन्ध पूर्णतया स्वतन्त्र हैं, समझ में नहीं आता बलात्कार क्यों होता है? बलात्कार वहाँ हो सकता है जहाँ बन्धन हैं, पर वहाँ क्या समस्या है? खोपड़ी खराब हो गयी है। उस खोपड़ी को ठीक करने के लिये आध्यात्मिकता की आवश्यकता पड़ती है। जब तक आदमी की खोपड़ी ठीक रहेगी, वह ठीक तरह से चलेगा ।

आदिवासी जनजातियाँ

आदिवासी का मतलब उस देश के मूल वासी। हिन्दुस्तान में बाहर के लोगों के आने के पहले जो लोग थे, वे यहाँ के आदिवासी माने जाते हैं। जैसे झारखण्ड में संथाल, छोटा नागपुर की तरफ किरात वगैरह। उड़ीसा, बिहार, बंगाल, मध्यप्रदेश, राजस्थान और महाराष्ट्र जैसे राज्यों में बहुत बड़ा क्षेत्र है आदिवासियों का।

संथाल लोगों का पहनावा संथाली लड़कियों से पहचाना जाता है। उनकी बोली संथाली होती है, उनके अलग-अलग सम्प्रदाय भी हैं। संथाल लोगों

की जो शारीरिक बनावट है, वह पश्चिमी देश के लोगों से मिलती-जुलती है। कन्धों से कमर तक जो हमारी दूरी होती है, वह पश्चिमी व्यक्ति से अलग होती है। पेट, कमर, पीठ–ये सब अलग हैं।

ये मूल निवासी केवल हिन्दुस्तान में ही नहीं, अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया और अमरीका में भी रहते आए हैं। यूरोप के लोग अमरीका गये और वहाँ अपना राज कायम किया। वे वहाँ के मूल निवासी नहीं, नागरिक हैं। यहाँ संथाल परगना में जितने लोग रहते हैं, उनमें मूल निवासी केवल संथाल हैं। बाकी लोग यहाँ बाहर से आकर बसे हैं। क्यों बसे? हर कबीले का एक राजा होता है, संथालों का भी कोई राजा रहा होगा। जब उसने देखा कि राजनैतिक झगड़े होने लगे, तब दूसरे लोगों को वहाँ बुलाकर, बसाकर राजनैतिक सन्तुलन बनाए रखा। अब यहाँ 40 प्रतिशत संथाल हैं, 60 प्रतिशत बाहर के हैं, तो राजनैतिक सन्तुलन हो गया। सब जगह ऐसे ही है। काश्मीर में राजनैतिक सन्तुलन ऐसे ही है। काश्मीर का राजा तो हिन्दू रहा है, और प्रजा मुसलमान। यह समझौता हो गया, राजा हिन्दू रहेगा और प्रजा मुसलमान रहेगी। राजनैतिक सन्तुलन के लिये लोगों को बाहर से बुलाया जाता है। बंगलादेशी दिल्ली में रहते हैं। उनको क्यों नहीं निकाल पा रहे हैं? क्या दिक्कत है? वह राजनीतिज्ञों का चुनाव क्षेत्र है। दक्षिण भारत के मालाबार में तुम्हें दो रंग मिलेंगे, सफेद और काले। जितने सफेद हैं, वे यहाँ के हैं, जितने काले हैं, बाहर से आए हैं।

आदिवासी लोग ज्यादातर जंगलों में रहते हैं पर अब तो जंगल-जंगल में सरकार पहुँच रही है। पहले सरकार जंगलों में नहीं जाती थी, जंगल निजी होते थे। बचपन में हमारे पास डेढ़ हजार एकड़ जंगल था। उसमें से जो निकलता था, हम लोग बेचते थे। उसमें शेर, हिरण, भेड़, चील, सब तरह के जानवर रहते थे। वह हमारा जंगल था। सरकार को चार-पाँच पैसे लगान देते थे। अब तो सब जगह सरकार पहुँच गई है। सब जगह जिलाधीश, वन अधिकारी चले जाते हैं।

जंगल के लोग अब थोड़ा-थोड़ा सामने आने लगे हैं। नीलगिरि में जो कोल जातियाँ हैं, वहाँ औरतें लंगोटी पहनती हैं। हमने अपनी आँखों से देखा है। छत्तीसगढ़ के जगदलपुर और बस्तर इलाकों में आदिवासी औरतें ब्लाउज या पेटीकोट नहीं पहनती हैं, एक ही साड़ी लपेट लेती हैं। नहाती हैं तो आधे को धोकर पहन लेती हैं, बाद में दूसरे आधे को धो लेती हैं। ये लोग सभ्यता

से बिल्कुल अछूते हैं। अण्डमान-निकोबार द्वीप के जारवा लोग बाहर निकलते ही नहीं हैं। आज भी वे दूसरे लोगों के साथ नहीं मिलते हैं। जब लोग वहाँ अनुसन्धान के लिए या फोटो वगैरह लेने के लिये जाते हैं तो वे लोग भाग जाते हैं। वे लोग पढ़ना-लिखना नहीं चाहते। वे कहते हैं क्यों पढ़ें? पढ़ने-लिखने से खराब होंगे।

वे ठीक ही तो कहते हैं, पढ़ाई में खराबी ही है ।

यह अच्छा और खराब होने का सवाल नहीं है। सवाल आज के समाज में अस्तित्व का है। अगर कोई पढ़ेगा-लिखेगा नहीं, तो संघर्ष नहीं कर सकता, कमाई नहीं कर सकता, घर-बार नहीं देख सकता। आज एक व्यक्ति के अस्तित्व का सवाल नहीं है, राष्ट्र के अस्तित्व का सवाल है। राष्ट्र के ऊपर हमेशा विपत्तियाँ आती हैं। कोई यह न सोचे कि आजाद हो गये हैं, अब कुछ नहीं होगा। दुश्मन हमेशा तैयार रहता है। यही दुनिया की रीति है। दूसरे व्यक्ति की जमीन हड़पने के लिये, दूसरे राष्ट्र की जमीन हड़पने के लिये, हर जगह झगड़ा है। दक्षिण कोरिया और उत्तरी कोरिया में झगड़ा, हिन्दुस्तान-पाकिस्तान में झगड़ा, उत्तरी आयरलैण्ड और दक्षिणी आयरलैण्ड में झगड़ा, बोसनिया-चेचनिया-सर्बिया में झगड़ा, चीन और हिन्दुस्तान में झगड़ा, कितने नाम बताएँगे। यह सब देखकर लगता है कि यह मनुष्य का स्वभाव है। मनुष्य का नहीं, जानवर का स्वभाव है।

जंगलों में शेर अपने क्षेत्र में ही टट्टी और पेशाब करता है, वहाँ अगर दूसरा शेर आयेगा तो लड़ाई होगी। संघर्ष का जो सिद्धान्त है, यह तेरा नहीं मेरा है, यह जीव का स्वभाव है जो हमेशा से ही चला आया है। आखिर क्या जरूरत थी अँग्रेज लोगों को हिन्दुस्तान आने की? क्या जरूरत थी यूरोपीयन लोगों को अमरीका जाने की, लड़ाई करने की, हिंसा करने की? यह मनुष्य का स्वभाव है। दुनिया में सब जगह ऐसा है। यूरोप के लोग उत्तरी अमरीका गये, और वहाँ न्यूयॉर्क जो आज अरबों-खरबों की सम्पत्ति है, वह मात्र 25 डॉलर में मोल ली। प्यार से नहीं माने, पैसे से नहीं माने तो गोली से माने। अमरीका में सब जगह आग लगा दी। दुनिया में इस वक्त करोड़ों आदिवासी हैं, सब दबे हुए हैं। न्यूजीलैंड में माउरी जाति के लोगों को देखो, अमरीका के रेड इंडियन्स को देखो, ऑस्ट्रेलिया में एबोरिजीन्स को देखो। सब जगह यही हाल है, पिछड़े, अशिक्षित, उपेक्षित।

आज के जमाने में पढ़ाई-लिखाई के माध्यम से हमारे लड़के-लड़कियों को यह मालूम होना चाहिये कि दुनिया में क्या हो रहा है, दिल्ली में क्या हो रहा है? क्या वहाँ गलत निर्णय या समझौते हो रहे हैं? सब नजर रखनी पड़ती है। आखिर अंग्रेज यहाँ जमे क्यों? अकबर के वक्त में अंग्रेज यहाँ आने शुरू हो गये थे, लेकिन अकबर ने उनको व्यापार करने की अनुमति नहीं दी। शाहजहाँ के वक्त में उन्होंने फिर जोर लगाया, नहीं हो पाया। उस समय थोड़ा-सा, जैसे सब्जी वगैरह बेचने का व्यापार चालू किया। फिर उसकी बेटी बीमार पड़ी। उसका इलाज करने के लिये यहाँ डॉक्टर नहीं मिला तो अंग्रेज डाक्टर से इलाज करवाया। बेटी ठीक हो गयी तो उसे कहा, 'इनाम ले लो।' डॉक्टर ने कहा, 'इनाम नहीं चाहिये। हमारे व्यापारी लोग यहाँ आते हैं, आप उनको व्यापार करने की इजाजत दे दीजिये।' अब तो कुछ विरोध नहीं, हंगामा नहीं, सरकार का हुकुम है। ईस्ट इंडिया कम्पनी के नाम पर अंग्रेज लोग व्यापार भी कर रहे थे, और धीरे-धीरे हमले भी कर रहे थे। लोग विरोध तो कर रहे थे, राजा ने बातें नहीं सुनीं तो लोगों ने पिटायी शुरू कर दी, जैसे होता है। तब राजाओं और नवाबों ने सुरक्षा मांगी। ब्रिटेन ने कहा, 'हम क्या सुरक्षा देंगे? हम आपको अपने अधीन रखेंगे।' कहा, 'ठीक है रखिये।' उन्होंने हथियार आयात करना शुरू कर दिया, समुद्र तट खुला था। बाद में देखा कि हमारे बाल-बच्चे असुरक्षित हैं कि तो जो किले इस्तेमाल नहीं होते थे, उनको लेते गये, और जनता को मालूम नहीं। जनता को जब तक मालूम पड़ा, तब तक बहुत देर हो चुकी थी।

इतिहास की पुनरावृत्ति तभी रोकी जा सकती है जब जनता पढ़ी-लिखी हो, जो सवाल कर सके। किसी भी राष्ट्र में लड़का हो या लड़की, वह नौकरी करे या नहीं, पर उसका पढ़ा-लिखा होना जरूरी है। पढ़ाई-लिखाई से कोई अच्छा बने या खराब, इसका सवाल ही नहीं उठता। आज सवाल है सशक्त नागरिक होने का, जो बोल सकता है, लिख सकता है, लड़ सकता है। बाजार में जैसे दादागिरी करने वाले लोग होते हैं, क्रान्तिकारी लोग वैसे ही थे, पर काम कर गये। लोगों के अच्छे बनने से क्या फायदा? जो देश के लिये अपनी जान दे गये, हमें उससे मतलब है। गुण्डे होने पर भी हम उनकी आलोचना नहीं करते हैं, बल्कि उनकी पूजा करते हैं, क्योंकि उन्होंने देश के लिये अपनी जान दे दी। अब तुम ही बताओ अपना घर बचाना जरूरी है या लड़के-लड़की का अच्छा होना जरूरी है।

चीन ने कैसे इतनी उन्नति कर ली, जबकि वे भी हमारे साथ ही आजाद हुए हैं?

चीन में अर्थव्यवस्था को सरकार नियंत्रित कर रही थी, परन्तु भारत में अर्थव्यवस्था को सरकार के साथ-साथ बड़े-बड़े उद्योगपति लोग भी नियंत्रित कर रहे थे। चीन में पक्का अनुशासन है, उसको मानना पड़ता है। यहाँ लोग अनुशासन मानने के लिये तैयार नहीं हैं। चीन के अन्दर कोई भी विदेशी सामान आना सम्भव नहीं है। वहाँ तो किसी के दूसरे प्रान्त से आने से सबके कान खड़े हो जाते हैं। चीनी संस्कृति, भाषा, राष्ट्र, राजनीति–यह हमेशा दुनिया के लिये अनजान रही है। तुम चीन की बजाय इंग्लैण्ड के बारे में अधिक जानते हो कि नहीं। चीन तो बगल में है, पर तुम्हें उसके बारे में कितनी जानकारी है? उसने बड़े आराम से तिब्बत को हड़प लिया, किसी की हिम्मत नहीं हुई कि दो शब्द कहे। तुम काश्मीर पर कब्जा करके दिखाओ। नहीं कर सकते क्योंकि तुम डरपोक राष्ट्र हो। तुम डरते हो कि दूसरा क्या कहेगा। चीन डरता नहीं है, उल्टा बोलता है क्या कर लोगे हमारा, दो रोटी तो हमारे यहाँ पैदा होती ही है। तियानमेन चौक पर जब उसने अत्याचार किया, तो अमरीका और यूरोप ने उसको कितना डराया-धमकाया, पर क्या असर हुआ?

चीन बदनामी से डरता नहीं है। क्यों? चीन में अधिकांश लोग निरक्षर हैं, गरीबी बहुत है, गन्दगी बहुत ज्यादा है, अन्धविश्वास बहुत ज्यादा है, बुरी प्रथायें बहुत ज्यादा हैं, सब भेड़-बकरी वाले हैं। साम्यवाद वहीं चल सकता है, जहाँ भेड़-बकरियाँ हैं। यह हुई पहली चीज। दूसरी चीज यह कि उसने रूस से दोस्ती की और सब टेक्नोलॉजी लेकर उसको अंगूठा दिखा दिया। अब वह अमरीका और यूरोप से दोस्ती कर रहा है, उनसे संसाधन ले रहा है, उनको भी दस-बीस साल के अन्दर अंगूठा दिखाने वाला है। किसी-न-किसी बात पर लाकर कहेगा, भागो हमारे देश से। अभी तो वहाँ हवाई जहाज बनाने के कारखाने लग रहे हैं, अमरीकी कम्पनियाँ आ रही हैं। नवीनतम टेक्नोलॉजी आ रहा है। वही उसने रूस के साथ किया था, और यही हम लोगों को करना चाहिये। पर हम नहीं कर सकते हैं, क्योंकि अगर हम कुछ करते हैं, तो यह कुछ कहता है, वह कुछ कहता है।

स्वामीजी, जिस तरह हमारा आध्यात्मिक दर्शन है, उसी तरह चीनी लोगों का भी कोई दर्शन है?

चीन मूलत: एक नास्तिक राष्ट्र है। ईसाई लोग, मुसलमान लोग मूलत: आस्तिक होते हैं, जबकि चीनी लोग मूलत: नास्तिक हैं। उनका जो मुख्य दर्शन है, वह कन्फ्यूशियस का है। चीन की सभ्यता और संस्कृति का आधार कन्फ्यूशियस है। वह बहुत बड़ा दार्शनिक था। उसने जो भी कहा, उसमें धर्म को आधार नहीं बनाया। जो चीज नहीं दिखाई देती है उसको आधार नहीं बनाया। उसने केवल समाज, आचार और विचार को आधार बनाया। कई सौ सालों के बाद जब वहाँ बौद्ध विचारधारा गयी, तो चीनी लोगों को पसन्द आयी, क्योंकि बौद्ध विचारधारा भी नास्तिक विचारधारा है। यद्यपि बुद्ध को भगवान बुद्ध कहते हैं, पर उनकी विचारधारा में भगवान के लिये कहीं कोई स्थान नहीं है। बुद्ध जब जिन्दा थे और उनसे ऐसे प्रश्न पूछे जाते, तब वे एक ही बात कहते थे, 'जो प्रश्न तुम पूछ रहे हो, वह बेमतलब है, अप्रयोजनीय है। यह हमारी समझ के परे की चीज है। मतलब की चीज यह है कि संसार में लोग दु:खी हैं, उस दु:ख को कैसे दूर करना चाहिये। मैं यह नहीं कहता हूँ कि भगवान हैं, मैं यह भी नहीं कहता कि भगवान नहीं हैं।' उन्होंने कहा कि यह मेरा विषय नहीं है। वे लौकिक, दैनिक, व्यावहारिक विषय पर बोलते रहे। इसलिये चीनी लोग प्रभावित हुए।

तिब्बत से होते हुए आचार्य पद्मसम्भव चीन गये और चीनी राजाओं और सम्राटों के दरबार में रहे। दीपंकर महाराज तिब्बत गये थे, और चीन गये थे आचार्य पद्मसम्भव। वहाँ उनका बड़ा स्वागत हुआ, बौद्ध धर्म की पढ़ाई शुरू हुई। वहाँ से लोग हिन्दुस्तान आने लगे। अनेक तीर्थयात्री तिब्बत होते हुए आये, कुछ मलाका की खाड़ी होते हुए समुद्री रास्ते से आये। यहाँ से ग्रन्थ लेकर गये, ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद हुआ। उन चीनी यात्रियों के वर्णन में मुंगेर और देवघर का उल्लेख भी आता है। जगन्नाथपुरी की रथयात्रा, कुम्भ-मेला, दक्षिण भारत के मंदिर, सब उन लोगों ने देखे। पर चीनी लोगों को ईश्वरवाद पसन्द नहीं था, आज भी नहीं है।

तो तन्त्र वहाँ था ही नहीं?

नहीं, तंत्र का ईश्वर से कोई मतलब नहीं है। न ही धर्म का ईश्वर से मतलब है। धर्म तो मनुष्य के कर्त्तव्य को कहते हैं। धर्म का अर्थ होता है, *यतो अभ्युदय:,* जिससे तुम्हारी उन्नति हो, तुम्हें सुख मिले। तुम्हारा धर्म है कि तुम अपनी स्त्री से मत लड़ो, अपने बच्चों का पालन-पोषण करो, माता-पिता की सेवा करो, किसी का कत्ल मत करो, किसी की चोरी मत करो, शराब

मत पीयो। धर्म तो यही है न? *आचार प्रभवो धर्मः*–आचार-विचार ही धर्म है। धर्म के बीच में यह जो ईश्वर आ जाता है उसे धर्म न कहकर भक्ति या अध्यात्म कहते तो अच्छा होता। कोई टीका वगैरह लगा लेता है तो कहते हैं यह बड़ा धार्मिक है। धार्मिक नहीं, भक्त कहो। भगवान को मानना भक्ति है, अध्यात्म है। मगर तुम भगवान को न मानो और जो भी तुम हो–बेटे, बाप, पति या नौकर, अपने कर्त्तव्य का ठीक ढंग से पालन करो, धर्म वही है।

चीन के लोगों ने भले ही बौद्ध धर्म को पसन्द किया, पर वहाँ भी टोनाटोटका है, यन्त्र-मन्त्र है, भूत-प्रेत की पूजा होती है, काला धागा बाँध दिया, नीला धागा बाँध दिया, वही जो यहाँ के देहात में होता है। हम जैसे साधु-महात्माओं की पूजा भी होती है वहाँ, क्योंकि समझते हैं बेटा होगा, बेटी होगी।

चीन में संस्कृत की पढ़ाई शुरू होने के बाद बौद्ध प्रचारक तैयार हुए जो कोरिया की तरफ गये। चीन के बाद कोरिया में बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ। फिर कोरिया के बाद बौद्ध धर्म ने जापान में प्रवेश किया। जापान के लोग भी उससे बहुत प्रभावित हुए। वैसे जापान का मूल धर्म शिन्तो है। उन्होंने बौद्ध धर्म जानने के लिए वहाँ से लोगों को हिन्दुस्तान भेजना चाहा। तीन बार कोशिश की, एक बार व्यापारी, दूसरी बार साधु, तीसरी बार कोई और। तीनों बार विफल हो गये किसी-न-किसी वजह से। चीन के साथ जापान की दोस्ती भी नहीं थी, राजनैतिक रस्साकशी थी। अन्त में जापानियों ने कहा, 'तीन प्रयास हमने किये, कामयाब नहीं हुए, हिन्दुस्तान जा नहीं सके। और चीन से जाना सम्भव है नहीं।' तब चीन के साथ उनका कूटनीतिक सम्बन्ध हुआ। चीन और जापान के बीच राजनैतिक सन्धि हुई। उस राजनैतिक सन्धि में एक सहमति थी कि हमारे लोग तुम्हारे यहाँ जाकर बौद्ध धर्म का अध्ययन करेंगे। तब जाकर बौद्ध धर्म जापान में फैला। और जब जापान में बौद्ध धर्म फैला, तब तक हिन्दुस्तान में बौद्ध धर्म पर वैदिक धर्म फिर छा चुका था। वैदिक धर्म का क्या मतलब होता है? भवानी, दुर्गा, इन्द्र, वरुण, कुबेर, इत्यादि देवी-देवता को मानना, यह फिर जाग चुका था।

बौद्ध धर्म में दो मार्गों का उदय हुआ। भगवान बुद्ध के निर्वाण के बाद राजगीर में जो संसद बैठी, वहाँ तीन पीटकों का संकलन हुआ–सूत्र पीटक, धर्म पीटक और विनय पीटक। ये तीन ग्रन्थ उनके तीन वेद माने जाते हैं। उसके बाद उनके यहाँ दो सम्प्रदायों का जन्म हुआ। एक को कहते हैं हीनयान, दूसरे को महायान, अर्थात् छोटा मार्ग और बड़ा मार्ग। इस तरह

बौद्ध दो भागों में बँट गए। नारोपा ने हीनयान को पसन्द किया। नारोपा, मारपा, मिलारेप्पा–ये नाम आते हैं न नालन्दा से सम्बन्धित।

मिलारेप्पा तिब्बत वाले? वे नालन्दा के थे?

नहीं, उनके दादा गुरु नारोपा नालन्दा के थे। वे यहीं के स्नातक थे, और यहीं शिक्षक थे। महायान वालों ने बाद में कहलगांव के पास दूसरा विश्वविद्यालय बनाया, विक्रमशिला। वहाँ केवल शुद्ध बौद्ध धर्म को नहीं रखा, बल्कि वहाँ पर तारा आ गयी, अमिताभ आ गये, अवलोकितेश्वर बुद्ध आ गये, हिन्दुस्तान के देवी-देवता भी आ गये। भवानी भी थी, दुर्गा भी थी। देवी आयीं, तो तन्त्र तो आयेगा ही। यह विक्रमशिला की बात बता रहा हूँ, जो नालन्दा के बाद का विश्वविद्यालय था।

चीन से होते हुए महायान का प्रभाव जापान तक पहुँचा। हम चीन तो ज्यादा नहीं गये हैं, पर जापान बहुत बार गये हैं। जापान के गाँवों में इन्द्र का मन्दिर देखा, दुर्गा, भवानी, वरुण और हनुमान का मन्दिर देखा। वेदों में आने वाले कम-से-कम पचास देवी-देवताओं के मन्दिरों के खण्डहर वहाँ देखे। महायान बौद्ध धर्म के साथ वहाँ वैदिक धर्म भी चला गया। बौद्ध धर्म तो खूब फैला, लेकिन वैदिक धर्म नहीं फैला।

वैदिक धर्म में मूल चीज है मूर्त्ति पूजा। ईसाई धर्म, इस्लाम धर्म और यहूदी धर्म, ये तीनों धर्म मूर्त्ति पूजा विरोधी हैं, पुनर्जन्म विरोधी हैं, और बहुदेवतावाद के विरोधी हैं। इसलिये पश्चिम में वैदिक धर्म फैल नहीं सका। बहुत महापुरुष गये पश्चिम की तरफ, कितना भी प्रचार किया, लेकिन नहीं हो सका। परन्तु अब कुछ सफलता मिली है। वैदिक दर्शन और धर्म, पाश्चात्य जगत् में फैलने लगा है। लोगों ने उसे स्वीकार किया है और उसमें दीक्षा ली है। नहीं तो इसके पहले सम्भव नहीं था। इस्लामी देशों में तो अभी भी सम्भव नहीं है। घर के बाहर तुम मन्दिर नहीं बना सकते। किसी इस्लामी देश में जाओ, तुम्हारा मन्दिर जाना, दीक्षा लेना सम्भव नहीं है। वह अभी ईसाई देशों में सम्भव हुआ है। पहले तो ईसाई देशों में गिरजाघर के अलावा कुछ बन ही नहीं सकता था, कानून था। जमने ही नहीं देते थे। अब सब देशों में हिन्दुत्व के नाम पर वह नियम कटा है। स्विट्ज़रलैण्ड में कटा है, फ्राँस में कटा है, अमरीका में तो पहले ही कट गया था। इसलिये अब सब जगह मन्दिर बन गये हैं वहाँ, क्योंकि जमीन मिल सकती है।

ताओवाद बौद्ध धर्म से निकला है या पहले से था?

नहीं, ताओवाद बहुत पुराना है। ताओ का मतलब होता है सत्य। ताओवाद का मतलब होता है सत्य सम्प्रदाय। जैसे हम लोग देवी-देवता मानते हैं, वैसे ये लोग नहीं मानते। मगर भूत-प्रेत, पिशाच, जिन्न, सब मानते हैं ये लोग। वहाँ मत जाओ, चाण्डालिन रहती है, वहाँ मत जाओ, भूतनी रहती है। यह भी तो देवी-देवतावाद हुआ न। हमारी तरह देवी-देवता को नहीं मानते पर फिर भी बोलेंगे, 'उस जगह में मत जाओ, वहाँ कोई रहता है। वहाँ जाने से काली छाया लग जाती है। वह मकान भूत वाला हो गया है।' भूत माने क्या?

हमारा एक बार इंग्लैण्ड में एक औरत के साथ इस बात पर झगड़ा हुआ। वह बड़े पैसे वाली थी, अपने पैसे पर बड़ा गर्व था। उसने हमसे कहा, 'तुम पुनर्जन्म को मानते हो तो साबित कर सकते हो? देखा है तुमने?' मैंने कहा, 'मैंने तो नहीं देखा, आपने ही देखा होगा।' वह बोली, 'मैंने नहीं देखा है।' खैर, वह पैसे वाली थी, हम उसके पास ज्यादा आते-जाते नहीं थे। जाते भी तो योग शिक्षक के रूप में जाते, गुरुजी के रूप में नहीं। उसे थोड़ा बहुत आसन-प्राणायाम सिखा देते थे। शहर के लोगों ने एक अतिथि गृह में मेरा रहने का इन्तजाम करके रखा था।

एक दिन ऐसे ही बात चल रही थी किसी घर को खरीदने की। वहाँ आश्रम खोलने का विचार था। तो किसी ने कहा, 'उस घर में तो कोई रहता नहीं है, सस्ते में ले लो, दो हजार पाउण्ड में मिल जायेगा।' वह औरत बोली, 'नहीं, वह घर प्रेतग्रस्त है।' मैंने उससे कहा, 'यह तुम कैसे कह सकती हो, हम उस मकान को जरूर खरीदेंगे।' वह बोली, 'वहाँ एक आदमी रहता था, किसी ने गला पकड़ कर उसको मार दिया। बाद में एक लड़की रहती थी, पागल हो गयी। एक आदमी आया, डर के मारे मर गया।' मैंने कहा, 'पागल होगा, इसलिए मर गया।' उसने कहा, 'नहीं, वहाँ एक आदमी रहता था जिसका कत्ल हुआ, उसकी आत्मा वहाँ रहती है। जो वहाँ जाता है, उसको मार देती है।' मैंने कहा, 'क्या तुम्हारे पास सबूत है कि पुनर्जन्म होता है? पिछली बार तुमने यही प्रश्न मुझसे पूछा था और जवाब तुमको इस बार दे रहा हूँ, जवाब तुम्हारे पास है।' जब आदमी मरने के बाद बचता नहीं है, सब कब्र में ही खत्म हो जाता है, तब वह कौन आदमी उस घर में बैठा है? भूत नाम से सकपका गयी बेचारी।

इस तरह से सब जगह होता है। चीनी लोग देवी-देवता मानते नहीं हैं, पर घर के आगे कुछ-न-कुछ रखते हैं, उसका नाम ऐसा-वैसा है करके चूमते हैं

ताकि दुर्घटना न हो। जहाँ कहीं गाड़ियाँ जाती हैं, वहाँ मन्दिर होता है, पैसा चढ़ाते हैं। ऐसा यूरोप में भी होता है। मुसलमान लोग दरगाह को पूजते हैं, चादर चढ़ाते हैं, मगर मुझे कहते हैं हम एक ईश्वर को मानते हैं। हम लोगों के यहाँ तो भगवान सब रूपों में हैं। शिवजी के रूप में भी मानते हैं, रामजी के रूप में भी।

चीन एक नास्तिक राष्ट्र है, मगर वहाँ की व्यक्तिगत और सामाजिक विचारधारा बिल्कुल हिन्दुस्तान की तरह है। वहाँ लड़की की शादी में बाप मिट जाता है। लड़कियों की पवित्रता पर बहुत जोर है। लड़कियों को इतना सम्हाल कर रखा जाता है कि उनका पैर भी किसी को दिखना नहीं चाहिये। जैसे यहाँ होता है न घूँघट, वही हाल वहाँ भी है। वहाँ के शहरी लोग भले ही आधुनिक हैं, मेज-कुर्सी पर बैठते हैं, फैशन वाले कपड़े पहनते हैं, मगर वास्तव में देखा जाए तो चीन बहुत ही पिछड़ा राष्ट्र है, आधुनिक राष्ट्र नहीं है।

बौद्ध धर्म में तन्त्र क्यों मिलाया गया, क्या वह जरूरी है?

तुम्हारे पास दिया भी है, तेल भी है, बाती भी है, मगर जब तक माचिस नहीं जलेगी, बेमतलब है सब। तुम आठ-दस-बारह घण्टे, कितनी भी साधना करो, पर चित्त तुम्हारा एकाग्र होने वाला नहीं। मन तो एक क्षण के लिये भी नहीं रुकता किसी का। सामान्य आदमी का मन यदि एक क्षण के लिये भी रुक जाये, तो वह आदमी पागल हो जायेगा। इसलिए मन को रोकने का सवाल उठता ही नहीं है। अगर तुम हिन्दुस्तान के 90 करोड़ लोगों, दुनिया के 5 अरब लोगों से कहो कि मन को नियंत्रित करो, और तुम्हारे कहने पर सब जबरदस्ती कर भी लें, तो सब पागल हो जायेंगे, क्योंकि मन को रोकना खतरनाक है।

ऋषि लोग तो रोकते थे, कैसे?

अभी ऋषि-मुनियों की नहीं, जन साधारण की बात चल रही है कि उनके जीवन और धर्म में तन्त्र क्यों आया। मन को रोकना मुश्किल है। तब साधना कैसे करोगे? और मनुष्य की उम्र है ही कितनी? परमायु 100, दीर्घायु 75 और अकाल मृत्यु तो कभी भी आ सकती है। मान लो आदमी 75 साल जिन्दा रहा। 50 साल तो घर-गृहस्थी से फुर्सत मिली नहीं, क्या करेगा बेचारा? 50 साल के बाद जब उसको घर-गृहस्थी से फुर्सत मिलती है तो गाड़ी इतनी पुरानी हो जाती

है कि टायर पंक्चर! कभी यहाँ दर्द, तो कभी वहाँ दर्द। सर्दी, जुकाम, बुखार सब चलता रहता है। तब क्या करेगा वह अपने बचे हुए 25 साल में?

ऐसी परिस्थिति के लिए गोरखनाथ जी कहते हैं कि पारा साधो। पारा साधने के लिये व्यक्ति को तन्त्र की आवश्यकता पड़ती है। पारा साध कर उम्र को बढ़ाया जाता है थोड़ा-सा। गोरखनाथ जी कहते थे कि उम्र बढ़ेगी तो कुछ कर पायेंगे। 75 के बदले अगर उम्र 125 हो जाये, तो 40-50 साल कुछ कर सकते हैं। इसलिए बहुत-से लोग गोरखनाथ जी के पीछे पागल थे। मगर जब पारा साधा जाता है, तब शरीर में जो गर्मी हो जाती है, उसे सन्तुलित करना पड़ता है। उसे सन्तुलित करने के लिये अनेक प्रकार की तान्त्रिक पद्धतियाँ हैं। चीन की तान्त्रिक पद्धति का नाम है चीनाचार तन्त्र। बौद्ध लोगों ने इस पद्धति को लेकर विक्रमशिला विश्वविद्यालय में तन्त्र को प्रारम्भ किया। पर इसी तन्त्र की वजह से वे बदनाम भी हुए, क्योंकि तन्त्र एक ऐसी पद्धति है जिसमें सामाजिक हंगामे की बहुत सम्भावना रहती है।

तन्त्र का अभ्यास केवल एकान्त में किया जा सकता है, खुले में नहीं, और हर कोई इसका अभ्यास कर भी नहीं सकता है। तन्त्र अभ्यास के लिये व्यक्ति को संयमी होना चाहिये। खान-पान में, रहन-सहन में, सब चीज में उसे संयमी होना चाहिये। उसको सर्व-ऋतु-सिद्ध होना चाहिये। गर्मी में गर्म न लगे, ठण्ढी में ठण्ढा न लगे। उसे सर्व-आहार-सिद्ध भी होना चाहिये। जो संसारी जीवन में रहते हैं, जिन्हें अच्छा कपड़ा, अच्छा भोजन चाहिये, उन लोगों से तन्त्र का अभ्यास नहीं हो सकता है। तन्त्र सबके लिये नहीं है। हाँ, जो लोग एकान्तिक जीवन व्यतीत कर सकते हैं, मौन का जीवन व्यतीत कर सकते हैं, वे तन्त्र साधना कर सकते हैं।

हमें तो लगता है कि सबसे सरल रास्ता यही है कि हर एक व्यक्ति, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, भगवान की प्राप्ति के लिये गीता के बताये हुए मार्ग, समन्वय योग को अपनाये। स्वास्थ्य के लिये आसन-प्राणायाम करो, राजयोग करो, कर्मयोग करो, अपना भी भला करो, दूसरे का भी भला करो। राजयोग करोगे तो पचास प्रतिशत मन तो अपने आप तुम्हारे साथ हो जायेगा। और साथ में भक्ति योग का अभ्यास। भक्ति जीवन में स्वाद के लिये है। जैसे नमक और चीनी सब तरह के व्यंजनों में आवश्यक हैं, वैसे ही भक्ति जीवन में। गीता का यह सिद्धान्त सबसे उत्तम है। जिन लोगों ने इस मार्ग को ग्रहण किया है, उन्हें सफलता मिली है।

भक्ति यान्त्रिक की बजाय आध्यात्मिक कैसे हो? मन्दिर जाते हैं तो वहाँ बहुत भीड़ होती है। बस किसी तरह यन्त्रवत् पूजा-पाठ करके आ जाते हैं।

उसके लिये सत्संग करना पड़ेगा, बीच-बीच में बैटरी को चार्ज करना पड़ेगा। नहीं तो भावना यान्त्रिक ही रहेगी। जहाँ तक भीड़ का सवाल है, तुम्हें उससे कोई मतलब नहीं। तुम बेकार की बात कर रहे हो। जो व्यक्ति सच्चे प्रेमी होते हैं, वे न तो साँप देखते हैं, न काँटे देखते हैं, न जंगल देखते हैं, न खतरा देखते हैं। उनको तो केवल प्रेमी या प्रेमिका दिखाई देते हैं। भक्ति मार्ग में भीड़ को मारो गोली। तुम्हें भीड़ और गन्दगी से क्या मतलब? होने दो भीड़, गन्दगी भी होने दो, बच्चों को रोने दो, अपने प्रयोजन से मतलब रखो। हम भी पहले ऐसे ही सोचते थे, मगर हमने अपने विचार बहुत वर्षों के बाद धीरे-धीरे बदले। हमने सोचा, नहीं, यह अपनी कुण्ठा है।

मन्दिर में क्या देखना चाहिये, क्या खोजना चाहिये?

आदमी जो कुछ करता है, अपनी समझ और सामर्थ्य के मुताबिक करता है। हमारी समझ और हमारा सामर्थ्य अलग है, तुम्हारी समझ, तुम्हारा सामर्थ्य दूसरा है। हर एक व्यक्ति का दृष्टिकोण समान नहीं हो सकता। मन्दिर में तुम्हारा दृष्टिकोण अलग है, मेरा दृष्टिकोण अलग है। बच्चा, जवान और बूढ़ा, तीनों एक ही वस्तु को अलग-अलग ढंग से देखते हैं। हर एक व्यक्ति अपने संस्कारों के अनुसार मन्दिर में जाये और सोचे कि कैसा व्यवहार करना चाहिये। एक दिन खुद-ब-खुद पता चल जायेगा। और अगर कुछ भी समझ में नहीं आये तो मन्दिर में जाकर कहो, 'भगवान! मैं बहुत अनाड़ी हूँ। मुझे कुछ समझ में नहीं आता है। मुझे स्वामीजी ने मन्दिर जाने को कहा तो मैं आ गया। हाँ, विश्वास है मुझे, मगर बाकी कुछ समझ में नहीं आता।' अब यूँ समझो कि यह बहुत सरल विधि है। बच्चा जब भी माँ के पास जाएगा, माँ उसे माँ की तरह ही प्यार देगी। यही मंदिर जाने का वास्तविक रहस्य है।

आर्य लोग

आर्य लोग बाहर से भारत आये, इस बात का कोई ऐतिहासिक या लिखित प्रमाण नहीं है। किसी ने कह दिया कि आये हैं, तब से यह मिथ्या अवधारणा चल रही है। अब तो इस अवधारणा के विरुद्ध प्रमाण मिले हैं। आर्य लोग

कहीं बाहर से नहीं आये, यहीं आस-पास के रहने वाले थे, इसके प्रमाण मिलते हैं। दो-चार प्रमाण मैं तुम्हारे सामने प्रस्तुत कर सकता हूँ। क्या किसी भी प्राचीन आर्य ग्रन्थ में गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु और कावेरी के अलावा किसी आठवीं नदी का नाम कहीं भी आया है? चारों वेदों में, अठारह पुराणों में, दो इतिहासों में, छः शास्त्रों में कहीं पर भी आठवीं नदी का नाम लिखा हो तो बताओ। अगर आर्य बाहर से आये होते, तो कम-से-कम अपनी नदी का नाम बोलते, अपने पर्वत का नाम बोलते। आर्य ग्रन्थों में पर्वतों में हिमालय, विंध्याचल और मंदराचल जैसे नाम ही आते हैं। जबकि मुसलमान काबा और करबला का नाम लेते हैं। पश्चिम की ओर मुड़कर नमाज़ अदा करते हैं। पारसी लोग आये, बड़े प्रेम से हिन्दुस्तानी बन कर रह रहे हैं। झगड़ा नहीं किया, मिल गये, एक हो गये, मगर अभी भी वे उन नामों को पुकारते हैं, जो ईरान में हैं। वे उत्तर की तरफ देखकर पूजते हैं।

कोई भी जाति अगर दूसरे देश में जाकर बसे और वहाँ साम्राज्य स्थापित करे, वह वहाँ का धर्म कैसे स्वीकार कर सकती है? अंग्रेजों को देखिये, कभी उन्होंने हिन्दू धर्म स्वीकार किया? मुसलमान यहाँ विजयी बन कर आये, क्या उन्होंने हिन्दू धर्म स्वीकार किया? क्या विजेता कभी पराजित राष्ट्र का धर्म स्वीकार करता है? वह तो अपना धर्म देगा। जब अपना धर्म देगा, तब तो वही धर्म देगा, जिस धर्म को साथ में लाया था। तो आर्यों के धर्म में गंगा क्यों थी, वोल्गा क्यों नहीं थी? न वोल्गा नदी का नाम है, न नील नदी का नाम है, न दज़लाफरात का नाम है, कोई तो नाम नहीं है। पर अफगानिस्तान से लेकर बर्मा तक, कैलाश मानसरोवर से लेकर रामेश्वरम् तक सभी नदियों, पर्वतों, जंगलों, मरुस्थलों को उन्होंने माना।

आर्यों की यह जो बाहर से आने की कहानी है, यह ऐंग्लो-सैक्सन जाति की बनायी हुई कहानी है। वेदों में, पुराणों में आर्य शब्द कहीं पर भी जाति के लिये प्रयुक्त नहीं हुआ है। पत्नी पति से कहती है आर्य, मन्त्री राजा से कहता है आर्य। आर्य का मतलब होता है श्रेष्ठ, सभ्य पुरुष। आर्य शब्द हम लोगों के यहाँ मनुष्य के गुणों को दर्शाता है, किसी जाति को नहीं। जाति के लिये बहुत प्राचीन काल से हिन्दू शब्द का उपयोग होता आया है। यह सिन्धु शब्द का अपभ्रंश है। हमारे धर्म का नाम हिन्दू नहीं है, जाति हिन्दू है, धर्म हमारा वैदिक है। खैर अब हिन्दू धर्म कहते हैं तो कोई हर्ज नहीं। उसी तरह अंग्रेजों का धर्म ऐंग्लो-सैक्सन नहीं, जाति ऐंग्लो-सैक्सन है। उनका धर्म है प्रोटेस्टेन्ट।

तब सनातन धर्म किसको कहते हैं?

अपनी कालावधि में धर्म कहीं-न-कहीं पर आकर रुकता ही है। कहीं पर गलती हो गयी, कुछ रुकावट आ गयी तो वह धर्म सनातन नहीं हुआ। सनातन का मतलब होता है लगातार। तुम्हारा धर्म सनातन क्यों है? धर्म में जो भी कहा गया है, अगर तुम्हारे नागरिक उसे न मानें तो वह नष्ट हो जाएगा, सनातन नहीं रहेगा। जैसे हमारे यहाँ औरतों को बोला गया कि घूँघट लगा कर रखो। आज परिस्थिति बदल गई, स्कूल पढ़ने जाना पड़ता है, घूँघट गिर गया नीचे, सलवार-कमीज आ गयी, बाल कट गये। इससे तुम्हारा धर्म नष्ट हो गया क्या? नहीं। सनातन धर्म यह कहता है कि जब तक उस क्रिया से तुम्हारे मूल जीवन में कोई विनाश न आये, तब तक वह ठीक है। अब तुम्हारी बेटी ने बाल छोटे कर दिये, क्या फर्क पड़ता है जी? क्या वह बिगड़ गयी? क्या उसकी मनुष्यता समाप्त हो गयी? क्या उसका चरित्र ही समाप्त हो गया बाल कटाने से? अगर नहीं, तो मान लो उसको। धर्म को चलने दो। इसको कहते हैं निरन्तरता। निरन्तरता का मतलब होता है कि धर्म समझौतावादी, लचीला और लगातार चलने वाला है। हमारा धर्म लचीला है, उसमें बदलाव हो सकता है, इसलिये सनातन है।

– 14 अक्टूबर 1997





अध्याय 5

मौसम पर मूलत: सूर्य का प्रभाव पड़ता है। पर यहाँ नक्षत्रों की जो गणना होती है, वह चन्द्रमा के आधार पर होती है, इसलिये मॉनसून दस दिन आगे-पीछे हो ही जाता है। मॉनसून की गणना अगर केवल सौर पद्धति से की जाये, तो वह सही समय पर होगा। जैसे मकर संक्रान्ति सूर्य उत्सव है, वह 14 जनवरी को ही होगा। कर्क संक्रान्ति की भी तिथि निश्चित है। सूर्य से सम्बन्ध रखने वाले जो पर्व या घटनाएँ होती हैं, वे तो एकदम समय पर होती हैं। मगर चन्द्रमा के अनुसार जिनकी गिनती होती है, उनकी तारीख निश्चित नहीं हो सकती। अगर मकर संक्रान्ति को चन्द्रमा के अनुसार देखा जाये, तो वह पर्व हमेशा एक ही तारीख पर नहीं होगा।

दूसरी चीज है हवाएँ। अपने यहाँ जितने भी तूफान आते हैं, वे सब बंगाल की खाड़ी से ही आते हैं। अरब सागर से तूफान नहीं आते क्योंकि वह तीन तरफ से बन्द है। बंगाल की खाड़ी में जितने भी तूफान आते हैं, वे नीचे से मलाका की खाड़ी होते हुए हिन्द महासागर और प्रशान्त महासागर चले जाते हैं। एटलांटिक और हिन्द महासागर में तूफान ज्यादा नहीं आते। ज्यादा तूफान आते हैं प्रशान्त महासागर में । चीन, ताइवान, जापान, इण्डोनेशिया और फिलीपीन्स की तरफ प्राय: रोज तूफान आते हैं।

तीसरी चीज यह कि अन्तरिक्ष में पृथ्वी की स्थिति प्रतिवर्ष वही नहीं रहती। पृथ्वी अन्तरिक्ष में आगे-पीछे होती रहती है। पिछले साल वह जहाँ थी, वहाँ इस साल नहीं है, क्योंकि सूर्य भी अंतरिक्ष में बढ़ता जाता है। सूर्य के साथ पृथ्वी भी चलती जाती है। जहाँ-जहाँ पृथ्वी जाती है, वहाँ दूसरे ग्रह उसको प्रभावित करते हैं। उत्तर-पूर्वी राज्यों में हर रोज बारिश होती रहती है, जबकि

उसके अगल-बगल में बंगाल है, बिहार है, पर वहाँ बरसात नहीं होती। ढाका और बांग्लादेश में भयंकर तूफान आते हैं। वे तूफान इतने बड़े होते हैं कि कुछ ही मिनटों में सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। जबकि कलकत्ते में तूफान नहीं आते। विशाखापट्टनम् समुद्र के किनारे है, वहाँ तूफान नहीं आते।

यहाँ देवघर में हर साल मौसम अलग रहता है। इस साल जैसे गर्मी पड़ी ही नहीं।

हर साल अलग तो होगा ही। मौसम विज्ञान बहुत कठिन विषय है, इसे वैज्ञानिक लोग भी सुलझा नहीं सके हैं। पृथ्वी और सौरमण्डल एक परिवार है। इस ब्रह्माण्ड में ऐसे अनेकों सूर्य हैं, और हर सूर्य का अपना एक परिवार है। अब इतनी बड़ी चीज को हम कैसे समझें? यह अन्तरिक्ष इतना विशाल है कि इसमें ज्ञानी की दृष्टि भी नहीं जा सकती। ऋग्वेद कहता है कि जिसने यह सब बनाया है, पता नहीं उसे मालूम है या नहीं कि क्या हो रहा है। अपनी तरह अनन्त कोटि सूर्य, शायद इससे भी बड़े, अग्नि पिण्ड और कुछ नहीं, इसे भयंकर ही कहेंगे। केवल अग्नि-पिण्ड और उनके चारों तरफ घूमते ग्रह-उपग्रह। कहते हैं कि इनकी कोई गिनती नहीं है।

अब सवाल केवल एक उठता है कि क्या यह सब सच है या मात्र एक अनुभूति है? वेदान्त कहता है कि यह सब जीव का अनुभव है, सत्य नहीं है। सृष्टि और जीवन मात्र अनुभव है। और यह अनुभव अज्ञान का परिणाम है। अज्ञान के कारण ही अनुभव होता है। जब ज्ञान हो जाता है तो अनुभव शून्य हो जाता है। अनुभव वहीं होता है जहाँ द्वैत होता है।

गेरू वस्त्र और मुण्डन का महत्त्व

अपने आध्यात्मिक जीवन से सम्बन्ध रखने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को गेरू वस्त्र पहनना चाहिये। जब कचहरी में जाते हो तो वकालत करने के लिये काला गाउन पहनते हो, अस्पताल में चिकित्सा करने जाते हो तो सफेद गाउन पहनते हो। उसी तरह से जब बड़े साहब से मिलने जाते हो तो शर्ट-टाई, कोट-पतलून पहनते हो। किसी नेताजी से मिलने जाते हो तो कुर्ता-पायजामा और गाँधी-टोपी पहनते हो। उसी तरह से जब भगवान के पास जाना हो तो गेरू कपड़ा पहनना चाहिये। सामान्य कपड़े दुनिया में ठीक हैं पर आश्रम में तो गेरू कपड़ा ही पहनना चाहिये।

आश्रम में रहते समय सिर मुड़ाना भी अच्छी चीज है। क्या नुकसान है, छः महीने के बाद बाल लम्बे हो ही जायेंगे। वैदिक धर्म, यहूदी धर्म और ईसाई धर्म, इन सभी में मुण्डन बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता है। छोटे बच्चे का मुण्डन निश्चित रूप से किया जाता है, उपनयन के समय भी मुण्डन किया जाता है और संन्यास के समय मुण्डन अवश्य किया जाता है। यहूदी लोग भी मुण्डन करते हैं और सामान्य रूप से सिर मुड़ाकर रहते हैं। प्राचीन काल में हमारी सभ्यता ऊँची थी। तब स्त्रियाँ जनेऊ पहनती थीं, सन्ध्या-वन्दन करती थीं और मुण्डन कराती थीं। जो संस्कार लड़के के लिये थे, वही संस्कार लड़की के लिये थे। गर्भाधान, नामकरण, चूड़ाकरण, उपनयन, विवाह, वानप्रस्थ, संन्यास, अन्त्येष्टि, आदि सोलह संस्कार लड़के के लिये भी थे और लड़की के लिये भी। उसके बाद यूनानी लोग आये, फिर मुसलमान लोग आये, लड़कियों पर प्रतिबन्ध लगते गये। सन्ध्या-वन्दन बन्द हो गया, फिर बहुत-सी चीजें बन्द हो गयीं। अब लड़कियों के सोलह संस्कार नहीं कराते हैं। यज्ञोपवीत तो होता नहीं, कई लोग श्राद्ध भी नहीं करते।

प्राचीन काल में हमारे यहाँ पुत्र और पुत्री के स्थान पर सन्तति शब्द प्रयोग किया जाता था। उस समय सब जगह स्त्रियों का बहुत महत्त्व था, क्योंकि लड़कियों के बिना तो कोई पैदा हो नहीं सकता है। लड़कियों को अगर अच्छी तरह से रखोगे, अच्छी तरह से खिलाओगे-पिलाओगे तो अच्छी सन्तान पैदा होगी। अगर जननी नहीं होगी तो फिर जन्म नहीं होगा, आबादी घट जायेगी।

प्राचीन काल में स्त्री समाज की वरिष्ठ थी, और सन्तान स्त्री के नाम पर जानी जाती थी। देवकी का पुत्र देवकीनन्दन, कौशल्या का पुत्र कौशल्यानन्दन, विनीता का पुत्र वैनतेय। सन्तान को माँ का गोत्र मिलता था। अगर वह वर्मा हुयी, तो लड़का भी वर्मा होगा। बाप पाठक हुआ, तो वह पाठक नहीं होगा। कालान्तर में यहाँ ईरान के लोग आये, हूण आये, कम्बोज आये, म्लेच्छ आये, कई जातियाँ आयीं, जिन्होंने अपने-अपने विचारों को रखा और सामाजिक मान्यताएँ बदलती गयीं।

स्त्री हो या पुरुष, मुण्डन संस्कार दोनों के लिये है। अगर स्त्रियाँ बाल नहीं कटाती, तो वह इसलिये नहीं कि मुण्डन नहीं करना चाहिये, बल्कि इसलिये कि केश सौन्दर्य के अंग समझे जाते हैं। स्त्री के सौन्दर्य का वर्णन करते समय कवि केशों का विशद वर्णन करते हैं। किया है। यह सब कवियों की कल्पना

मात्र है, वास्तव में देखा जाए तो दिमाग के लिये मुण्डन समय-समय पर बहुत जरूरी है।

गेरू कपड़े से बात चली थी कि यह कपड़ा पहनना चाहिये। गेरू और केमिकल रंग भले ही समान हों, लेकिन गेरू वास्तव में एक पत्थर है जो खदान से निकलता है। इसमें रेड ऑक्साइड नाम का रसायन रहता है। गेरू पत्थर का महत्त्व है, रंग का नहीं। गेरुआ रंग तो कहीं भी बनाया जा सकता है। इसके महत्व के बारे में पहले हमें भी ज्यादा मालूम नहीं था। एक बार दक्षिण अमेरिका के संन्यासियों ने गेरू माँगा तो हमने पैकेट बनाकर हवाई-जहाज से भेज दिया। पैकेट करीब पाँच किलो का होगा। वह अमेरिका में पकड़ा गया, क्योंकि वहाँ कोई भी चीज जब कस्टम पार करती है तो उसका परीक्षण करते हैं कि कहीं परमाणु सामग्री तो चोरी से नहीं जा रही। मेरे लिए मुश्किल हो गयी। तब मुझे मालूम पड़ा कि बहुत कम मात्रा में सही, पर गेरू मिट्‌टी से परमाणु किरणों का विकिरण होता है। इसका मतलब हम परमाणु सामान चोरी कर रहे थे। अब उन लोगों को कैसे समझाया जाये, कागज तो समझा नहीं सकता। खैर, किसी तरह से मामला ठण्डा हो गया, क्योंकि हिन्दुस्तान में सब जानते हैं कि यह पवित्र चीज है।

यह जो परमाणु विकिरण होता है, इसकी विशेषता क्या है? किसी भी तरह का परमाणु विकिरण जीवन को मारने वाला होता है। अर्थात् जहाँ परमाणु विकिरण ज्यादा होगा, वहाँ जीवन समाप्त हो जाएगा। हाथी, घोड़ा, गधा, कुछ भी जीवित नहीं बचेगा। जहाँ कम मात्रा में होगा, वहाँ छोटे जीव मरेंगे। गेरू से कम मात्रा में जो परमाणु विकिरण होता रहता है, वह बैक्टीरिया और कीड़े-मकोड़े जैसे छोटे जीवों को मारता है। वैसे ही गंगाजल है। गंगाजल में भी परमाणु-शक्ति है। यह तो प्रमाणित है। गंगाजल में छोटे-छोटे जीव नष्ट हो जाते हैं, इसलिये उसे पवित्र माना जाता है।

गेरू का हमने बचपन में एक और अनुभव किया है। एक बार ऐसा हुआ कि किसी कारण से मुझे अर्टीकेरिया हो गया। अर्टीकेरिया में खुजलाहट होती है और साथ में फोड़ा जैसा हो जाता है। मेरे पूरे बदन में गेरू लगाया गया, सुखाया गया, और मैं ठीक हो गया।

कहने का मतलब यह है कि गेरू का, मुण्डन का, अपनों से अलग रहने अर्थात् संन्यास का अपना अलग महत्त्व है। मरते दम तक बीवी-बच्चे, चाचा-मामा से लगे हैं, उनके साथ खींचा-तानी चल रही है, क्या यह ठीक

है? इसलिये थाइलैण्ड में एक नियम है। वहाँ बौद्ध धर्म मानने वाले हर व्यक्ति को कम-से-कम 15 दिन मठ में रहना पड़ता है। वहाँ किसी के साथ सम्बन्ध नहीं रहता। चाहे राजा हो या रानी, अमीर हो या गरीब, वे मठों में चले जाते हैं, सिर मुड़ा लेते हैं, भगवा कपड़ा पहन लेते हैं। उन्हें एक कमरा दे दिया जाता है, उस कमरे में चटाई बिछा दी जाती है और चीवर-पात्र दे दिये जाते हैं। जमीन पर सोना पड़ता है। रोज सुबह वे निकलते हैं, पाँच घरों में जाते हैं। थोड़ा-थोड़ा भोजन उनको मिल जाता है। पन्द्रह-सोलह साल की लड़कियाँ सिर पर एक प्रकार का मुकुट पहन कर आती हैं, भिक्षुक को भिक्षा दे देती हैं। पन्द्रह दिन के बाद घर आ जाते हैं। संन्यासियों की तरह रहने के अनुभव से जीवन बदल जाता है। सारी दुनिया में लोग छुट्टी मनाने समुद्र किनारे या पर्वतों पर चले जाते हैं लेकिन हमारे यहाँ तीर्थों में जाना, आश्रमों में जाना, यह आध्यात्मिक साधना समझी जाती है।

मैंने किताबों में पढ़ा है कि मरने पर आदमी एक बहुत चमकदार प्रकाश देखता है। क्या यह सच है?

यह किसी ईसाई की लिखी हुई किताब होगी। बाइबिल में यही कहा जाता है, अन्तिम प्रकाश। जो आदमी जिस धर्म का होता है, उसे शून्य अवस्था में वही चीज दिखायी देती है। पर वास्तव में ऐसा कुछ है नहीं। यह उनका एक अनुभव है। आदमी जब मरने लगता है तो उसके सब स्विच धीरे-धीरे बन्द होने लगते हैं। मस्तिष्क से आँखों का, नाक का, कान का, दिल का, फेफड़ों का, जिगर का और बाकी सभी शारीरिक संस्थानों का जो सम्बन्ध होता है, वह एक के बाद एक बन्द होने लगता है। जब सब स्विच बन्द होने लगते हैं, तब मस्तिष्क में इस प्रकार का अनुभव होता है। ध्यान में जब सभी इन्द्रियों के दरवाजे बन्द किये जाते हैं, दिमाग अकेला होता है, तब भी ऐसे ही होता है। अभी तुम्हारा दिमाग अकेला नहीं है, वह आँख, कान, नाक, आदि से काम कर रहा है। जब दिमाग को अलग और अकेला किया जाता है, उस समय वह अनुभव होता है और मृत्यु के समय वह अनुभव सभी को होता है।

मृत्यु इतनी दु:खदायी घटना नहीं है जितना लोग डरते हैं। मृत्यु के वक्त वैसा ही मजा आता है, जैसा सोते समय आता है। थका हुआ आदमी जब सोता है, उसे बड़ा अच्छा लगता है न? सब लोग मरने से नाहक डरते हैं। सोचते हैं कि सब कुछ छूट जायेगा।

सब लोगों का मृत्यु के बारे में अपना-अपना सिद्धान्त होता है। पर सच्ची बात यह है कि अगर गेहूँ का पौधा सूखेगा नहीं तो दूसरा पौधा कैसे आयेगा? गेहूँ का पौधा हरा का हरा रहेगा, तब तो गेहूँ का बनना बन्द हो जायेगा। गेहूँ का पौधा बड़ा होता है, उसके बाद वह सूखता है, सूखकर दाने बीज बनते हैं और वह जो बीज बनता है, उसके अन्दर क्या होता है? डी.एन.ए., जो आँखों से नहीं दिखता। उसे गेहूँ की जीवात्मा कह सकते है। जब गेहूँ का पौधा मर गया, तब उसका बीज सुषुप्त हो जाता है। जीवात्मा सो जाता है। जब वह दुबारा धरती में आता है, तब फिर गेहूँ का पौधा बनता है।

बस मनुष्य के साथ भी यही होता है। साग, सब्जी, धान, धनिया, कुत्ता, बिल्ली–सबकी यही गति होती है। इसलिये सृष्टि के नियम में जन्म निश्चित नहीं है, मगर मृत्यु निश्चित है। जन्म अनिवार्य नहीं है, मगर मृत्यु अनिवार्य है। बृहदारण्यक उपनिषद् कहता है कि जीवात्मा जब से पैदा होता है, तब से मौत उसका पीछा करना शुरू कर देती है। मृत्यु कहती है मुझे भूख लगी है, और भूत की तरह जीव के पीछे-पीछे चलती है।

तुम लोग पुनर्जन्म का सिद्धान्त मानते तो हो, मगर उस पर विश्वास नहीं करते। अगर पुनर्जन्म पर विश्वास करते, तो मृत्यु से डरते नहीं। जब तुम्हें विश्वास है कि तुम्हारा नया मकान बन रहा है, तो पुराना मकान छोड़ने में दिक्कत होगी क्या? दिक्कत तब होगी जब तुमसे कहा जाय कि तुम्हारा नया मकान बन रहा है, मगर तुम्हें विश्वास न हो। तब सोचोगे कि अगर इस मकान को भी खो देंगे तो कहाँ रहेंगे!

हम तो आज ही जाने के लिए तैयार हैं, क्योंकि यह सन् 1923 का मॉडल है। जब तक पुरानी गाड़ी की बिक्री नहीं करेंगे, तब तक नया मॉडल आयेगा नहीं। लोगों के यहाँ अभी तक पुरानी गाड़ी पड़ी है, उसे बेचना नहीं चाहते हैं। पुराने फ्लैट में रह रहे हैं, पुराना ही जूता पहने हुये हैं, नया जूता किसी को नहीं चाहिये।

वशिष्ठजी रामजी के पूर्वजों के समय राजगुरु थे, फिर वे रामजी के समय भी राजगुरु कैसे थे? क्या एक ही व्यक्ति इतने वर्षों तक पृथ्वी पर जीवित था?

हमारे यहाँ बड़े लोगों के बारे में परम्परा रही है। जैसे आज भी जगद्गुरु को शंकराचार्य कहते हैं। क्या आज के शंकराचार्य और ग्यारह सौ साल पहले

के शंकराचार्य एक ही हैं? नहीं। उसी तरह से प्राचीन काल में एक ऋषि का नाम था वशिष्ठ। व्यक्ति का नाम था, तो उनकी परम्परा में जितने भी गद्दी पर बैठे, वे सब वशिष्ठ कहलाये। जब तक गद्दी पर नहीं बैठे, तब तक उनका नाम दूसरा था।

आज से ग्यारह-बारह सौ साल पहले जो हुये, उनका नाम था शंकर, आदिशंकर। और उनके शिष्य हुये शंकराचार्य। गुरु परम्परा में *शंकरं शंकराचार्यं*– ये दो नाम आते हैं। शंकर और शंकराचार्य अलग-अलग थे। जिनके बारे में कहा जाता है कि मगरमच्छ ने उनका पैर पकड़ लिया, बाद में उन्होंने संन्यास लिया और जो बत्तीस साल की उम्र में ब्रह्मलीन हो गये, उनका नाम था शंकर। उनके शिष्य थे शंकराचार्य। उसके बाद एक और शंकर हुए, अभिनव शंकर। उसके बाद शंकराचार्य की गद्दी हुई। उस गद्दी पर बैठने वालों का नाम कोई नहीं जानता, बस शंकराचार्य कहा जाता है। अब सवाल उठता है कि जितने भी भाष्य लिखे गये, वे किसने लिखे हैं? आदिशंकर, शंकराचार्य या अभिनव शंकर? यह विषय है इतिहास का।

उसी तरह से वशिष्ठ, विश्वामित्र, व्यास, आदि जो ऋषि हैं, उनका नाम वही पुकारा जाता है, मगर वे अलग-अलग व्यक्ति हैं। जिन व्यास की बात करते हो, वे सत्यवती और पराशर के पुत्र थे। क्या ये वही व्यास थे जिन्होंने अठारह पुराण जैसे बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखे? नहीं, व्यास एक परम्परा का नाम है, वशिष्ठ एक परम्परा का नाम है। वशिष्ठ का उल्लेख राजा त्रिशंकु के समय आता है, राजा मान्धाता के समय भी आता है। नाम वही है, गद्दी वही है, पर व्यक्ति वही नहीं था।

लेकिन रामायण में उल्लेख आता है कि वशिष्ठजी ने रामजी से कहा कि हालाँकि मुझे पुरोहित का काम पसन्द नहीं, पर ब्रह्मा ने कहा था कि विष्णु सूर्यवंश में जन्म लेंगे और तुम्हें सेवा करने का सौभाग्य मिलेगा। इसलिये वशिष्ठजी ने इक्ष्वाकु वंश का पुरोहित पद स्वीकारा।

यह तो कहानी है जिसके माध्यम से लेखक यह कहना चाहते हैं कि पुरोहित का काम अच्छा नहीं है। पुरोहित का काम हमेशा नीचा माना जाता है, क्योंकि वह हर घर में जाता है और कुछ बोल कर, ठग कर आ जाता है। उससे आमदनी हो जाती है। इसलिये वशिष्ठ पुरोहित बनने से मना कर दिये, साफ-साफ कह दिये।

हमारे समाज में पहले ब्राह्मणों का बहुत आदर किया जाता था, क्योंकि ब्राह्मण हमेशा इसके योग्य थे। वे त्याग-तपस्या करते थे, जमीन पर सोते थे, भिक्षा पर गुजारा करते थे। उनका स्थान बहुत ऊँचा था। ब्राह्मण जाति नहीं होती, यह तो हम लोगों की राजनीति है। जाति आध्यात्मिक चीज नहीं है, यह राजनैतिक लोगों ने ठप्पा लगा दिया है। ब्राह्मण वेदों के विशेषज्ञ हुआ करते थे। ब्रह्म को जानने वाला ब्राह्मण और ब्रह्म शब्द हमेशा वेद के लिये इस्तेमाल होता रहा है। आजकल ब्रह्म शब्द परब्रह्म परमात्मा के लिए इस्तेमाल होता है, मगर आदिकाल से ब्रह्म शब्द वेद के लिये इस्तेमाल होता आया था। वेदों को जानने वाला ब्राह्मण, छत्र को धारण करने वाला क्षत्रिय, धन को धारण करने वाला वैश्य और श्रम को धारण करने वाला शूद्र। ये सब चीजें समय-समय पर समझानी पड़ती हैं, नहीं तो गलत मान्यताएँ चिपक जाती हैं। एक होती है जाति, एक होता है वर्ण, एक होता है गुण और एक होता है कर्म। ये अलग-अलग चीजें हैं। इतना आसान नहीं कि बस कह दिया कि हम ब्राह्मण हैं या क्षत्रिय हैं।

ऐसी बात नहीं कि जाति के सिद्धांत में सत्यता नहीं, मगर जाति के अनुसार मनुष्य की सामाजिक स्थिति का आकलन नहीं करना चाहिये। सामाजिक दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति बराबर है। सबके सामाजिक अधिकार बराबर हैं। यह ऊँची जाति है, वह नीची जाति है, उसको छुओ मत, हिन्दुस्तान में यहीं पर गलती हुई है जिसका परिणाम आज हम भुगत रहे हैं। जाति गलत चीज नहीं है, पर इसका मतलब यह नहीं कि तुम्हारा दूसरी जाति से कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। समाज में तो रहना ही है। तुम दूसरी जाति वाले से बात तक नहीं कर रहे हो। तुम्हारी लड़की उसके घर क्यों नहीं जायेगी? तुम उसके साथ खा क्यों नहीं सकते? यह छूआछूत, ऊँच-नीच की जो भावना आयी, यह गलत है। मेरी बात समझ में आयी न?

हम जाति का विरोध नहीं कर रहे हैं क्योंकि जाति का विरोध करना माने इसके विज्ञान का विरोध करना। जाति एक वैज्ञानिक सत्य है। जाति शब्द संस्कृत के ज्ञाति शब्द से निकला है, जिसका मतलब होता है पहचान, और जाति का सम्बन्ध होता है आनुवंशिक संरचना से, डी.एन.ए. से। आजकल अमेरिका में चोर-डाकुओं को पकड़ने के लिये वे उंगलियों के निशान के बजाय डी.एन.ए. का इस्तमाल करते हैं। तुम्हारी खून की हर बूँद में, थूक की हर बूँद में तुम्हारी पहचान छुपी है। वही डी.एन.ए. है और यह डी.एन.ए.

मरता नहीं है। बड़ी विचित्र चीज है, लाखों साल पहले मरे डाइनोसॉर के जीवावशेष से भी डी.एन.ए. मिल सकता है। यह विज्ञान इतना बढ़ रहा है कि कभी-कभी डर लगता है। अभी क्लोनींग से इन लोगों ने भेड़ पैदा की है, कहीं ऐसा न हो कि हिटलर का कहीं से डी.एन.ए. लेकर उससे नया आदमी पैदा कर लें! हाँ, आईंस्टाइन की तरह हो या न्यूटन की तरह हो तो ठीक है, किसी महात्मा का हो तो ठीक है। जाति का आधार यह डी.एन.ए. है, जीन्स हैं। पर जाति का आधार लेकर समाज में जो विभेद पैदा किया गया, हम क्षत्रिय हैं, तुम शूद्र हो, दोनों के बेटा-बेटी के बीच शादी नहीं होगी, यह उसके घर में खाना नहीं खायेगा, इसको छूने से यह हो जायेगा, यह गलत है। यह पूरी तरह सामाजिक और राजनैतिक षडयंत्र है जो मनुष्य की घृणा और हीनता की भावनाओं पर आधारित है। इसका कोई वैज्ञानिक आधार या व्याख्या नहीं है।

किसी भी जाति की लड़की की किसी भी जाति के लड़के के साथ शादी हो सकती है, बशर्ते उनके जीन्स का आपस में मेल बनता हो। शादी में लड़के और लड़की की जाति की जितनी दूरी होगी उतना अच्छा होगा। उसी जाति में, उसी गोत्र में, उसी वर्ग में, उसी समुदाय में शादी होने से अनुवांशिक बीमारियाँ होती हैं। आजकल कैंसर जैसी जितनी जटिल बीमारियाँ हैं, वे वायरस या बैक्टीरिया की वजह से नहीं हैं, बल्कि अनुवांशिक बीमारियाँ हैं। ये जाति के अपसम्बन्धों के कारण हैं। भले ही तुम्हारी बेटी की संस्कृति मेरे बेटे की संस्कृति से न मिले, वह महत्त्वपूर्ण चीज नहीं है। चाहे तुम करोड़पति हो और मैं गरीब आदमी हूँ, वह भी बड़ी बात नहीं है। विवाह में स्त्री और पुरुष के सम्बन्ध का मुख्य लक्ष्य प्रजा होती है। बाकी वह प्रेम और गृहस्थी, रसोई, इत्यादि तो बाद की चीज है। रसोई तो कोई भी नौकर बना सकता है, बिस्तर तो कोई भी लगा सकता है, हुक्का कोई भी भर सकता है, घर कोई भी साफ कर सकता है, मगर प्रजा वैध रूप से केवल स्त्री और पुरुष के बीच में हो सकती है।

स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध में अगर त्रुटि या अवगुण रहेगा तो प्रजा में भी अवगुण होंगे, जो अनुवांशिक बीमारियों के रूप में दिखायी देंगे। विवाह में इतना ख्याल रखो, फिर बच्चे अच्छे होंगे। आज जो हमारे समाज में बीमारियाँ देख रहे हो, हर घर में कोई-न-कोई बीमार है, इसका मतलब है कि कहीं पर बड़ी गलती हो रही है। ये बीमारियाँ ऐसी होती हैं जो दवाई

से नहीं छूटतीं, टोना-टोटका से नहीं छूटतीं, आयुर्वेद और यूनानी से नहीं छूटतीं, होम्योपैथी से नहीं छूटतीं, सात्त्विक भोजन करो तो नहीं छूटतीं, उपवास करो तो भी नहीं छूटतीं। वे छूटती ही नहीं क्योंकि वे 'मैन्यूफैक्चरिंग डिफेक्ट' हैं।

क्या जन्मपत्री का कोई फायदा नहीं?

नहीं, वह बेकार है, क्योंकि जन्मपत्री प्राय: ठीक नहीं होती। जब बच्चा पैदा हो जाता है तब पण्डित को बुलाते हैं। यह कोई जरूरी नहीं कि जन्मपत्री मिलाकर की गई शादी सफल हो। आप लोगों को ज्यादा अनुभव है। सबसे अच्छी चीज यही है कि लड़के और लड़की को पढ़ाना चाहिये। पहले के जमाने में लड़की के सामने एक ही विकल्प था, शादी और बच्चा। अब उसके सामने एक और विकल्प है, पढ़ाई। इसके अलावा अब एक विकल्प और है कि लड़कियाँ उपार्जन भी कर सकती हैं। और चौथा विकल्प भी आ गया है कि लड़कियाँ चाहे तो शादी नहीं भी कर सकती हैं। जब तक यह विकल्प हमारे समाज में खुला हुआ नहीं रहेगा तब तक प्रतिभाएँ नष्ट होती रहेंगी।

हमारा स्वभाव बहुत उग्र था। संन्यास लिया तो उग्रता को दिशा मिल गयी। वही जोश हमने दूसरी तरफ लगा दिया। कहने का मतलब यह कि सभी लोग संन्यास के लिये उत्सुक नहीं होते, न ही सब लोग डॉक्टर बन सकते हैं, और न ही सब नेता बन सकते हैं, लेकिन बहुत-सी प्रतिभाएँ ऐसी हैं जो सामाजिक दबाव के कारण वैवाहिक जीवन व्यतीत करने के लिये विवश हो जाती हैं और उनकी प्रतिभा कुण्ठित हो जाती है। प्रतिभा हर व्यक्ति के पास है। इसलिये उस व्यक्ति को निर्णय की स्वतन्त्रता होनी चाहिये। आजकल के जमाने में लड़के-लड़कियों को पढ़ाना चाहिये और एक ही बात कहनी चाहिये, 'बेटा, देखो पढ़ाना हमारा काम था, मगर भविष्य तुम्हें अपना अलग बनाना होगा।' बच्चों का भविष्य माता-पिता निर्धारित न करें तो अच्छा है।

यह मेरा अपना मत है, क्योंकि मैं जानता हूँ कि बच्चे का खून उसकी माँ का है, बीज बाप का है, पर आत्मा कहीं और से आयी है। वह माँ-बाप की नहीं है। और वह आत्मा अपने कर्म लेकर आयी है। जो कुछ उसने पूर्व जन्म में कमाया है, उसके साथ आयी है। आखिर गाँधी जी क्या थे? उनके जैसे और लोग नहीं हुये क्या? रामचन्द्र जी की तरह कितने राजकुमार हुये होंगे। पर वे सब अपने जीवन में कुछ हासिल नहीं कर सके। तुलसीदास जब पैदा

हुये, दूसरे दिन माँ मर गई, बाप पहले ही मर गया और दाई-माँ साल भर में मर गई। वे अनाथ हो गये। किसी साधु ने उनका पालन-पोषण किया। मगर उन्होंने जो रामचरितमानस लिख डाला, बाप रे बाप! मैंने इतने साल संन्यास में संस्कृत शास्त्रों का भरपूर अध्ययन किया है, मगर रामचरितमानस पढ़ने के बाद सब ठण्ढा हो गया। अब वेद-वेदान्त कुछ भी अच्छा नहीं लगता है। कैसे लिख दिया यह रामचरितमानस? एक छोटी-सी कहानी पकड़ी, राम-सीता का विवाह हुआ, वनवास हुआ, अपहरण हुआ, रावण का वध हुआ–

आदौ राम-तपोवनादि-गमनं हत्वा मृगं कांचनम् ।
वैदेही-हरणं जटायु-मरणं सुग्रीव-सम्भाषणम् ॥
बालि-निर्दलनं समुद्रतरणं लंकापुरी-दाहनम् ।
पश्चात् रावणकुम्भकर्णहननं चैतद्धि रामायणम् ॥

इतनी छोटी-सी घटना को लेकर उन्होंने वेद-वेदान्त, भारतीय दर्शन, मर्यादा, विचारधारा, सब दिखा दिया उसमें। यह प्रतिभा है। सूरदास में भी प्रतिभा थी। उन्होंने जिस तरह से भगवान श्रीकृष्ण का वर्णन किया है, एकदम सामने उसका चित्र आ जाता है। यह प्रतिभा होती है। थॉमस अल्वा एडिसन ने बिजली का पता लगाया। अगर बिजली नहीं होती तो आधुनिक सभ्यता नहीं होती। पंखा, बल्ब, रेलगाड़ी, हवाई-जहाज, कुछ नहीं होता।

अब यह जो प्रतिभा होती है इसे जबरदस्ती शादी से क्यों मारा जाय? यह बात भी सही है कि बहुत-से लोगों को शादी की जरूरत है। मनोविज्ञान कहता है कि अगर वे शादी नहीं करेंगे तो पागल हो जायेंगे। मनुष्य के शरीर में बहुत-से हॉर्मोन्स ऐसे होते हैं जो नाग से भी जहरीले होते हैं। हमारे अन्दर बहुत-सा जहर होता है, मानसिक जहर, भावनात्मक जहर, शारीरिक जहर, जो प्रजनन के माध्यम से निकलता है। विवाह तो मर्यादा है, हम इसको नकार नहीं रहे हैं। विवाह एक स्वस्थ, उत्तम और अनिवार्य सिद्धान्त है। यह एक बहुत अच्छी नियंत्रण की व्यवस्था है। मगर बात चल रही है उन लोगों की जो सिर मुड़ाकर संन्यासी बनना चाहते हैं। चाहे वह लड़का हो या लड़की, बालों के सौन्दर्य का वर्णन पागल कवियों की देन है। जिन कवियों का दिमाग खराब था उन लोगों ने बालों के सौन्दर्य का सार बनाया। कहते हैं भौंरे लटक रहे हैं या काले मेघ हैं। यह सब कवियों की कोरी कल्पना है। बाल कटना भी एक चीज है।

यहूदी जाति

यहूदी जाति अभी इज़राइल की रहने वाली है। पर उनकी पुस्तकों में लिखा हुआ है कि उनके पूर्वजों को भगवान ने आश्वासन दिया कि मैं तुम्हें एक ऐसा देश दूँगा जहाँ दूध और शहद की नदियाँ बहती हैं। क्या इज़राइल में यह सब है? नहीं। यहूदी मूलत: काश्मीर के रहने वाले हैं। आज से कई हजार साल पहले काश्मीर में नीलांचल समुद्र था, उसके नाम पर हमारे यहाँ नीलांचल पुराण है। वह समुद्र जब खिसका तो तूफान आये होंगे, भूकम्प आये होंगे। उस समय वे सब लोग यहाँ से चले गये।

यहूदियों की पूजा-पद्धति, गुरुकुल-पद्धति और आश्रम-पद्धति हूबहू हम लोगों की तरह है। उनके पारिवारिक जीवन में सतीत्व की जो मान्यता है वह बिल्कुल हम लोगों की तरह है। हाँ, कपड़े ये दूसरे पहनते हैं। आश्रम में हैट वगैरह पहनते हैं। आश्रम में जाते हैं, वहाँ रह जाते हैं, बगीचे वगैरह में काम करते हैं, दो-तीन महीने रहकर फिर चले जाते हैं। वहाँ आश्रम को किबूत्ज़ कहते हैं। उन लोगों की पूजा की प्रथा बहुत विस्तार के साथ रहती है। जितने भी यहूदी हैं, चाहे वे फ्राँस में हों या इंग्लैंड में या अमेरिका में, वे आधुनिक पाश्चात्य संस्कृति से डरे रहते हैं। जैसे नैरोबी से गुजराती अपनी लडकियों को गुजरात में पढ़ने के लिए भेजते हैं, वैसे ही यहूदी अपनी लड़कियों को गुरुकुल में पढ़ने के लिये इज़राइल भेजते हैं। यहूदियों और हम लोगों की करीब-करीब एक समान प्रथाएँ हैं। उनके और हमारे बीच कभी झगड़े भी नहीं हुये हैं। यहूदी लोग यहाँ कोचीन में हजारों साल से रह रहे हैं। कभी झगड़ा नहीं हुआ।

यहूदी जाति की एक विशेषता है। जीव विज्ञान, रसायन शास्त्र, भौतिक शास्त्र, आदि में जितने भी वैज्ञानिक अनुसन्धान हुये हैं, वे प्राय: यहूदियों ने किये हैं। न्यूटन यहूदी था, आइंस्टाइन भी यहूदी था। जर्मनी में भी बहुत वैज्ञानिक हुएँ, जिन्होंने मौलिक विज्ञान में बहुत अनुसन्धान किया। परमाणु विज्ञान तो मूलत: उन्हीं का है। परमाणु बम बनाने में जर्मनी को जरा सी देर हो गई, नहीं तो जापान में गिरने के बदले परमाणु बम अमेरिका में गिरता।

विज्ञान में आज वही होता है जिससे लोगों को फायदा होता है। आजकल कैंसर पर डी.एन.ए. शोध चल रहा है, उसमें उन्होंने एक जीन की पहचान भी कर ली है। कैंसर एक ऐसी बीमारी है जो पहले पता नहीं चलती और जब पता चलती है तो जल्द ही अन्तिम स्थिति में पहुँच जाती है। फिर डॉक्टर सब

लाचार हो जाते हैं। डॉक्टर चाहते हैं कि कैंसर का पता हम प्रारम्भिक अवस्था में पायें ताकि उसका इलाज हो सके। उसके लिये उसके जीन्स को पहचानना शुरू कर दिया है। एक जीन की पहचान हुई है, मगर वह है गिनीपिग में। अब आदमी में काम करेगा या नहीं, कह नहीं सकते। वे लोग कोशिश कर रहे हैं कि अनुवांशिक विज्ञान द्वारा किसी भी तरह से कैंसर के मूल स्थान पर पहुँचा जाये। जैसे ही कैंसर बढ़े वैसे ही उसका इलाज शुरू हो और लोगों को फायदा हो।

अब वे लोग अनुवांशिक विज्ञान का प्रयोग इच्छित सन्तान प्राप्त करने के लिए करना चाहते हैं। यह अभी सिद्धान्त के स्तर पर है पर अभी स्कॉटलैण्ड में भेड़ का जो क्लोनिंग हुआ है उससे इस दिशा में विकास हुआ है। यूरोप के लोग इससे घबरा गये हैं। यूरोपियन संसद में चर्चा चल रही है। वे बोलते हैं कि इसे अवैध घोषित करना चाहिये। नहीं तो मुश्किल हो जायेगी, कल अगर हिटलर की क्लोनिंग कर देंगे तो सब डरकर भागेंगे। वैज्ञानिक कहते हैं कि हम अपनी विद्या को जानते हैं, हम इसका सदुपयोग ही करेंगे। सरकार नियम-कानून बना सकती है, मगर इसे अवैध घोषित नहीं कर सकती, इस पर प्रतिबंध नहीं लगा सकती। आज तो आदमी मजबूत हो गया है, सरकार के साथ लड़ सकता है।

देखा जाए तो पहले के जमाने में भी यह सब होता था। पाँचों पाण्डव ऐसे ही तो पैदा हुये थे। एक इन्द्र के अंश से पैदा हुआ, एक वायु के अंश से, तो एक सूर्य के अंश से। हमारे दो शब्द आते हैं, वीर्य-पुत्र और मानस-पुत्र। वशिष्ठ ब्रह्मा के मानस-पुत्र थे, जैसे निरंजन मेरा मानस-पुत्र है। मानस-पुत्र के लिए संकर्षण शब्द भी आता है, जैसे बलराम जी के बारे में। आजकल टेस्टट्यूब में बच्चा पैदा करके फिर गर्भ में आरोपित करते हैं न? ऐसी बात नहीं कि वह गलत है।

कर्म और कर्मयोग

जो कर्म दूसरों के लिये किया जाय उसे कर्मयोग कहते हैं। जो अपने लिये किया जाय वह कर्म है। जो तुम दूसरों के लिये करते हो फल उनको मिलता है, तुमको नहीं। फल मिले या न मिले, उसकी चिन्ता भी तुम्हें नहीं। पर अपने लिये जब कर्म करते हो तब फल की इच्छा होती है। फल मिलने पर सुख होता है, नहीं मिलने पर दुःख। दूसरे के लिये काम करना, कर्मयोग ही बेहतर है।

दूसरा हम किसको कहेंगे?

जिससे अपना कोई मतलब न हो। जो अपना न हो। दुनिया में दो चीजें होती हैं, स्वार्थ और परमार्थ। स्वार्थ का मतलब अपने लिये, परमार्थ माने दूसरे के लिये। जो आदमी दूसरा है, अपरिचित है, असहाय है, अनाथ है, उसके लिये काम करना परमार्थ कहलाता है। तुम अपने बच्चों के लिये, माता-पिता के लिये या अपने सगे-सम्बन्धियों के लिये फर्ज समझ कर काम करो, भले ही उनसे तुमको कोई अपेक्षा न हो, मगर वे हैं अपने, वे स्व में आते हैं। तुमने भले ही अनासक्ति से उनकी सेवा की, मगर वह कर्मयोग नहीं हो सकता। हाँ, वह अनासक्ति हो सकती है।

जब दूसरों के लिये काम करते हैं तो यश की भावना तो आ ही जाती है?

नहीं, जब तुम दूसरों के लिये काम करते हो और उसमें यश की अपेक्षा रहती है तो वह कर्मयोग में दोष है। दूसरों की जो सेवा करनी चाहिये वह उनकी भलाई और हित को ध्यान में रखकर ही करनी चाहिये। जब मेरा बच्चा बीमार होता है तो उसका इलाज करता हूँ, क्योंकि मुझे उसका दु:ख अनुभव होता है, पर जब तुम्हारा बच्चा बीमार होता है तो मुझे दु:ख नहीं होता, बस दया आती है। अब यहाँ आत्मभाव की कमी है। आत्मभाव माने अपने जैसा। तुम्हारे बेटे का सेवा-सत्कार इसलिये नहीं किया कि अपने जैसा लगता था, यही सोचकर किया कि चलो भाई, गरीब आदमी है, सेवा कर लेता हूँ।

कर्म आत्मभाव से या दया भाव से या यश की भावना से या अन्य किसी भावना से किये जाते हैं। इसकी अलग-अलग श्रेणियाँ होती हैं। इनमें सबसे उत्तम श्रेणी है, नेकी कर कुएँ में डाल। यह सबसे उत्तम पर सबसे कठिन है। सभी ऐसा नहीं कर सकते हैं, क्योंकि जब भी दूसरे का भला करते हो तो कुछ-न-कुछ अपने स्वार्थ का भी सोचते हो।

मैंने घर छोड़ा, फिर पीछे मुड़कर नहीं देखा। गुरुजी का आश्रम छोड़ा, फिर वापस नहीं देखा। मुँगेर छोड़ा, दुबारा वहाँ जाने का सवाल नहीं उठता। हमें वापस जाना नहीं आता है, भूतकाल मेरे लिये एक मरा हुआ मुर्दा है। नहीं तो हम उस आश्रम के अध्यक्ष थे। हमने इस आश्रम को बनाया तो हमारा जोर चलेगा, वह हमारा स्वभाव नहीं है। हम तो आगे की ओर देखते हैं। हमने यहाँ भी टिकट खरीद लिया है ऊपर जाने के लिये। मगर आरक्षण नहीं हुआ है।

बोलते हैं जगह खाली नहीं है। आवेदन दिया हुआ है। वापसी की टिकट है, फिर आऊँगा।

मैं जिस-किसी माँ के गर्भ में नहीं आऊँगा, अच्छी तरह देख-समझ कर आऊँगा। *'पुत्रवती जुवती जग सोई रघुपति भक्ति जासू सुत होई'*–ऐसे गर्भ में आऊँगा। जो माँ मुझे पैदा होते ही बोले– *शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि, संसार माया परिवर्जितोऽसि।* मुझे चूमे नहीं, बल्कि बोले, 'बेटा, जैसे ही तुम बड़े हो जाओ, घर छोड़कर चले जाओ।' जो यह वचन देगी उसके गर्भ में चला जाऊँगा। किसी माँ का आधार तो लेना ही पड़ेगा। जो स्त्री दूसरों के कहे अनुसार अपने को ढालती है, उसके गर्भ में नहीं जाना। कहने वाले कहेंगे, कितने दिन कहेंगे। कुछ साल के बाद तो मर जायेंगे। कहने वाले भी मर जायेंगे, बदनाम करने वाले भी मर जायेंगे, निन्दा करने वाले भी मर जायेंगे, तारीफ करने वाले भी मर जायेंगे, सहायता करने वाले भी मर जायेंगे, कष्ट देने वाले भी मर जायेंगे। संसार में तो सब बहता पानी है, जो माँ ऐसा सोचती है, उसके यहाँ जन्म लेंगे।

इसी तरह से दत्तात्रेय हुए, उनकी माँ थी अनसूया देवी और पिता थे महर्षि अत्रि। अनसूया ने जन्म दिया और तुरन्त उन्हें लंगोटी पहनायी। कहा, शुद्धोऽसि, तुम शुद्ध हो, बुद्धोऽसि, तुम बुद्ध हो, निरंजनोऽसि, तुम निरंजन हो, संसारमाया परिवर्जितोऽसि, संसार की माया से तुम मुक्त हो। जैसे ही दत्तात्रेय चलने लायक हो गये, उन्होंने घर छोड़ दिया। इसलिये उनके लिये, 'ब्रह्मा विष्णु महेश रूपा, दिगम्बरा जय दिगम्बरा, श्रीपादवल्लभ दिगम्बरा' यह कीर्तन गाते हैं। जब पैदा हुये तब लंगोटी पहनायी गयी, बाद में लंगोटी भी छोड़ दी। जो भी उनकी शरण में आता, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, अमीर हो या गरीब, चोर हो या वेश्या, वे उसका सिर मुड़ा देते थे और कहते थे, 'बोलो मैं ब्रह्म हूँ, अहं ब्रह्मास्मि, शुद्ध-बुद्ध हूँ, माया से मुक्त हूँ, अज्ञान से मुक्त हूँ, मृत्यु से मुक्त हूँ, जन्म से मुक्त हूँ, जाओ।' यह जो जूना अखाड़ा है न, यह दत्तात्रेय का बनाया हुआ है।

ऐसे ही एक और उदाहरण हैं शुकदेव जी। पहले तो माँ के पेट से निकलना ही मना कर दिया, कहते थे, नहीं, नहीं, मुझे जाना ही नहीं है संसार में। खैर जब निकले, तो जन्म लेने के तुरंत बाद घर छोड़ कर चले गये। उनके पीछे उनके पिता, व्यास जी भागे, 'बेटा कहाँ जा रहे हो, ठहरो बेटा, ठहरो' कहते हुये। बेटा भागते जा रहा है और बाप पीछे-पीछे। रास्ते

में एक जगह स्त्रियाँ तालाब में स्नान कर रही थीं। शुकदेव जी वहाँ से सीधे निकल गये। बाद में जब स्त्रियों ने देखा कि पिता भी पीछे-पीछे आ रहे हैं तो उन्होंने कपड़े पहनने शुरू कर दिये। व्यास जी ने पूछा, 'वह लड़का यहाँ से गुजरा तो तुम लोग नहाते रहे, हम आये तो कपड़े पहन लिये।' उन्होंने उत्तर दिया, 'आप में देहाध्यास है, शरीर की भावना है। आप स्त्री-पुरुष को पहचानते हैं, वह नहीं जानता।' ऐसे थे ब्रह्मर्षि शुकदेव जिन्होंने श्रीमद् भागवत पुराण राजा परीक्षित को सुनाया था।

हमारे यहाँ इस प्रकार के अनेक ऋषि-मुनि पैदा हुये हैं, जो जन्म से परम ज्ञान और परम वैराग्य को लेकर जन्मे थे। दुनिया में तो अरबों-खरबों इन्सान पैदा हुये हैं जिन्होंने शादी की है, बच्चे पैदा किये हैं, गृहस्थी की है, खेती की है, दुकानदारी की है, लड़ाई लड़ी है, मरे हैं, क्या हम भी वैसा ही करें? हम तो लोगों से कहते हैं कि आज हिन्दुस्तान की आबादी 96 करोड़ है, अगर सब साधु-संन्यासी शादी कर लें तो इसी साल आबादी एक अरब हो जायेगी, 1999 के लिये रुकने की जरूरत नहीं पड़ेगी। और अगर हम जितने संन्यासी हैं, उतने ही संन्यासी आप लोगों में से और बन जाएँ तो जनसंख्या कम हो जाए। हम लोग तो जनसंख्या नियंत्रण कर रहे हैं।

मन में बहुत दुविधा रहती है। कभी मन में आता है कि सब छोड़-छाड़ कर, सर मुड़ाकर संन्यासी बन जायें, फिर घर-गृहस्थी की जवाबदारी का ख्याल भी मन में आ जाता है। इससे बहुत अशान्ति रहती है। ऐसे में क्या करना चाहिये?

गृहस्थ आश्रम में एक सुन्दर पुरुष या एक सुन्दर स्त्री की तरह रहने की इच्छा, सुन्दर आभूषण और आवरण पहनने की इच्छा, सुन्दर भोगों को भोगने की इच्छा में किसी भी प्रकार का दोष नहीं है। बल्कि उन इच्छाओं को रोकने में दोष है। उनको तुम जबरन रोका न करो। और जहाँ तक सिर मुड़ाने या संन्यास लेने का सवाल है, वह भी करना चाहिये। छः महीने में या साल में या दो साल में बद्रीनाथ, ऋषिकेश, काशी या कहीं भी एकान्त में जाकर साधु-संन्यासियों की तरह रहना चाहिए, क्योंकि गृहस्थाश्रम में संन्यासी की तरह रहा जा सकता हैं, और संन्यास आश्रम में गृहस्थ की तरह। हमने तो संन्यास आश्रम में रहकर सब तरह के काम किये हैं। मकान बनाये, बैंक का काम किया, दुनियाभर घूमे, सब कुछ किया है।

ये दो जीवन हैं, दोनों को एक-दूसरे से जोड़ने की कोशिश करो। अपने अन्दर यह जो कुण्ठा है, उस कुण्ठा से मुक्त होना पहली जरूरी चीज है। हाँ, तुम्हारे पास पैसे न हों, साधन की कोई कमी हो और तुम्हारे मन में इच्छाएँ पैदा हो रही हों, तो उस वक्त उन्हें रोकना चाहिये। मगर तुम्हारे पास साधन हैं तो अच्छे कपड़े और गहने पहनने में, अच्छी सुविधा को भोगने में कोई नुकसान नहीं है। लेकिन साथ-साथ संन्यासी का जीवन बिताने का जो उपाय है, उसके बारे में भी सोचना चाहिये। थाइलैण्ड में जो बौद्ध धर्म के गृहस्थ होते हैं, चाहे राजा हों या रंक, वे जीवन में एक बार तो गुरु आश्रम में जरूर जाते हैं। वहाँ जाकर वे गेरू पहनते हैं, जमीन पर चादर बिछाकर सोते हैं, दिन में एक बार भोजन करते हैं और ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए अपना अध्ययन, चिंतन और पूजा-पाठ करते हैं।

यह बहुत आवश्यक है। केवल ईश्वर को प्राप्त करने के लिये नहीं, बल्कि अपने मानसिक और शारीरिक स्तर को सुधारने के लिये, अपने आचरण और आदतों की कमजोरी को दूर करने के लिये। और सबसे बड़ी चीज है आत्म-चिन्तन। आत्म-चिन्तन आत्म-सुधार के पहले होना चाहिये। जब तक आत्म-चिन्तन पूरा न हो तब तक आत्म-सुधार नहीं हो सकता। आत्म-चिन्तन तब होता है जब तुम अपनी जीवनशैली को पूर्णतया बदल दो। और वह हो नहीं पाता क्योंकि गृहस्थ आश्रम में बहुत-से लोग कोमल होते हैं, कमजोर होते हैं। थोड़ी-सी ठण्ढ में सर्दी लग गई, थोड़ी-सी गर्मी में गर्मी।

इसलिए अपनी सीमाओं को देखते हुए, अपने शरीर और मन की मर्यादाओं के अनुसार कुछ नियम बनाकर चलना चाहिये। हम तो इसी उपाय को मानते हैं। हम सबसे कहते हैं कि संन्यास कोई धर्म नहीं, कोई स्थायी चीज नहीं, यह तो हलवे में चीनी है। चीनी के साथ ही हलवे का स्वाद आता है। वैसे ही भोग वैराग्य के जुड़ने से ही अच्छा लगता है। अगर तुम गर्मी से घूमकर छाँव में आओ तो कितना अच्छा लगता है? थके हुये आओ, बिस्तर पर लेट जाओ, बहुत अच्छा लगता है न? उसी तरह संसार में इन्द्रियों के भोगों के बीच रहते हुए जब आदमी थोड़ा वैराग्य पाता है तो उसे बड़ा अच्छा लगता है। मानो दिमाग से बड़ा बोझ हट गया। भोग और वैराग्य, दोनों को जोड़ने का प्रयास करो। गृहस्थ के लिए शारीरिक सम्बन्ध प्राकृतिक है, ठीक वैसे जैसे शौच प्राकृतिक है, भूख प्राकृतिक है, निद्रा प्राकृतिक है, चिन्ता-फिक्र प्राकृतिक है। इस सम्बन्ध में मन में कोई कुण्ठा नहीं होनी चाहिए।

अगर ऐसी परिस्थिति हो जाय कि पति को तीन-चार साल दूर जाना पड़े तो ऐसी स्थिति में?

संयम करना पड़ेगा। उस वक्त उपवास करो, एकादशी को उपवास करो, दूध और फल खाओ। सवेरे चार बजे उठो, आसन-प्राणायाम करो, राम-नाम का जप करो। एकादशी को मन्त्र-जप करो। इससे काम-शक्ति का मार्ग थोड़े दिन तक बदलता है। पर काम-शक्ति को जबरन रोकना पागल होने का रास्ता है। हम सीधी-सीधी बात कहते हैं। भले ही दुनिया के लोग इसके बारे में बोलना नहीं चाहते, इसे गुप्त प्रसंग बनाकर रखना चाहते हैं, मगर यह गुप्त प्रसंग है नहीं। अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष, इन चार पुरुषार्थों में से यह काम पुरुषार्थ है। ईसाई इसे पाप मानते हैं, बोलते हैं कि ईसा मसीह को छोड़कर बाकी सब इसी पापकर्म से पैदा हुये हैं। पर यह तर्कसंगत नहीं है।

सृष्टि प्रकृति और पुरुष के योग से बनती है। अब देखो न, कीड़े-मकोड़े कैसे बनते हैं? मिट्‌टी में पानी मिला, उमस आयी, कीड़ा पैदा हो जाता है। प्रकृति और पुरुष का ही योग हुआ न? यह सृष्टि का नियम है। स्त्री-पुरुष का शारीरिक सम्बन्ध स्वयं में एक आध्यात्मिकता है। यह सिर्फ मेरी नहीं, शास्त्रों की राय है।

शास्त्रों ने मैथुन-सम्बन्ध के तीन प्रयोजन बताये हैं। पहला भोग, अच्छा लगता है। दूसरा प्रजा, बच्चा होता है। तीसरा, कुण्डलिनी का जागरण होता है। आदमी भोजन छोड़ सकता है, पर मैथुन छोड़ने में दिक्कत होती है। घर छोड़ सकता है, जोरु को नहीं छोड़ पाता है। क्योंकि संसार के जितने आनन्द हैं, उनमें मैथुन का आनन्द श्रेष्ठ होता है। यह आदमी को पागल बना सकता है, और ठीक भी कर सकता है। आदमी को गिरा सकता है, और आदमी को उठा भी सकता है। यह तंत्र का आधार है। विवाह पद्धति जो है यह तान्त्रिक पद्धति है। स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध केवल प्रजा के हेतु नहीं, केवल भोग के हेतु नहीं, योग के हेतु भी है।

इसलिये अपने और अपने पति के सम्बन्धों को एक नयी दृष्टि से देखो। वह दृष्टि नहीं जो तुम्हारे दिमाग में बचपन से घुसायी गयी है या स्वत: तुम्हारे अन्दर प्रस्तुत हुई है। उसके लिये आसन-प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध और ध्यान का अभ्यास करना चाहिये, मानसिक सन्तुलन होना चाहिये। तुम योग में आ गये हो तो इसका यह मतलब नहीं कि औरत अलग, मर्द अलग। यह गलत दृष्टिकोण है। ब्रह्मचर्य का अर्थ कुछ और होता है। स्त्री-पुरुष के

अलग रहने को ब्रह्मचर्य नहीं कहते। *'ब्रह्मणि चरति इति ब्रह्मचर्यः'*–जब मनुष्य का मन ईश्वर में रमता है तब वह वास्तविक ब्रह्मचर्य है। इसलिये गृहस्थ आश्रम के सन्दर्भ में ब्रह्मचर्य वगैरह शब्द छोड़ो। मैं जो कह रहा हूँ उसका केवल यही अर्थ है कि गृहस्थ आश्रम में रहने वाले स्त्री-पुरुष का जो सम्बन्ध है, उसे आध्यात्मिक दृष्टिकोण से देखा जाय, पाप या हीनता की भावना से नहीं।

इस सम्बन्ध को कन्ट्रोल करने की भावना से मत देखो, बल्कि उसकी गुणवत्ता को सुधारने के लिये योग में आओ। इस सम्बन्ध की गुणवत्ता को बेहतर बनाने में योग सहायक है, भक्ति सहायक है, सत्संग सहायक है, संयम सहायक है, परन्तु यदि तुमने इसको गलत समझ लिया तो अपराध-बोध की भावना आ जायेगी। यह गलत है, वह गलत है। सब लोग पागल हो जायेंगे।

– *15 अक्टूबर 1997*





अध्याय 6

भले ही हमारे यहाँ कहते हैं कि पति-पत्नी का जन्म-जन्म का सम्बन्ध होता है, मगर जब उम्र ज्यादा हो जाती है तो पति का पत्नी में और पत्नी का पति में मन नहीं लगता है। एक उम्र के बाद स्त्री का बाल-बच्चों में मन लगता है, और आदमी का यार-दोस्तों में। उनका एक-दूसरे से खास मतलब नहीं रहता और छोटी-छोटी बातों में नोंक-झोंक होती है। मैंने खुद तो यह जीवन देखा नहीं है, मगर आप लोगों का जीवन देखकर ऐसा ही प्रतीत होता है। अधेड़ उम्र में औरत का नाती-पोतों में, बहू-बेटियों में मन लग जाता है और उसमें सुरक्षा पा लेती है, जबकि मर्द का बच्चों में मन लगता नहीं है। अगर मर्द बच्चों के बीच रहेगा तो खर्चा ही खर्चा होगा उसका। गलत या सही? इसलिये वह दोस्तों के बीच रहना पसन्द करता है। मर्द शाम को क्लब में चला जाय, सत्संग में चला जाय, कहीं घूमने चला जाय, ताश या शतरंज खेलने चला जाय या लाइब्रेरी में चला जाय, यह नियम है सुखी रहने का। पत्नी कहे कि पति हमसे बात भी नहीं करता, पति कहे पत्नी हमसे बात ही नहीं करती, हमेशा नोंक-झोंक होते रहे, एक-दूसरे का दोष देखते रहो, यह गलत तरीका है। इसका मतलब कि तुम नियम पालन नहीं कर रहे हो।

एक उम्र के बाद स्त्री और पुरुष को अलग रहना ही चाहिये। सामाजिक रूप से भी अलग रहना ही चाहिये। तब दोनों में मित्रता और सौहार्द का भाव बना रहता है। लेकिन यह तो आप लोग करते हैं नहीं। पति पत्नी की छाया बन कर रहता है, पत्नी पति की छाया बनकर रहती है। इसलिये छोटी-छोटी बात में नोंक-झोंक बनी रहती है।

मनुष्य को उम्र के साथ अपनी परिस्थितियाँ बदलनी चाहिये। स्वास्थ्य का सम्बन्ध मनुष्य के मन से, उसकी परिस्थितियों से होता है। भला-चंगा आदमी भी बीमार पड़ जाता है। गृहस्थाश्रम में आप लोग हैं जरूर, मगर गृहस्थाश्रम के नियमों का परिचय आपके माता-पिता ने ठीक से नहीं दिया है। हमारे पूर्वजों ने कहा था कि 50 साल के बाद वानप्रस्थ और 75 साल के बाद संन्यास। इसका मतलब यह नहीं कि जंगलों में चले जाओ, वह व्यावहारिक है भी नहीं। मगर 50 के बाद पति और पत्नी घर-परिवार में ही वानप्रस्थी की मानसिकता के साथ रहें। पत्नी अपने नाती-पोतों में उलझी रहे और पति अपने दोस्तों के बीच शतरंज खेले, गोल्फ खेले, सत्संग करे या कुछ समाज सेवा का काम करे।

तुम समाज सेवा का जितना भी काम करो, वह दिमाग पर असर नहीं करता। तुम अपने लिये मकान बनाओ और हमारे लिये भी, दोनों परिस्थितियों में दिमाग पर अलग-अलग असर पड़ेगा। दूसरे के लिये जो काम किया जाता है, उसका अपने पर कुछ असर नहीं पड़ता। बैंक में अगर चोरी-डकैती हो जाती है तो वहाँ काम करने वाले आदमी को क्या फर्क पड़ता है? मगर उस आदमी के घर से एक बटुआ गायब हो जाय, हालत खराब हो जाती है। स्व और पर में इतना ही फर्क है। इसलिये बहुत-से लोग सोशल वर्क में, समाज सेवा में चले जाते हैं। आजकल सब जगह सोशल वर्क बहुत होता है। अनाथालय, अन्धों के स्कूल, बहरों के स्कूल, बहुत कुछ है, वहाँ जाकर सदस्य बनो, वहाँ दिनभर एकाउण्ट्स देखो, छोटा-मोटा काम करो। इस काम से दिमाग पर कोई असर नहीं पड़ेगा, मगर वही काम घर के लिये करोगे तो बीमार पड़ जाओगे। कहने का मतलब यह कि जब दूसरे के लिये काम किया जाता है उसका अपने ऊपर कोई कर्म नहीं बनता, और अपने लिये जरा भी किया जाय तो कर्म बन जाता है। ज्यादा उम्र हो जाने पर इस तरह का वानप्रस्थ जीवन अपनाना चाहिये।

मुझे समझ में नहीं आता कि मैं कहाँ और कैसे कर्मयोग करूँ?

अरे! इसमें क्या रखा है? किसी भी आश्रम जाकर सेवा करो। स्त्रियाँ रसोईघर का काम देखें, आश्रम की देखरेख का काम देखें, जैसे स्वामी सत्संगी देखती है। वह यहाँ का लेखा-जोखा देखती है, खर्चा देखती है, नौकर-चाकरों को देखती है। घर में अगर शादी करके रहती तो वही काम करती जो यहाँ कर रही है। स्त्री में जो योग्यता है वह तो कहीं भी काम आ सकती है। कहीं जाकर

लॉट साहब थोड़े ही बनना है। किसी संस्था में जाकर रसोईघर देख लो। घर के रसोईघर और यहाँ के रसोईघर का मन पर अलग असर पड़ता है, स्वास्थ्य पर अलग असर पड़ता है।

हृदय में आने-जाने वाला खून नलियों से होता हुआ बहता है। ये उम्र के साथ संकीर्ण होती जाती हैं, जिससे खून के बहने में दिक्कत होती है। सरल शब्दों में दिल का मर्ज यही है। इसके लिए आजकल डॉक्टर लोग बाईपास सर्जरी करते हैं, दूसरी नली लगा देते हैं। पर सब से अच्छा है सरल, सादा आहार। घी-तेल, नमक या मसाला खाने से खून गाढ़ा होता है, और उसके बहने में दिक्कत होती है। इसलिये आदमी को एकादशी को उपवास करना चाहिये, दूध और फल लेना चाहिये, इतवार को बिना नमक के भोजन करना चाहिये। सूर्य की उपासना भी हो जाती है और अपने शरीर के लिये भी अच्छा है। और सबेरे पन्द्रह-बीस मिनट टहलना चाहिये। पंजाबी लोग सब टहलते हैं, उनकी यह सबसे अच्छी आदत है, जिसे मॉर्निंग वॉक कहते हैं। स्वास्थ्य ऐसे ही बनता है। और शाम को हल्का भोजन खाना चाहिये। उबला हुआ आलू खाओ, उबली हुई सब्जी खा लो, दूध पी लो। और मियाँ-बीवी को 50 के बाद अलग रहना चाहिये। अलग का मतलब भौतिक दृष्टि से नहीं, नियम दृष्टि से। नहीं तो छोटी-छोटी बात पर झगड़ा होता है और यह झगड़ा कभी-कभी इतना ज्यादा हो जाता है कि एक को दिल का दौरा पड़ जाता है। इसलिए शास्त्रों में लिखा है, 25 साल ब्रह्मचर्य, 25 साल गृहस्थ, 25 साल वानप्रस्थ, फिर संन्यास।

कहा जाता है कि सब कुछ ईश्वर करता है, सब ईश्वर की इच्छा है। तो आदमी के प्रयास का क्या महत्त्व है। हम डॉक्टर हैं, किसी को बचा रहे हैं, क्या हमारा प्रयास कुछ नहीं, क्या यह सब वाकई ईश्वर की इच्छा है? यह बड़ा द्वन्द्व मन में चलता रहता है।

इस अनन्त ब्रह्माण्ड में एक शक्ति है जो सब चीजों के अन्दर व्याप्त है। तुममें, हममें, औरत में, मर्द में, सदाचारी में, दुराचारी में, सबमें है। उसको तुम ईश्वर कहो, चलेगा, चेतना कहो चलेगा। उसका अपना कोई नाम नहीं है किन्तु उसने स्वयं अपनी इच्छा से प्रकृति को पैदा किया। यह वेदों का वचन कह रहा हूँ। *एकोऽहं बहुस्याम:*–मैं एक हूँ, अब बहुत हो जाऊँ। उसने प्रकृति को जन्म दिया अपने ही अन्दर से, क्योंकि वह तो सर्वसमर्थ है, सर्वशक्तिमान्

है, सर्वव्यापक है, सर्वज्ञ है। प्रकृति उसकी इच्छा से पैदा हुई, और फिर उस प्रकृति ने सारी सृष्टि को पैदा करना शुरू किया। अन्तरिक्ष को पैदा किया, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी तत्त्वों को पैदा किया, प्राणियों को पैदा किया। सब कुछ प्रकृति ने तीन आधार पर पैदा करना शुरू किया–सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। पाँच तत्त्व और तीन गुण मिलाकर यह सृष्टि बनी।

पंच तत्त्व का घर बनाया, खेलने लगे सब खिलाड़ी। हम लोग सब खिलाड़ी हैं। ऐसी स्थिति में, तुम चाहे इंजीनियर हो या डॉक्टर, तुम्हारे अन्दर में दो तत्त्व हैं, पुरुष और प्रकृति। सबके अन्दर में हैं, द्वैत के बिना इस सृष्टि में कुछ भी नहीं है। पुरुष माने आत्मा, चेतना। वह अकर्ता है, कुछ नहीं करता, वह केवल है, अस्ति। सब काम करती है प्रकृति और यह प्रकृति पुरुषार्थ और प्रारब्ध, दोनों को नियंत्रित करती है। पुरुषार्थ माने तुम्हारा प्रयत्न, और प्रारब्ध माने तुम्हारे पहले के पुरुषार्थ का परिणाम। पिछले साल गेहूँ बोया था, आज जो फसल निकली वह प्रारब्ध है। फसल प्रारब्ध है और आज जो बीज बोने जा रहे हैं, वह पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ और प्रारब्ध का अन्योन्य पारस्परिक सम्बन्ध है, इसलिये हर जीव ईश्वर की इच्छा को सर्वोपरि मानते हुए भी पुरुषार्थ के लिये स्वतन्त्र है। नहीं तो तुम कहोगे, तुमने मुझे गधा बनाया, मैं गधा बन गया, तुमने मुझसे पाप करवाया, मैंने कर दिया, तुमने मुझे साधु बनाया, मैं बन गया, तुमने मुझे इंजीनियर बनाया, मैं बन गया, तुमने मुझे स्त्री बनाया, मैं बन गयी। तुम तो अपने सारे के सारे पाप उन्हीं पर लाद रहे हो। नहीं, यह गलत है।

जो मनुष्य ऐसा सोचता है उसके जीवन के संघर्ष ही खत्म हो जाते हैं। प्रकृति नित्य संघर्षपूर्ण है, जबकि आत्मा में संघर्ष नहीं। कर्मों से अरुचि होने की अवस्था दूसरी है, जो किसी-किसी को प्राप्त होती है। वह तुम्हें प्राप्त होने वाली नहीं, इसलिए उसकी अपेक्षा भी नहीं करना। वह किसी-किसी एक-आध को होती है। कोई कभी निकल जाय तो निकल जाय। मगर संसार में बाकी जितने भी जीव हैं, सब प्रकृति के अधीन हैं। प्रकृति से मुक्त कोई नहीं है। जिस दिन तुम प्रकृति से मुक्त हो जाओगे, जिस दिन तुम प्रकृति के नियमों, बन्धनों और कानूनों के परे हो जाओगे, उस दिन निश्चित रूप से तुम कह सकते हो कि मैं कर्त्ता नहीं हूँ, भोक्ता नहीं हूँ, जो कुछ कर रहा हूँ, वही कर रहा है। अभी तुम यह नहीं कह सकते। अभी तुममें अहंकार है, तुम कुछ अच्छा करते हो तो तुम्हें मालूम है कि मैं अच्छा कर रहा हूँ। तुमसे कुछ गलती होती है तो तुम महसूस करते हो कि मैंने गलत किया। विषाद होता

है। किसी ने तुमको गाली दे दी तो गुस्सा आता है, बुरा लगता है। किसी ने तुम्हें जी हाँ, जी हाँ कहा तो अच्छा लगता है। जब तक तुममें यह अहंकार है, तब तक तुम प्रकृति के नियमों के अन्तर्गत हो।

यह ठीक है कि जो कुछ हो रहा है, ईश्वर की इच्छा से हो रहा है, किन्तु इस सिद्धांत को व्यावहारिक रूप देना चाहिये। जो आदमी प्रकृति के नियमों से ऊपर उठ चुका हो उसके लिए यह ठीक है, अन्यथा उसे प्रकृति के नियमों का पालन करना चाहिये। इस विषय पर तो शास्त्रों में, धर्मों में बहुत चर्चा हुई है। यूरोप में वैज्ञानिकों और धार्मिक विचारधारा वालों के बीच में टकराव इसी विषय पर हुआ। इस्लाम भी यही कहता है सब ऊपर वाला करता है। तुम्हारी शादी भी वही करता है, तुम्हारे घर में विपत्ति भी वही लाता है। सब कुछ वही करता है, बन्दा कुछ नहीं करता। यह इस्लाम का संदेश है और यही ईसाई धर्म का संदेश भी है। इस्लामी देशों में वैज्ञानिक मानसिकता वाले लोग तो ज्यादा हुए नहीं, पर ईसाई देशों में बहुत हुए। उन लोगों ने निरन्तर चर्च पर धावा बोलना शुरू कर दिया। वही सब कुछ करता है क्या, हम कुछ नहीं कर सकते क्या, यह टकराव शताब्दियों तक चला। राजनैतिक दृष्टि से चर्च बहुत शक्तिशाली था। जहाँ-जहाँ वैज्ञानिक लोगों ने इस प्रकार की चुनौती दी उनका कत्ल कर दिया गया। ये कहानियाँ तो आप लोग जानते ही हैं। धीरे-धीरे उन लोगों ने अपना मुँह चर्च की तरफ से मोड़ना शुरू कर दिया। पादरी लोग तो कहते थे कि सब कुछ गॉड करता है। शादी, बेटा, बीमारी, सब कुछ गॉड ही करता है। यह सिद्धांत आज उन लोगों को पसन्द नहीं है।

इस मामले में हम तो वैदिक धर्म मानते हैं, जिसका सिद्धान्त हमने शुरू में ही तुमसे कह दिया। वैदिक धर्म पुरुषार्थ और प्रारब्ध को जीवन के तराजू के दो पलड़े मानता है। ऐसी बात नहीं कि हम भगवान की सर्वव्यापकता को चुनौती दे रहे हैं। भगवान उल्लू तो है नहीं, वह तो दुनिया का मालिक है, डाइरेक्टर है, संचालक है। जब उसे दुनिया को चलाना होगा तो उसे एक सचिव या सहायक तो रखना ही होगा न? गीता में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते है–

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥ 7.4 ॥
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥ 7.5॥

हे अर्जुन, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार, ये मेरी अष्टधा अपरा शक्तियाँ हैं। इसके अलावा मेरी एक और परा प्रकृति है, जिसके द्वारा यह सृष्टि धारण होती है। दृष्टान्त के रूप में कहें तो भगवान की दो पत्नियाँ हैं। तिरुपति में भगवान के एक तरफ श्रीदेवी हैं, दूसरी तरफ भूदेवी। परा प्रकृति, श्रीदेवी और अपरा प्रकृति, भूदेवी। परा प्रकृति के द्वारा सृष्टि की रचना होती है और अपरा प्रकृति उसे संचालित करती है। यह तो बहुत बड़ी सरकार हुई न।

किन्तु पश्चिम में वैज्ञानिकों ने इस मान्यता को चुनौती दी। चर्च ने कहा ऊपर वाला करता है लेकिन वैज्ञानिकों ने कहा कि नहीं, वह नहीं करता, हम करते हैं। अगर किसी औरत को बच्चा नहीं है, तो घबराने की कोई बात नहीं, हम 'टेस्ट-ट्यूब बेबी' पैदा करा देंगे। किसी का गुर्दा खराब हो गया, चिन्ता नहीं, किसी और का गुर्दा लेकर बदल देंगे। अभी कल ही वैज्ञानिकों ने शनि ग्रह की जाँच करने के लिए आज तक का सबसे बड़ा सैटेलाइट भेजा है। वह 7 साल, यानि सन् 2004 में पहुँचेगा। बतलाइये, इन्सान कितना समर्थ है! अब इतना समर्थ इन्सान चर्च की बात मानेगा क्या? जब तक चर्च की बात मानता था, यूरोप भिखमंगा था। जब से वैज्ञानिक लोगों का बोलबाला शुरू हुआ, उन लोगों के पास बेशुमार धन, सम्पत्ति और वैभव आ गया है।

पुरुषार्थ और प्रारब्ध, दोनों अपनी जगह पर ठीक हैं। दोनों में परस्पर विरोध नहीं है। किन्तु दोनों में कोई एक श्रेष्ठ है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। पुरुषार्थ प्रारब्ध को सही करता है और प्रारब्ध पुरुषार्थ का परिणाम है। अगर तुम्हारा बीज अच्छा होगा, तो अच्छा गेहूँ निकलेगा, और अच्छा गेहूँ निकलेगा तो तुम्हारा अच्छा बीज पैदा होगा। इन दोनों को पृथक् करके मत देखो, बल्कि एक-दूसरे को बीज और वृक्ष की तरह देखो। पुरुषार्थ और प्रारब्ध हमेशा एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं।

हिंसा और अहिंसा के बीच रेखा कैसे खींची जा सकती है? घर में चूहे को मारते हैं, मच्छर के लिये क्वाइल जलाते हैं। क्या यह हिंसा है या नहीं?

इसका सीधा जवाब है। यह हिंसा नहीं है। जो जीव आततायी होते हैं, चाहे मनुष्य हो या पशु या पक्षी, उनको मारने में कोई हर्ज नहीं।

सृष्टि का सबसे आततायी जीव तो मनुष्य ही है न? कितने प्रकार के जीवों का किसी-न-किसी तरह से अपने लिये उपयोग करता है।

नहीं, ऐसी बात नहीं है। महाभारत में इस विषय पर बहुत लिखा है। वहाँ कहा है, *जीव: जीवस्य भोजनम्*। एक जीव दूसरे जीव पर आश्रित रहता है। हमारे पुराणों में, शास्त्रों में अनेक जगह यह चर्चा हुई है कि जीव को मारने से हत्या होती है या नहीं। पहली चीज तो यह है कि जीव ही जीव का भोजन है। मुर्गी भी जीव है, बकरी भी जीव है, मेढक भी जीव है, सर्प भी जीव है, चूहा भी जीव है, दीमक भी जीव है, ये एक-दूसरे पर आश्रित रहते हैं। आततायी का मतलब भी बड़ा स्पष्ट है। वह जो दूसरे को बिना किसी शुभ प्रयोजन के आतंकित करता है। हम तुम्हारा उपयोग करते हैं, ठीक है, नौकरी करवाते हैं, पर जब हम तुम्हें परेशान या भयभीत करने के लिये कोई दु:ख देते हैं, तब हम आततायी कहलाते हैं।

मनुष्य को तुम आततायी नहीं कह सकते। मनुष्य के लिए अगर तुम बड़े-से-बड़ा शब्द कहना चाहो तो कोलोनाइज़र या साम्राज्यवादी कहो। मनुष्य ने इस सृष्टि में पशुओं की कॉलोनी को हथियाया जरूर है, सामान्य रूप से उसे आततायी नहीं कहा जा सकता। साँप चूहे को खाता है, वह उसका भोजन है। अगर दुनिया में सब साँप मर जायेंगे तो चूहे बहुत बढ़ जायेंगे। इसलिए प्रकृति ने संतुलन के लिये हिंसा की अनुमति दी है। इसमें पाप-पुण्य का विचार लाना ही नहीं है।

हिंसा और अहिंसा, ये दोनों सृष्टि में सन्तुलन बनाये रखने के नियम हैं। यदि इन दोनों में से किसी एक को तुम अधिक महत्त्व दोगे तो सृष्टि का संतुलन टूट जायेगा। बौद्ध और जैन धर्म ने अहिंसा को अत्यधिक महत्त्व दिया, देख लो हिन्दुस्तान की क्या हालत है आज। मुगल लोग धड़ाधड़ आये अपनी तोपें लेकर, हिन्दुस्तान मार खा गया। तब जाकर शिवाजी ने पुर्तगाली लोगों को पकड़कर तोपें लीं और मुगलों का सामना किया। बोलो अहिंसा से फायदा हुआ क्या? हिंसा तो दुनिया में हर जगह हो रही है। अफ्रीका में हिंसा हो रही है, एक जाति के लोग दूसरी जाति के लोगों को मार रहे हैं। सर्बिया और बोसनिया में ईसाइयों और मुसलमानों के बीच हिंसा हो रही है। इज़राइल में यहूदियों और मुसलमानों में लड़ाई-झगड़ा चल रहा है। जहाँ तक मच्छरों को मारने का सवाल है, हाँ, क्वाइल जलाना भी ठीक है। इस पर ज्यादा सोचना नहीं चाहिये।

तो क्या इस धरती पर सबको जीने का बराबर हक नहीं है?

यह आदर्शवाद की बात कह रहे हो। जीवन में दो बातें होती हैं, एक आदर्श, दूसरी यथार्थ। आदर्श उसे कहते हैं जो बहुत अच्छा लगता है, जो होना चाहिये। आदर्श तो यही है कि किसी को मत मारो। तुम्हारे घर में चोर आ जाए तो अपना बटुआ भी उसे दे दो। कोई तुम्हें बायें गाल पर चाँटा मारे तो दाहिना भी दिखा दो। कोई तुम्हारा कोट माँगे तो उसको पतलून भी दे दो। यह आदर्श है। पर इस आदर्श को जीवन में उतारने की हिम्मत है? कोई तुम्हारा बटुआ ले जाए और तुम कहो मेरे गहनों की पिटारी भी लेते जाओ, किसी की हिम्मत है ऐसा करने की? तो फिर बोलते क्यों हो? जो व्यावहारिक है ही नहीं उसे कैसे करोगे? आज मानव अधिकार की जो बातें चल रह रही हैं दुनियाभर में, वह आदर्श है, यथार्थ नहीं।

आज पाश्चात्य सभ्यता दुनिया पर राज कर रही है। राज का तात्पर्य केवल राजनीति से नहीं, हर क्षेत्र में उन्हीं का डंका बजता है। चिकित्सा प्रणाली उनकी है, पूरी शिक्षा व्यवस्था उनकी है, रसोई की प्रणाली उनकी है, पूरा का पूरा इन्जीनियरिंग उनका है। जीव विज्ञान, शरीर विज्ञान, भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, हर तरह का विज्ञान पश्चिम से आया है। हिन्दुस्तान के पास भी वैज्ञानिक विद्या थी, चीन के पास भी औषधि विद्या थी, परन्तु इन छोटी-छोटी बातों में ये मर गये कि चोर को मारें या न मारें, मच्छर को मारें या न मारें। इसी में ही महात्माओं ने सबका दिमाग खोखला कर दिया।

तुम किसी भी जाति का इतिहास ले लो, वाइकिंग्स का ले लो, मुगलों का ले लो, चंगेजखाँ का ले लो, वह इतिहास यही कहता है कि विजय की पिपासा सब में है। मेरा घर तुम्हारे घर से बढ़िया हो। जो जाति इस पिपासा को त्याग देती है, वह मर जाती है, नष्ट हो जाती है। किसी जमाने में हिन्दू जाति अफगानिस्तान, काराकोरम्, बर्मा, जावा, थाईलैण्ड, कम्पूचिया, बाली, सुमात्रा, कहाँ-कहाँ नहीं फैली हुई थी। आज भी इण्डोनेशिया में लोगों के नाम संस्कृत पर आधारित हैं। कालान्तर में जैन और बौद्ध विचारधारा के हिंसा-अहिंसा के मामले को लेकर, ब्राह्मण लोगों के छूआछूत के मामले को लेकर, स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की संकीर्ण दृष्टि को लेकर यह देश बहुत कमजोर हो गया। तीन जातियाँ एक तरफ, एक जाति दूसरी तरफ। औरतों का तो हिन्दुस्तान में पैरालिसिस है। यहाँ अधिकांश औरतें बेकार हैं। खाली रोटी-दाल बनाती हैं, कपड़े धोती हैं, इस्त्री करती हैं। समाज और राष्ट्र के लिए उनका योगदान

क्या है? कौन-सी वैज्ञानिक उपलब्धि प्राप्त की है उन्होंने? उनमें से कोई मैडम क्यूरी निकली है?

मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि इन सब चीजों की वजह से हिन्दुस्तान राजनैतिक रूप से इतना कमजोर हो गया कि उत्तर-पश्चिम से आये लोगों ने फटाफट इनको पीटना शुरू कर दिया। सामना नहीं कर पाये। छूआछूत की वजह से ये कमजोर हो गये। पिछड़ी जातियों के लोग ईसाई बन गये, मुसलमान बन गये। जब-जब विदेशी शक्तियाँ आयीं सबसे पहले इनपर ही हाथ डाला है। बौद्धों ने इन्हीं को बौद्ध बनाया, जैनों ने इन्हीं को जैन बनाया, मुसलमानों ने इन्हीं को मुसलमान बनाया, ईसाइयों ने इन्हीं को ईसाई बनाया। आज की राजनैतिक व्यवस्था भी इन्हीं को घेरे हुए है।

बौद्ध धर्म ने तो मध्यम मार्ग अपनाया था न?

मध्यम मार्ग का मतलब क्या होता है तुम जानते हो न? मध्यम मार्ग कब और कैसे निकला, इसकी कहानी भी हम तुमको बताते हैं। जब बौद्ध धर्म का बहुत प्रचार हुआ, यह तिब्बत पहुँच गया, चीन पहुँच गया, जहाँ लोग तिलचट्टा खाते हैं, मेंढक खाते हैं, साँप खाते हैं, तब लोगों ने कहा, बाप रे बाप, बौद्ध लोग माँस खाने लगे! वहाँ समस्या होने लगी। तब बौद्धों के दो सम्प्रदाय निकले, हीनयान और महायान। हीनयान वाले बोले, शुद्ध वैष्णव रहो और महायान वालों ने कहा, सब चलेगा। तब जाकर उन्होंने मध्यम मार्ग निकाला और विक्रमशिला नामक विश्वविद्यालय का निर्माण हुआ।

बौद्ध संघ में पहले औरतों को भिक्षुणी के रूप में नहीं लेते थे, मगर बाद में स्त्रियों को लेना पड़ा। जहाँ स्त्री-पुरुष सम्पर्क में रहेंगे, कुछ-न-कुछ दुर्घटना तो होगी ही, उसको तो कोई रोक नहीं सकता। वह तो प्रकृति का नियम है, विधान है। परन्तु बौद्ध धर्म में जो सबसे बड़ी मुश्किल आयी वह यह कि अशोक के समय बौद्ध धर्म राजधर्म में बदल गया। राजा-महाराजा तो भगवान बुद्ध के समय में ही बौद्ध धर्म से बहुत प्रभावित थे, क्योंकि गौतम बुद्ध स्वयं राजपुत्र थे, पर जब अशोक ने बौद्ध धर्म अंगीकार किया तो बौद्धधर्म पूरे भारत का राजधर्म बन गया, जैसे इस्लाम आज पाकिस्तान का राजधर्म है।

जब धर्म राजनीति से हाथ मिलाता है तो उसका पतन होता है, वह नष्ट हो जाता है। बौद्ध धर्म के नष्ट होने का मुख्य कारण यही है और कुछ नहीं। न बौद्ध संघ में स्त्रियों का आना, न बौद्ध धर्म में तन्त्र का आना। बौद्ध

धर्म ने जब राजसत्ता के साथ गठबन्धन किया तब उसका पतन शुरू हुआ। इसका दूसरा उदाहरण ईसाई धर्म है। ईसाई चर्च राजनीति में गया, मर गया। दुनिया में आज कहाँ है ईसाई धर्म? यूरोप में आज चर्च केवल एक सामाजिक संस्थान और समारोह के रूप में रह गया है। वहाँ अगर आज कोई सक्रिय आध्यात्मिक आन्दोलन है तो वह भक्तिवेदान्त, महर्षि महेश योगी, आचार्य रजनीश, कृष्णमूर्ति या हम जैसे साधु-संन्यासियों का है। सब का सिर मुड़ाकर रखा है, वहाँ हर एक घर में वैदिक धर्म की पुस्तकें पहुँच गई हैं। और हम लोग आगे भी इसी तरह से काम करेंगे। संस्थागत ढंग से नहीं, स्वतन्त्र रूप से, क्योंकि संस्था को चोट पहुँच सकती है।

इसलिए धर्म और राजनीति को अलग रखना चाहिये। साधु-महात्मा मार्गदर्शन दे सकते हैं, मगर वे राजनीति में नहीं जायेंगे। जिस दिन जायेंगे चोट लग जायेगी। बौद्ध धर्म के पतन का कारण यही था, और जैन धर्म के जीवित रहने का भी यही कारण है। जैन धर्म वाले व्यापारी लोग हैं, हीरा-मोती बेचते हैं, उनके धर्म में राजनीति के लिए स्थान नहीं है। इसलिये जैन व्यापारी लोग अच्छे मालदार हो गये।

कहते हैं धर्म विहीन राजनीति ऐसी है जैसे कोई मदमस्त हाथी, जिसके ऊपर कोई बैठा नहीं है, कोई अंकुश नहीं है। आज जो हमारे देश की स्थिति है जिसमें राजनीतिज्ञ मनमानी कर रहे हैं, क्या इसका तत्काल कारण यही है कि उनपर कोई नियंत्रण नहीं रह गया है? साधु-महात्मा यदि आज मार्गदर्शन करें तो क्या स्थिति में कुछ बदलाव नहीं आयेगा?

नहीं आयेगा। अगर साधु-महात्मा वहाँ संसद में बैठेंगे तो उनका भी वही हाल होगा। ईमानदार आदमी कभी राजनीति नहीं कर सकता, कभी राजसत्ता नहीं सम्भाल सकता। अब राम जी की बात छोड़ो, उनके ऊपर क्या-क्या समस्याएँ आयी होंगी, तुम्हें मालूम नहीं। जिन देशों में धर्म का शासन है वहाँ भी भ्रष्टाचार उतना ही है जितना यहाँ। चाहे वह अमेरिका हो, इंग्लैण्ड हो, सउदी अरब हो या जापान। घूस हमेशा से ली गयी है, हमेशा दी जाती रहेगी। अमेरिका में भी दी जाती है, बस ढंग दूसरा है।

अगर भ्रष्टाचार को मिटाना है तो साधु-महात्माओं को रखने से कुछ नहीं होगा, उसकी परिभाषा बदलनी होगी। घूस तो हमारे जमाने में भी लेते थे। जब

हम दस-बारह साल के थे, उस समय भी पुलिस का सिपाही घूस लेता था, इन्स्पेक्टर घूस लेता था। अरे, भामाशाह ने महाराणा प्रताप को घूस दी थी। अब उसको घूस नहीं कहते हैं क्योंकि महाराणा प्रताप राष्ट्र के लिये लड़ रहे थे। इसलिये उसे मदद कह दिया, शब्द बदल दिया। पर फिर भी सवाल तो उठता है कि भामाशाह ने क्यों दिये 75 हजार सिक्के?

भ्रष्टाचार की परिभाषा बदलनी चाहिये। नहीं तो यह होता रहेगा, इसे कोई रोक नहीं सकता। लोगों के लाख चिल्लाने पर भी बन्द नहीं होगा, भ्रष्ट लोगों के जेल जाने पर भी नहीं बदलेगा, डायरी में लिख लो। कोई अफसर आठ हजार रुपये महीना कमाता है, बारह हजार रुपये का सूट तो उसके शरीर पर रहता है, कहाँ से लाया चार हजार रुपये। उसके अलावा हजार रुपये का जूता और उसका बेटा अलग से मोटरसाइकिल लेकर घूम रहा है, उसकी बीवी ने अलग से बढ़िया साड़ी पहनी है, कहाँ से पैसा आयेगा? इतनी तनख्वाह तो तुम देते नहीं हो। ड्राइवर को छः सौ रुपया महीना मिलता है। छः सौ रुपये में किसका घर चलेगा? इसलिए वह पेट्रोल निकालकर बेच देता है। नया स्पार्कप्लग बेचकर पुराना स्पार्कप्लग लगा देता है।

हम भ्रष्टाचार को सहन करते हैं या नहीं, सवाल यह नहीं, कुछ और है। मान लो तुमने कानून बना दिया कि सड़क के किनारे पेशाब मत करो, नहीं तो जुर्माना होगा। अब तुमने पेशाबखाना तो बनाया नहीं, पर कानून बना दिया कि यहाँ पेशाब नहीं करना। कहते हो यहाँ कूड़ा मत फेंको पर कूड़ा फेंकने और उसका निपटारा करने के लिये कोई व्यवस्था भी तो बनानी चाहिये न। कहते हो घूस मत लो, मगर तन्ख्वाह कितनी कम देते हो। कलेक्टर को पचास हजार रुपया महीना दो, कभी रिश्वत नहीं लेगा। कोई आदमी रिश्वत लेना नहीं चाहता, कोई बेईमान नहीं बनना चाहता। गलत परिस्थितियाँ, गलत सामाजिक परिवेश मनुष्य को मजबूर करता है। तुम अगर ड्राइवर को पाँच हजार रुपया महीना दो तो पेट्रोल चुरायेगा क्या, स्पार्कप्लग चुरायेगा क्या? छः सौ रुपये में जरूर चुरायेगा।

आज की इस स्थिति है में सुधार की उम्मीद नहीं की जा सकती?

नहीं, यह ऐसे ही चलता रहेगा जब तक तुम अपनी व्यवस्था को बदलोगे नहीं। इसमें सबसे पहली चीज यह कि लोगों की आमदनी बढ़ाओ। यह देश कृषि-प्रधान है, यहाँ उद्योग प्रधान माहौल कभी रहा ही नहीं। कृषि का मतलब केवल

खेती नहीं होता है, बागवानी, जंगल, पशु-पालन वगैरह भी कृषि के अन्तर्गत आता है। देश की करीब 60-70 प्रतिशत जनता इस पर पूर्णतया निर्भर है। वही उनका सब कुछ है। गाय उनका सब कुछ है, जमीन उनका सब कुछ है। लेकिन इस देश की सरकारें, यहाँ के राजनेता और बुद्धिजीवी लोग, खेती पर कुछ भी काम नहीं कर रहे हैं। किसी भी किसान के पास साधन-संपत्ति नहीं है। न पम्प-सेट है, न कुआँ है, न ट्यूब-वेल है, न खेती के साधन हैं, न उनके पास पशु पालने की योग्यता है। सभी मल्टीनेशनल कम्पनियों की बात करते हैं, किसानों के बारे में कोई नहीं सोचता। किसानों के पास पैसा नहीं आ रहा है, इसलिए किसान खर्चा नहीं कर पा रहे हैं। दुकानदारों की बिक्री नहीं हो पा रही है। हिन्दुस्तान में 100 करोड़ लोग रहते हैं, कम-से-कम 70-75 करोड़ के यहाँ एक कुर्सी नहीं है। अगर उनके पास खरीदने की क्षमता हो, अगर हर घर में एक टार्चलाइट मोल लें, हिन्दुस्तान की कम्पनियाँ उत्पादन नहीं कर सकेंगी, आयात करना पड़ेगा। इतना जबर्दस्त बाजार है यहाँ का। मगर इतने बड़े उपभोक्ता बाजार का कोई ख्याल नहीं कर रहा है, और जब तक इसका ख्याल नहीं करोगे तब तक जिस समस्या की बात तुम कर रहे हो उसका इलाज नहीं है।

भारत का आधार खेती है, धन्धा नहीं। जो बाहर की कम्पनियाँ और उद्योगपति यहाँ आ रहे हैं, वे धीरे-धीरे भारत को अपना व्यापारिक कॉलोनी बनायेंगे। वही जो दो सौ साल पहले ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने किया था। इसके लिये फिर एक गाँधी को आना पड़ेगा। तुमको साफ-साफ बतला रहा हूँ। हिन्दुस्तान की सरकार को, हिन्दुस्तान के लोगों को एक ही चीज पर जोर लगाना चाहिये, पैसा गाँव में लाओ। यहाँ परिवार नियोजन की जरूरत नहीं है। गर्भनिरोधक गोलियों और कॉपर-टी लगाने से कुछ नहीं होता है। केरल के लोगों ने कैसे परिवार नियोजन किया है, जाकर देखो। परिवार नियोजन का एक ही सूत्र है, स्त्री शिक्षा, और कुछ नहीं। हम दो हमारे दो, यह सब फालतू की नारेबाजी है, बेकार पैसा खर्च करते हैं।

गाँव में दूसरी जरूरी चीज है पानी और चिकित्सा की व्यवस्था। गाँवों में एक ही जानलेवा बीमारी है टी.बी., बाँकी सब बीमारियाँ नियंत्रण में हैं। खुजली, पेटदर्द, पीलिया, इन सब को तो छोटी-सी क्लिनिक से सम्भाला जा सकता है। साधारण डॉक्टर भी यह काम निभा सकता है। हम तो यहाँ ऐसे ही करते हैं। ऑपरेशन चाहे आँख का हो या गॉलब्लैडर का, देवघर

या भागलपुर में करा लेते हैं। टी.बी. हम यहीं सम्भाल लेते हैं। सौ प्रतिशत सफलता मिली है। जब से हम यहाँ आये हैं कम-से-कम 300 टी.बी. मरीज आ चुके हैं, ठीक हो गये हैं। हम यहाँ आयुर्वेद, होम्योपैथी, यूनानी, एलोपैथी, कई प्रकार की दवाइयों का उपयोग करते हैं। गाँवों में शहरों की तरह चिकित्सा की बहुत बड़ी समस्या नहीं है, यहाँ की सबसे बड़ी समस्या है जल। गाँव में हर एक आदमी के लिए पानी हो। जब तक यह चीज आयेगी नहीं तब तक सब बेकार है।

बी.ए., एम.ए., एल.एल.बी., एम.बी.ए., यह सब कुछ लोगों के लिये ही ठीक है। जिनके 80 प्रतिशत से ऊपर अंक आएँ, उन्हें ही उच्च शिक्षा में जाना चाहिये, बाकियों को नहीं। अगर मैट्रिक में 80 प्रतिशत नंबर नहीं आए, तो आगे की पढ़ाई छोड़ो। सब लोग गाँव छोड़कर शहर जाते हैं, वहाँ कितनी समस्या हो रही है। पढ़े-लिखे लोगों को गाँव में आना चाहिये। जिस आदमी के पास चार-पाँच एकड़ जमीन है और जिसके पास दो-चार लाख बैंक में जमा है, उसे तो शहर में रहना ही नहीं चाहिये। हमारे पास दो गाय हैं, दोनों मिलाकर करीब 40 लीटर दूध देती हैं। अगर 40 लीटर दूध हम बाजार में बेचें, तो 400 रुपया रोज का हुआ। गाय के लिये खर्चा 100 रुपया रोज, नौकर का मिलाकर के। हमारे लिए बचा 300 रुपया रोज का, महीने का आठ-नौ हजार हो गया, साल में कितना हो गया? वह भी दो गाय, हम चार-पाँच गाय रख सकते हैं। और उनकी आगे दो-दो, तीन-तीन बच्चियाँ हो गई हैं।

कहने का मतलब यह हुआ कि गोरक्षा से, गोपालन से कितनी आमदनी हो सकती है। हम लोग मुर्गी नहीं रखते, पाठा नहीं रखते, सूअर नहीं रखते, मगर गाय तो रख सकते हैं न? हम घोड़ा भी पाल सकते हैं। क्यों नहीं, घुड़दौड़ करा सकते हैं। हमने तो गाँववालों से कहा है, पैसा लगाओ, हम रेस कोर्स बना देंगे, घोड़ा तैयार करवा देंगे। हमें घोड़ों की जात मालूम है, बचपन में सीखा है। गाँव में शहर से ज्यादा पैसा मिलता है और खर्चा कम होता है। यहाँ खर्चा शहर के मुकाबले एक-तिहाई होता है और आमदनी तीन-चार गुना ज्यादा।

तुम्हारे प्रश्न का उत्तर यही है कि देश की स्थिति को सुधारने के लिए हिन्दुस्तान को ग्राम राज बनाओ। ग्राम राज गाँधी जी का ही स्वप्न था। बच्चों को बुनियादी शिक्षा दो, औरतों को व्यावहारिक शिक्षा दो–पट्टी कैसे बाँधते हैं, थर्मामीटर कैसे देखते हैं, सुई कैसे लगाते हैं, मल्हम कैसे लगाते हैं, दिल क्या चीज है, जिगर क्या चीज है। अशोक और औरंगजेब की बातें पढ़ाकर

क्या फायदा, गाँव की औरतों को मैडम थोड़े ही बनना है। हाँ, कोई-कोई बन सकती है। जो लड़की होशियार है उसे बी.ए., एम.ए., एम.बी.बी.एस. या एल.एल.बी. पढ़ाओ। और जो कम नम्बरों में पास हो तो उसे उच्च शिक्षा नहीं, घर-गृहस्थी में काम आने वाली शिक्षा दो। लड़कों को खेती के बारे में, पानी के बारे में, ईंटों के बारे में, बालू के बारे में, फूस के बारे में, मकान के बारे में बतलाना चाहिये। जो चीज रोज के जीवन में काम आती है, जो अर्थकरी है, जो उपार्जन में मदद करती है, वही शिक्षा उनको देनी चाहिये।

मतलब शिक्षा-पद्धति में परिवर्तन आना चाहिये?

यह तो बस बाबू बनाने वाली शिक्षा-पद्धति है। मान लो कोई ब्राह्मण की लड़की है, उसे ज्योतिष सिखाओ, वह फिर गाँव के लोगों की कुण्डली बनायेगी। दिन के दस-बीस रुपये, महीने के तीन-हजार रुपये तो जमा कर ही लेगी। ब्राह्मण की लड़की है, बाहर जाने की भी जरूरत नहीं। गाँव में जिन लड़कियों का गला अच्छा है उनको संगीत की शिक्षा दे सकती है, जिनका शरीर लचीला है उनको नृत्य की शिक्षा। गाँव में ब्यूटी-पार्लर भी होना चाहिये। क्या सुन्दर दिखने का अधिकार केवल शहर की लड़कियों को ही है? नहीं, श्रृंगार का अधिकार ग्रामिणों को भी है।

इन सब चीजों पर हमारे देश में किसी ने विचार नहीं किया। गाँधी जी ने किया, पर वे आज़ादी के बाद ज्यादा दिन रहे नहीं। उन्होंने बुनियादी विद्यालय खोले थे। उन दिनों हम भी उन बुनियादी स्कूलों में जाकर सिखाया करते थे। आज जो दिल्ली, बैंगलोर, हैदराबाद या कलकत्ता जाने की होड़ लगी है, यह आने वाले दिनों में गम्भीर समस्या उत्पन्न करेगी जिसे तुम लोग सम्भाल नहीं पाओगे। इसका एक ही उपाय है। पूरे देश में जाओ, हिन्दुस्तान के हर एक व्यक्ति से कहो कि गाँव की तरफ वापस चलो। गाँव की जमीन का दाम बढ़ना चाहिये। यहाँ के लोगों को महत्त्व मिलना चाहिये। हर परिवार के पास पानी की व्यवस्था होनी चाहिये। हर गाँव में एक छोटा-मोटा चिकित्सक होना चाहिये।

एक बार हम यूरोप में योग सेमीनार करने गए थे। यह सेमिनार फ्रांस और स्विट्ज़रलैंड के बीच एक छोटे-से गाँव में था। उस गाँव में 25-30 घर थे, और हर घर किसी पाँच सितारा होटल से कम नहीं था। घर में किचन, बर्तन, बिजली का तवा, सब कुछ था। हम लोग अपना खाना खुद बनाते थे। हमको यह जगह अच्छी लगी। हमने स्वामी सत्संगी से कहा कि हम सेमीनार

के बाद यहाँ दो-चार दिन और रहेंगे। इसके लिए हवाई जहाज की बुकिंग को बदलना जरूरी था। हमने सोचा इसके लिए हमें शहर जाना पड़ेगा। हमने सेमिनार के आयोजकों से कहा कि हमें कार दे दो, हम शहर जाकर बुकिंग बदलवा कर आते हैं। उन्होंने कहा कि इसकी जरूरत नहीं है, सीधे यहीं से बुकिंग हो जाएगी। और वाकई उस छोटे-से गाँव से अन्तरराष्ट्रीय फ्लाइट की बुकिंग हो गई!

हिन्दुस्तान को इस अवस्था तक पहुँचना चाहिए। गाँवों में सुविधा हो, सामर्थ्य हो, शक्ति हो, जो आधुनिक माँगों को पूरा कर सकें। यहाँ रिखिया में अगर कोई मकान जल जाता है तो देवघर खबर नहीं हो पाती है, लोगों के पास कोई उपाय नहीं है। चोरी हो, डकैती हो, मारपीट हो, बम काण्ड हो, पुलिस को सूचित करने का कोई रास्ता नहीं है। हम लोगों ने यहाँ पब्लिक टेलीफोन लगाया, तो लाइन ही गड़बड़ हो जाती थी, बरसात में टूट जाती थी। तब हमने सोलर टेलीफोन लगाया, उससे आसान हो गया है। अगर सेल्यूलर फोन आ जाता है तो उसे भी रखेंगे। देवघर में चिट्ठी आती है, तो यहाँ तीन दिन के बाद पहुँचती है। हमने कहा चिट्ठी-पत्री छोड़ो, हम फैक्स से भेज देते हैं। हम कभी मुंगेर चिट्ठी नहीं लिखते। कागज ले लिया, टाईप किया और फैक्स मशीन में डाल दिया। लेकिन यह तो मेरी व्यक्तिगत सुविधा है, यही सुविधा गाँवों में आनी चाहिए। अब तो हम ई-मेल भी ला रहे हैं, और इंटरनेट भी। देशभर में जहाँ-जहाँ समाज सेवी संस्थाएँ हैं, अन्धों की, अनाथों की, उन सबकी हमें डायरेक्टरी चाहिये, और वह डायरेक्टरी हम इंटरनेट से लेंगे। यहाँ जितने भी अपंग लोग हैं, जो चल नहीं सकते, अभी उनके लिये ट्राई-साईकिल मँगाई है। किसी का पैर कट गया हो, तो उसे कृत्रिम पैर लगायेंगे। अगर कोई अनाथ लड़का है, कोई विधवा स्त्री है, उनके लिए किस तरह की संस्था काम आ सकती है, यह जानकारी हम लोग इकट्ठी कर रहे हैं। हमने स्वामी निरंजन से इंटरनेट के लिये आवेदन करने को कहा है। यह सब तो हम कर रहे हैं, क्योंकि हमें जानकारी है, हमारे पास साधन हैं। यही काम सरकार क्यों नहीं करती है, गाँव में सोलर टेलिफोन क्यों नहीं लाती है?

अगर गाँव में फोन आ भी गया, तो वे किसको फोन करेंगे?

यही तो गलती है तुम्हारी सोच में। बाजार में जो चीज आती है उसकी जरूरत भी आ जाती है। यह बात हमेशा याद रखो कि बाजार का सिद्धान्त यही है कि

लोगों को अधिक-से-अधिक आमदनी की नौकरी मिले। टेलिफोन आयेगा, यहाँ लगेगा, कितने लोगों को नौकरी मिलेगी। गाँव के लोग बेवकूफ नहीं हैं, वे बहुत समझदार लोग हैं।

उनके पास खाने को है नहीं, तो टेलिफोन का क्या करेंगे?

गाँव में कभी रहे भी हो? गाँव के लोग कितने सरल होते हैं, जानते हो? पिछले साल राम-नाम-आराधना में स्वामी पुण्यानन्द जी ने यहाँ आकर प्रवचन दिये। उनके प्रवचन हँसी-मजाक से रहित, पर तथ्य से भरपूर थे। गाँववालों ने उन्हें बहुत पसन्द किया। हमें कह भी दिया कि स्वामीजी नाच-गाना मत कीजिये, उन्हीं को बुलाइये। जबकि शहर के लोगों को कथा सुनायी जाती है तो बीच-बीच में मजाक करना पड़ता है, मसाला भरना पड़ता है। गाँव के लोग मेहनत करते हैं। इनके तनाव कम हैं और इसी वजह से इनमें एकाग्रता अधिक होती है। बीमारियाँ कम घातक होती हैं।

इसलिये गाँव के आदमी के प्रति तुम्हें अपना विचार बदलना होगा। गाँव का आदमी सड़क से लकड़ी के टुकड़े इकट्ठे करके खाना बना लेता है और किसी भी चीज को बरबाद नहीं करता। तुम्हें गाँवों में बरबादी बिल्कुल नहीं मिलेगी। वे हर चीज इस्तेमाल कर लेते हैं। जबकि शहरों में कितनी बरबादी होती है। मैं तो गाँव में जन्मा हूँ। मेरे गाँव में तो लालटेन भी नहीं थी, डिबरी जलाते थे। रात को बाहर शौच करने जाते थे तो दो चीज साथ रखते थे। एक तो राइफल, दूसरी चीड़ की लकड़ियों से बनी मशाल, क्योंकि वहाँ शेर-बाघ बहुत होते थे।

मुझे जब भी बाहर के देशों में गाँव देखने का मौका मिलता, मुझे बड़ी प्रसन्नता होती थी। किसी तरह से वे लोग अपने गाँवों का ख्याल रखते हैं, चाहे अमेरिका हो या यूरोप। स्विट्जरलैण्ड के गाँवों में मैंने सेब और अनार को पैक करने के लिये डिब्बे बनते देखे। वहाँ फूलों को बेचने की भी सुविधा है। जब जाड़े के दिनों में बर्फ पड़ती है और चारागाह सूख जाते हैं तो वहाँ की गायों को हेलिकॉप्टर से उठाकर निचले स्थानों पर लाया जाता है। हजारों मोटी-मोटी गायें होती हैं, उनके थन गेहूँ के बोरे की तरह होते हैं, उन सबको हेलिकॉप्टर से उठाया जाता है।

राष्ट्र को गाँव की सेवा करनी चाहिए, पर यहाँ तुम सेवा करते हो व्यापारियों की, बड़ी-बड़ी कम्पनियों की। हिन्दुस्तान के उत्थान का यही एक रास्ता है कि

पूरा ध्यान गाँवों की ओर दिया जाए। बाकी आजकल लोग संसद में या इधर-उधर जितना भी बोल रहे हैं, वे सब हमारे काम की चीजें नहीं हैं।

राजनीति में ऐसे कई लोग हैं जो वास्तव में अच्छा काम करना चाहते हैं, गाँवों का विकास करना चाहते हैं, पर चाहकर भी कुछ नहीं कर पाते हैं।

परिस्थितियाँ अच्छे-अच्छे लोगों को भी पराजित कर देती हैं। मैं नेताओं को बहुत करीब से देखता था, और इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि परिस्थितियाँ उनको पराजित कर देती हैं। उस माहौल में जाने के बाद उनके पास कोई दूसरा उपाय है नहीं। वे धर्म-कर्म में विश्वास रखते हैं, देवी-देवताओं का दर्शन भी करते हैं। प्राय: सभी का किसी-न-किसी गुरु आश्रम से सम्बन्ध रहता है। मगर सब कुछ होने पर भी *'काजल की कोठरी में कैसोहूँ सयाना जाय, एक दाग वाहू को लागिहैं पै लागिहैं।'* वहाँ पर जाने से दाग लग ही जायेगा, क्योंकि राजनीति वह परिस्थिति है जहाँ व्यक्ति व्यवस्था की कठपुतली बनता है। तुम भी अगर कल मंत्री बन जाओगे तुम कुछ नहीं कर सकोगे, क्योंकि वह जो व्यवस्था है उसे तुम अकेले बदल नहीं सकते। यहाँ का कागज वहाँ जायेगा, वहाँ का कागज यहाँ आयेगा। और कागज को खिसकाने के लिये बीच-बीच में पेट्रोल भरना पड़ता है। उसके बिना कागज खिसकेंगे नहीं। यह व्यवस्था ही ऐसी बनी हुई है, जिसे तुम लोग नौकरशाही या ब्यूरोक्रेसी कहते हो। हर एक देश की अपनी अलग प्रकार की नौकरशाही होती है। यहाँ की नौकरशाही दूसरे तरह की है। इस नौकरशाही में हर एक चीज देर से चलती है, इसलिये तुम कितने ही अच्छे मंत्री क्यों न हो, उस परिस्थिति में कुछ नहीं कर सकते हो।

गाँधीजी भी तो उसी काजल की कोठरी में गये थे। वे कैसे बच कर निकल गये?

नहीं, गाँधीजी राजनेता नहीं, स्टेट्समैन थे, राष्ट्र पुरुष थे। गाँधीजी को राजनेता कहना, यह राजनीति को सम्मान देना है। वे राष्ट्र पुरुष थे, वे कभी सत्ता की राजनीति में नहीं गये। वे चाहते तो भारत के प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति बन सकते थे, मगर जब भारत आजादी मना रहा था, वे बंगाल में भटक रहे थे। गाँधीजी एक मिशन को लेकर अवतरित हुए थे। वे सामान्य मनुष्य नहीं थे। हमने उनको देखा है। हम साबरमती और वर्धा में रहे हैं। वे साधारण व्यक्ति

नहीं, अवतारी पुरुष थे। अवतारी पुरुष एक प्रयोजन को लेकर आता है और उसे सिद्ध करने के बाद वह चला जाता है। गाँधीजी का एक ही प्रयोजन था, भारत को स्वराज्य प्रदान करना।

भारत को स्वराज्य प्रदान करने के लिये अनेक लोगों ने प्रयत्न किया, अनेक लोगों ने रास्ते बतलाये, विचारधाराएँ दीं। सुभाषचन्द्र बोस ने अपना रास्ता बताया, भगतसिंह ने अपना बताया। गाँधीजी ने एक रास्ता पकड़ लिया, सत्याग्रह। सत्याग्रह का यह रास्ता अंग्रेजों के साथ सही बैठ गया। अंग्रेजों का मुँहतोड़ जवाब सत्याग्रह ही था। अगर गाँधीजी नहीं आते, केवल सुभाषचन्द्र जैसे क्रांतिकारी ही रहते और आजाद हिंद फौज लेकर हिन्दुस्तान आ भी जाते तो भी आजादी नहीं मिलती। क्योंकि अंग्रेजों का मुँहतोड़ जवाब फौजी ताकत नहीं, कानून और नियम था। गाँधीजी ने उनकी कमजोर नस पकड़ ली, और अपने आन्दोलन का आधार अहिंसा बना दिया। भारतीय परिवेश में अगर कोई कहे कि हम कानूनी दाँव-पेंच से संस्थागत लड़ाई लड़ेंगे, तो यहाँ कोई समझेगा नहीं। अहिंसा कहा तो सब समझ गये, समझाना नहीं पड़ा। गाँधीजी एक अवतारी पुरुष थे जो एक प्रयोजन लेकर आये थे। वे राजा बनने के लिये नहीं आये थे। इसलिये उनको दाग लगा या नहीं लगा, यह कहना ही गलत है। हाँ, अगर गाँधीजी सत्ता के लिये आये होते तो वे भी नहीं छूटते।

– 16 अक्टूबर, 1997





अध्याय 7

आंतरिक संस्कारों की जो शिक्षा है, वह सात साल में समाप्त हो जाती है। सात साल के बाद बौद्धिक शिक्षा शुरू होती है। शिक्षा पर हमारे अपने विचार हैं, पर उन्हें हम सभी लोगों से तो नहीं कह सकते, क्योंकि बहुत-सी सांस्कृतिक बातें सामने आ जाती हैं। हिन्दुस्तान में लड़कियों के प्रति जो सामाजिक, राजनैतिक, कानूनी और आर्थिक व्यवहार हैं, वे हमें ठीक नहीं लगते। यह मानव जाति के लिए हितकारी हो या अहितकारी, लेकिन है वह एक अन्याय ही। और वैदिक संस्कृति के विपरीत है। वैदिक संस्कृति में तो स्त्री प्रमुख थी। आज के युग में सबसे पहले हमें लड़कियों को खूब पढ़ाना चाहिए।

क्या स्कूली शिक्षा वास्तव में जरूरी है? वह तो बहुत सीमित कर देती है न?

मानते हैं कि स्कूली शिक्षा सीमित कर देती है। मगर आज उसकी महिमा सब जगह स्वीकृत है। हो सकता है कि आदमी समझदार हो, मगर जब तक पढ़ा-लिखा न हो, तब तक उसे नौकरी कहाँ मिलती है? औपचारिक शिक्षा का सम्बन्ध जीवन से नहीं, अपने व्यक्तित्व और समाज में अपनी हैसियत से है। अब स्वामी सत्संगी है, उसे केवल कलम हाथ में दे दो और विषय दे दो, रातभर में किताब खत्म कर देती है। उसे खाना बनाना नहीं आता था, बिस्तर लपेटना नहीं आता था, बर्तन धोना नहीं आता था, कभी कुछ किया ही नहीं था। छह-छह महीने तो वह लन्दन में रहती थी। कभी पर्थ में रहती थी तो कभी टोक्यो में। उसे यह भी नहीं मालूम था कि कपड़े कैसे रखते हैं। कपड़े निकाले

और फेंक दिये, नौकरानी सब करती थी। अब उसे यह सब करना पड़ता है। उसके पास डिग्री थी, डिग्री के कारण उसे आमदनी होती थी, पैसा मिलता था। उसने जब नौकरी के लिये आवेदन दिया तो ग्यारह जगह से कॉल लेटर आया। ग्यारह जगह पर इंटरव्यू दिया और सभी जगह पर चुन ली गई। उसने मुझसे पूछा कि कहाँ नौकरी करूँ, तो मैंने कहा देश-विदेश में जाना चाहिये, विभिन्न संस्कृतियों का भोजन, रहन-सहन, समाज, राजनीति, सब चीजें जाननी चाहिये।

चाहे व्यक्ति व्यापारी बने, प्रोफेसर बने, संन्यासी बने या चोर-डाकू, वह चाहे जो करे, लेकिन उसे संसार की व्यापक जानकारी होनी चाहिये। यह उसके लिए जरूरी है, क्योंकि आज संसार बहुत छोटा हो गया है। जितनी देर में आदमी पहले भागलपुर से मुंगेर जाता था, उतनी ही देर में आज कहाँ से कहाँ पहुँच जाता है। दुनिया एक छोटे गाँव की तरह हो गयी है। इसलिए स्वामी सत्संगी से कहा कि एयर-इंडिया में नौकरी करो। वहाँ उसे अपनी डिग्री की वजह से मान्यता मिली, बहुत-सी जानकारियाँ मिलीं। उसे यही नहीं मालूम था कि दाहिनी करवट क्यों सोते हैं, बाँयीं करवट क्यों नहीं सोते। जीवन की मौलिक पद्धतियाँ, जैसे दाहिनी तरफ सोना, हाथ-पैर धोकर खाना खाना, जूता उतारकर खाना, यह सब मालूम ही नहीं था, क्योंकि वह हमेशा अकेली रही है। यहाँ उसे सब करना पड़ता है, क्योंकि हम दूसरे को करने ही नहीं देते। उसे देर से जागने की आदत है। उसे मेरे पास आने के पहले मालूम ही नहीं था कि सुबह क्या होती है। हम तो यहाँ चार बजे जबरदस्ती उठा देते हैं। अभी वह कहती है कि मैं तीन-चार दिन लगातार सो सकती हूँ!

लड़कियों के लिए डिग्री जरूरी है। उन्हें पढ़ाना चाहिए, समाज की जानकारी देनी चाहिये। यह सब जानकारी न मिलने से लड़कियाँ आज के समाज का सामना नहीं कर सकेंगी। यूरोप की लड़कियों को यह खुलापन मिला है, इसलिए वे सब जगह पहुँच जाती हैं। अकेली राजस्थान घूम लेती हैं, काश्मीर चली जाती हैं, नागालैंड चली जाती हैं, और तो और मुसलमान देशों में भी चली जाती हैं। उन्हें सब चीजों और परिस्थितियों को सम्भालने का मौका मिला है। बी.बी.सी. के संवाददाताओं में अधिकांश लड़कियाँ हैं। अफगानिस्तान लड़कियों के लिये खतरनाक जगह है, पर वहाँ भी ये महिला संवाददाता पहुँच जाती हैं। वहाँ लड़कियाँ संवाददाता हैं। कहने का मतलब यह कि परिस्थिति का सामना करने की ताकत होनी चाहिये। लड़कियों का जो

पुराना आदर्श रहा है कि वे सुन्दर हों, कोमल हों, मृदुभाषी हों, यह सब लोगों ने अपने स्वार्थ के लिए किया है। अपने इस्तेमाल के लिए, अपने सुख के लिए, अपने भोग के लिए, लड़कियों को वैसा बना दिया है।

लोग कहते हैं कि लज्जा उसका गहना है। यदि लाज करेगी तो पढ़ने कैसे जाएगी?

कहीं भी जाओ, आज का युग प्रतिस्पर्धा का युग है। तुम विवाहिता हो, यदि तुम एक पत्नी के रूप में प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकती हो, तो तुम्हारे पति के जीवन में दूसरी लड़की आ सकती है। सीधी-सी बात है। जैसे ही तुम पत्नी बनती हो, वैसे ही तुम प्रतिस्पर्धा में खड़ी हो जाती हो। पति को भी प्रतिस्पर्धा में रहना पड़ता है, कमाई में, व्यवसाय में, समाज में। सब जगह यही होता है। यह युग प्रतिष्ठा का है, प्रतियोगिता का है, प्रतिद्वंद्विता का है और इसमें सबको संघर्ष करना पड़ेगा। आज का युग तो ऐसा ही है, हो सकता है कल का युग बदल जाए।

घर में लड़कियों को रामचरितमानस का पाठ सिखाना चाहिए, और यदि संस्कृत पढ़ना जानते हैं, तो गीता भी। हमारे वैदिक धर्म में जितने भी अध्यात्म ग्रन्थ हैं, ये दो उन सबका निचोड़ हैं। हिन्दी भाषा में रामचरितमानस, और संस्कृत में गीता। जहाँ समय-समय पर इन लोगों को सत्संग का मौका देते हो, वहीं आधुनिक संस्कृति और संगीत का मौका भी देना चाहिए। घरों में लड़कियाँ नहाते समय गाती हैं, क्योंकि उन्हें संगीत अच्छा लगता है। जहाँ उनको पण्डित भीमसेन जोशी और पण्डित जसराज का संगीत सुनने का मौका मिल रहा है, वहीं उनको माइकल जैकसन के संगीत की जानकारी भी होनी चाहिए। जहाँ वे शास्त्रीय संगीत जानती हैं, वहाँ उनको ओपेरा का ज्ञान भी होना चाहिए।

लड़की और लड़के का साथ में बैठना, यह आग और पेट्रोल का सम्बन्ध नहीं है। ऐसा कहा गया है, किसी जमाने में ऐसा होता होगा, मगर ऐसा होना नहीं चाहिए। उस परिस्थिति को हमें बदलना चाहिए, ताकि हमारे लड़के-लड़कियाँ स्वतंत्र रूप से विचरण करके भी अपने देश की सामाजिक मर्यादाओं का पालन कर सकें। हर देश की एक सामाजिक मर्यादा है। हमारे देश की भी एक सामाजिक मर्यादा है, और हम उस मर्यादा को उत्तम समझते हैं। पर उस मर्यादा के लिए हम अपनी लड़की को दबा कर न रखें, उसे तैयार करें।

लड़की को उद्दण्ड न होने दें, उसे सभ्य बनाएँ। असभ्यता और उद्दण्डता का कारण केवल खुलेपन की कमी है।

गुरु के बिना, आध्यात्मिक अनुभव को लोगों ने पागलपन समझा, लेकिन मुझे लगा कि मैंने कुछ खो दिया।

अद्वैत अवस्था, निर्विकल्प समाधि या 'सियाराममय सब जग जानी', यह सब एक जन्म में प्राप्त होने वाली चीजें नहीं हैं। जैसे डॉक्टर बनने में तुम्हें 15-20 साल लगे, सबसे पहले तुमने अक्षर ज्ञान, वर्ण माला, इत्यादि सीखा, वैसे ही किसी को भी एक ही जन्म में परम ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती, वह चाहे तुम हो या हम हों। हमें यह मान कर चलना है कि यह मेरा अंतिम जन्म नहीं है। भले ही यह मेरा अंतिम जन्म हो, मगर यही मानना चाहिए कि यह अंतिम नहीं है।

सन् 1947 में 12 सितम्बर को जब हमने संन्यास लिया, तो स्वामी शिवानन्द जी ने हमें क्रिया योग की शिक्षा दी, जो भी बताना था, वह सब कुछ बताया, किन्तु उन्होंने कहा कि तुम्हें चालीस साल रुकना चाहिए, तुम्हारे कर्म शेष हैं, तुम्हारी इच्छाएँ शेष हैं। और हम ठीक चालीस साल तक रुके। हमने 1988 में आश्रम छोड़ा और यहाँ आ गये। जब तक मनुष्य की इच्छाएँ, वासनाएँ और कर्म शेष रहते हैं, तब तक उसे भक्ति मार्ग में चलना चाहिए। भक्ति मार्ग का मतलब होता है, पूजा, पाठ, जप, सत्संग। योग मार्ग में आसन-प्राणायाम सबके लिए होता है, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय और अपरिग्रह का अभ्यास अपने वर्ण-आश्रम के मुताबिक करना चाहिए। धारणा, ध्यान, समाधि, ये राजयोग की क्रियाएँ हैं, यह अष्टांग योग है जिसका अभ्यास भक्ति योग के बाद ही किया जाता है। तुम मूल शास्त्रों को पढ़ो, योग का अभ्यास कब शुरू होता है? महर्षि पतंजलि के योग सूत्रों में तो लिखा है, *अथ योगानुशासनम्*। यहाँ अथ शब्द का मतलब है, अब इसलिए। तुमने बी.ए. पास कर लिया है, इसलिए अब तुम अगली कक्षा में जाओ, एम.ए. करो। अब तुमने भक्ति योग का अभ्यास कर लिया है, इसलिए अब तुम्हें योग का अनुशासन बताते हैं।

सब सूत्रों में ऐसा ही लिखा है। ब्रह्म सूत्र का पहला सूत्र है, *अथ अतो ब्रह्मजिज्ञासा,* अब हम ब्रह्म के ज्ञान की जिज्ञासा करते हैं। 'अब हम' माने तुमने भक्ति योग का अभ्यास भी किया, तुमने राज योग की साधना भी की, अब तुम वेदान्त का अध्ययन और अभ्यास करो। यह जो अभ्यास शास्त्र

है हम लोगों के वैदिक धर्म में, जिसे तुम योग कहो, ज्ञान कहो या वेदान्त कहो, यह एक जन्म का नहीं है। इस अवस्था को पाने के लिए ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य अवस्था में, गृहस्थ गृहस्थाश्रम में और संन्यासी संन्यास अवस्था में, साधना करे। जब संन्यासी गुरु से दीक्षा लेकर गुरु के आश्रम में झाड़ू देता है, रसोई बनाता है, बैंकिंग करता है, टाईपिंग करता है, एकाउंटिंग करता है, भवन-निर्माण करता है, तब उसने वही काम किया, जो आप गृहस्थ लोग संसार में करते हैं। उसी तरह से गृहस्थ आश्रम में रह कर संन्यासी का कर्म करना चाहिए। इसे कहते हैं एकीकरण। जब हमने गुरुजी से दीक्षा ली, तो क्या किया? बैठ गये क्या? नहीं। गुरुजी का आश्रम बनाया, उनका पैसा सम्भाला, उनका रसोई घर सम्भाला, गाय के लिए घास काटी, बैल चराये, गाड़ी चलाई, दूध निकाला। बारह साल तक उनका काम किया। फिर अपना आश्रम बनाया तो अपने आश्रम में काम किया। संन्यासी, संन्यास आश्रम में गृहस्थ आश्रम की तरह रहे। उसी तरह गृहस्थ को गृहस्थाश्रम में रह कर संन्यास आश्रम के धर्म का पालन करना चाहिए।

संन्यास धर्म क्या है? गेरू कपड़ा पहनना, सिर मुड़ाना, माला पहनना, यह संन्यास धर्म नहीं, यह तो संन्यास सम्प्रदाय है। सम्प्रदाय और धर्म में अन्तर होता है। संन्यास का मतलब क्या होता है, और गृहस्थ का अर्थ क्या होता है? जब गृहस्थ और संन्यास आश्रम को मिलाया जाता है, तब खिचड़ी बनती है जो सुपाच्य होती है। गीता ने इसे स्पष्ट किया है। भगवान श्रीकृष्ण गीता में अर्जुन से कहते हैं, *ज्ञेय: स नित्यसंन्यासी।* नित्य का मतलब क्या होता है? जो न सिर्फ दिन को या रात को, बल्कि सदा रहता है। संन्यासी किसे कहते हैं? श्री कृष्ण कहते हैं, हे अर्जुन, काम करना तेरे बस में है, बगीचा लगाना तेरे बस में है, शादी करना तेरे बस में है, दुकान खोलना तेरे बस में है, मगर तुमने बगीचा लगाया तो फल निकलेगा ही, यह तेरे बस में नहीं है। शादी की है तो बच्चा होगा ही, यह तेरे बस में नहीं है। दुकान खोली तो लाखों-करोड़ों बनेंगे, यह तेरे बस में नहीं है। अर्जुन कर्म करना तेरे बस में है, इतना अधिकार है तुम्हें, मगर इससे उत्पन्न होने वाले परिणाम तेरे अधिकार क्षेत्र से बाहर हैं।

यह है गृहस्थ और संन्यास धर्म का योग। केवल गृहस्थ धर्म क्या है? बगीचा लगाओ और दिन भर बोलो फल चाहिए, पैसा चाहिए, नहीं मिले तो सर पटको। आशाओं को लेकर जीवन व्यतीत करना, और आशाओं की पूर्ति

न होने पर निराश हो जाना, दिल का टूट जाना, यही तो गृहस्थ आश्रम है। कर्म करना और फल की चाह रखना, यही विशुद्ध गृहस्थ आश्रम है। जबकि कर्म नहीं करना, और फल की चाह भी न होना, यह विशुद्ध संन्यास आश्रम है। इन दोनों का योग यह हुआ कि कर्म करो गृहस्थ की तरह और फल की आशा न रखो संन्यासी की तरह। जो होगा देखेंगे, मिलेगा तो बढ़िया, नहीं मिलेगा तो चलेगा। यही गीता का बीज मंत्र है–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा तेऽसंगोस्त्वकर्मणि ॥ 2.47 ॥

हे अर्जुन, तुम संन्यासी की तरह कर्म का त्याग नहीं करना और गृहस्थ की तरह फल के पीछे भी न पड़े रहना। फल के पीछे पड़ जाओगे तो पतन ही होगा। किसी को हृदय की बीमारी हो रही है, किसी को तनाव हो रहा है, किसी को रक्तचाप हो रहा है, सब पागलपन है। साधना के बारे में कभी गलती नहीं करना। तुम कितनी भी साधना करो, दिन-रात साधना करो, भांग चढ़ाकर साधना करो, अफीम पीकर साधना करो, कुण्डलिनी जगाने की साधना करो, मगर *'समय पाय तरुवर फले, केतिक सींचो नीर।'* साधना धीरे-धीरे होती है, इसमें धैर्य और नियंत्रण की जरूरत पड़ती है।

गृहस्थ आश्रम अपने आप में एक बहुत बड़ी साधना है। बाप ने लड़के को पढ़ाया-लिखाया और पढ़-लिखकर लड़का बाप को जवाब देता है। अब क्या करें, दो-चार थप्पड़ मारें या सहन करें। सहन करना ही अच्छा है। यह सहनशीलता की शिक्षा हो गई। पति-पत्नी, जन्म-जन्म के साथी, उनके बीच दिनभर नोंक-झोंक चलती है, क्या करें जी, समझें या ना समझें? समझना ही पड़ता है। गृहस्थ आश्रम में क्षमा, सहनशीलता और तितिक्षा जैसे बहुत-से मजबूत बनाने वाले सद्‌गुणों का उपार्जन होता है। इन्द्रियों का दमन भी तो गृहस्थ आश्रम में करना पड़ता है। बाल-बच्चे हुए तो पैसा बचाना है, चलो थोड़ा-सा कम खर्च करें। नहीं होता है क्या?

गृहस्थ आश्रम में साधक उन्हीं गुणों का उपार्जन करता है जो आगे जाकर साधना के मार्ग में विघ्नों को दूर करते हैं। बिना सद्‌गुणों का उपार्जन किये, बिना व्यक्तित्व का परिष्कार किये यदि तुम ध्यान करोगे तो सीधे राँची के पागलखाने पहुँच जाओगे। साधक को बहुत मजबूत होना पड़ता है, उसका दिमाग बहुत मजबूत होना चाहिए। किसका दिमाग मजबूत होता है? जो

आदमी क्षमा करना जानता है, सच में उसका दिमाग मजबूत है। जब तक तुम्हारा दिल और दिमाग मजबूत नहीं होगा, तुम दूसरे को क्षमा करोगे क्या? कमजोर आदमी क्षमा कर सकता है क्या, सहन कर सकता है क्या, दया कर सकता है क्या?

क्षमा सोहती उस भुजंग को जिसके पास गरल है ।
उसको क्या जो दन्तहीन, विषरहित विनीत सरल है ॥

दया और करुणा किसके अन्दर होती है? बच्चे का कौन माँ त्याग कर सकती है, कमजोर माँ या मजबूत माँ? त्याग, तितिक्षा, दया और क्षमा जैसे गुणों का उपार्जन साधना के पहले निश्चित रूप से करना चाहिए।

ध्यान का जोखिम कभी नहीं लेना। गुरु के बिना तो बिल्कुल ही नहीं लेना। साधना मनमुख नहीं होती, गुरुमुख होती है। गुरु की जरूरत सब जगह है। यदि कोई चोरी-डकैती करना चाहता है, तो उसे भी गुरु की जरूरत पड़ती है। बिना गुरु के विद्या सफल नहीं होती। यह बात हमेशा ध्यान रखने की है। दूसरी बात यह है कि ईश्वर को पाने की जल्दी किसी को नहीं करनी चाहिए। यह *'चट मंगनी, पट विवाह'* की तरह नहीं होता। ईश्वर इतना सूक्ष्म तत्त्व है कि ऋषि-मुनियों ने इसके बारे में अन्तिम वाक्य 'नेति, नेति' कहा है। नेति माने पता नहीं चला। जब ऋषि-मुनियों को भगवान के अनन्त स्वरूप का पता नहीं चला, तब उन्हें अहसास हुआ कि भगवान का साकार रूप भी हो सकता है। भगवान सिर्फ निराकार नहीं है। वह निराकार भी है और साकार भी। वह सर्वाकार है। पानी बर्फ भी बनता है और पानी भी रहता है। जब उनको यह तथ्य पता लगा तब उन्होंने साकार उपासना शुरू की।

गृहस्थ और संन्यासी, दोनों को साकार उपासना करनी चाहिए। आदिशंकराचार्य तो अद्वैतवाद के प्रतिपादक थे, फिर भी उन्होंने देवी जी, शिव जी और विष्णु जी के कितने स्तोत्र लिखे हैं। अन्नपूर्णा स्तोत्र भी तो उन्हीं की रचना है न? आखिर उन्होंने साकार उपासना क्यों की? उन्होंने शृंगेरी मठ में माँ शारदा को क्यों प्रतिष्ठित किया? शारदा के विग्रह के बदले निराकार लिंगम् रख देते। पर नहीं, उन्होंने ऐसा नहीं किया।

भगवान का साकार रूप दुर्लभ है, क्योंकि समझ में ही नहीं आता कि साकार भगवान कैसे हैं? जबकि भगवान का निराकार रूप सुलभ है, क्योंकि निराकार कहते ही झट से समझ में आ जाता है। उसे सब स्वीकार कर लेंगे,

कोई भी ‘न’ नहीं कहेगा, न मुसलमान, न ईसाई, न पारसी, न यहूदी। लेकिन साकार की बात कहोगे तो लोग बहुत-से सवाल खड़े करेंगे। भगवान राम कैसे थे, कृष्ण जी कैसे थे, क्या रामकृष्ण परमहंस सचमुच भगवान के अवतार थे? इसलिए साकार बहुत ही दुर्लभ है। पर एक बार तुम्हारी मति साकार भगवान में निश्चित हो गई, तो तुम्हारा रास्ता साफ हो गया। समझो कि नैशनल हाइवे पर गाड़ी आ गई, अब पूरी रफ्तार से चलाओ।

ध्यान की ऊँची अवस्था और पागलपन, दोनों के लक्षण समान होते हैं। हमने बहुत-से महात्माओं को देखा है, अनुभूति जाग्रत होने के बाद वे सामान्य स्तर पर नहीं आ पाते। अगर तुम्हें गृहस्थ आश्रम में पत्नी के रूप में, पति के रूप में, पुत्र के रूप में, पुत्री के रूप में, अफसर के रूप में या कॉलेज के प्रोफेसर के रूप में काम करना है, तो फिर तुममें एक सामान्य व्यक्ति की तरह जीने की क्षमता होनी चाहिए।

हमारे गुरुजी ने जब कहा कि चालीस साल रुको, तो हमने कहा कि चालीस साल के बाद ही क्यों, अभी क्यों नहीं? उन्होंने कहा कि तुम गाड़ी छूटने के तीन घण्टे पहले स्टेशन आ गए हो। गाड़ी तो अभी आई नहीं है, तब तीन घण्टे क्या करोगे? हमने कहा कि हम उस बीच घर जाकर वापस आते हैं। उन्होंने कहा कि यदि उस बीच गाड़ी आ गई और छूट गई तो?

उन्होंने मुझसे कहा कि तब तक तुम यहीं रहो। घर जाकर तुम्हें जो करना है, वह सब तुम यहीं पर रहकर करो। फिर उन्होंने मुझे गोशाला खोलने के लिये कहा। ऋषिकेश में जो कोढ़ी सड़क पर बैठकर भीख माँगते थे, उन लोगों के लिए कॉलोनी बनाने के लिये कहा। मैंने सरकार और स्थानीय लोगों से दस-बारह एकड़ जमीन ली। उस समय गाँधी जी की सहयोगी, मीराबेन भी वहीं रहती थीं। उनका बहुत बड़ा फार्म था। उनसे कुछ खर-फूस वगैरह लिया, और कोढ़ियों के लिए घर बना दिये। उनको बकरी भी दी, बीड़ी भी दी, भत्ता भी दिया। शाम को वहाँ जाकर उन्हें रामचरितमानस भी पढ़ाता था। उनकी मलहम-पट्टी, दवा-दारू सब कुछ करता था।

वह काम खत्म हुआ तो उत्तर गुजरात भेज दिया गया। वहाँ आँखों के लिये शिविर लगाते थे। उन दिनों मोतियाबिंद के रोज डेढ-दो सौ ऑपरेशन होते थे। 1947 में मैं पाकिस्तान में था। लाहौर में पत्रिका छपती थी, मैं वहाँ स्थानीय संपादक था। 14 अगस्त को मैं वहीं था। और मैं वहीं फँस गया। मुझे मालूम था कि यह सब होने वाला है। मैंने आश्रम चिट्ठी लिखी, पर चिट्ठी

का जवाब ही नहीं आया। खैर सेना ने मुझे निकाला 17 तारीख को। वहाँ से आया तो बंगलादेश भेज दिया गया। वहाँ राहत शिविर में चार-चार हजार लोगों को खाना खिलाते थे।

कहने का मतलब यह कि गृहस्थ आश्रम में जो काम करना पड़ता है, वही संन्यास आश्रम में किया। स्वामीजी ने कहा था कि बेटा, तुम रेलवे प्लेटफार्म पर तीन घण्टे पहले आ गए हो, अब प्रतीक्षालय में रुको, अखबार पढ़ो, मूँगफली खाओ, इधर-उधर चहलकदमी करो, सिगरेट-बीड़ी पिओ, समय निकल जाएगा। गाड़ी आएगी तो चले जाना। 1987 में मेरी गाड़ी के आने की सूचना आई, हरी झण्डी हो गई। 1988 में मैंने मुंगेर आश्रम छोड़ दिया, और 1989 में यहाँ आ कर जम गया। अब गाड़ी आ गई है, मस्त हो कर बैठे हैं उसमें। साधना ऐसे करनी चाहिए। कभी भी गलत साधना मत करो। और बिना गुरु के तो कोई साधना करना ही नहीं।

यह तो सही है कि हर क्षेत्र में गुरु जरूरी है। चाहे वह संगीत हो या खाना बनाना, छोटी-छोटी बातों में भी सीखना पड़ता है। लेकिन फिर *'आत्मदीपो भव'* क्यों कहा गया है?

यह तो हम भी कहते हैं कि हर एक व्यक्ति को अपना प्रकाश स्वयं ही बनना है। बृहदारण्यक उपनिषद् में एक प्रसंग आता है। उसमें किसी शिष्य ने अपने गुरु से पूछा कि अन्धकार में आदमी कैसे चलेगा? उन्होंने कहा, 'चंद्रमा के प्रकाश में।' शिष्य ने पूछा, 'चंद्रमा भी अस्त हो जाए तो?' तो उन्होंने कहा, 'तारों के प्रकाश में।' फिर पूछा कि चंद्रमा भी अस्त हो जाए, तारे भी अस्त हो जाएँ, तो किस प्रकार चलेगा? ऐसे ही बातचीत चलती रही, प्रसंग बहुत लम्बा-चौड़ा है। अंत में गुरु ने कहा, 'अपने प्रकाश में।' कहने का मतलब यह कि जब सब इंद्रियाँ शान्त हो जाएँ, जब बुद्धि शान्त हो जाए, मन भी काम न करे, तब मनुष्य को आत्मा पर भरोसा करना पड़ता है। इन्द्रियाँ विषयों पर प्रकाश डालती हैं। अगर इन्द्रियाँ विषयों पर प्रकाश डालना बन्द कर दें, तब आदमी किस प्रकार देखेगा? आत्मा के आधार पर।

यही बात भगवान बुद्ध ने 'आत्मदीपो भव' के माध्यम से कही। बौद्ध विचारधारा तो वैदिक विचारधारा से ही निकली है। भगवान बुद्ध तो बौद्ध थे ही नहीं। वे तो एक हिन्दू थे, उन्होंने क्षत्रिय वंश में जन्म लिया था। हाँ, उनके चेले बौद्ध थे। उसी तरह ईसा मसीह न कैथोलिक थे, न प्रोटेस्टेंट। वे यहूदी

थे। न भगवान महावीर जैन थे, न रामजी वैष्णव थे, न शिवजी शैव। ये सब तो हमारे-तुम्हारे बनाये हुए सम्प्रदाय हैं। आत्मदीपो भव का यही तात्पर्य है कि जिसके पास अन्दर की आँखें होंगी, वह खुद चलेगा, उसे किसी के सहारे की जरूरत नहीं।

अगर बौद्ध विचारधारा वैदिक विचारधारा से मिलती-जुलती है तो यह इस देश से लुप्त क्यों हो गई?

इस बात का हमेशा ख्याल रखना चाहिए कि भारतवर्ष में इतनी शक्ति थी, इतना धन था, इतनी सम्पत्ति थी कि सारी दुनिया में उसे सोने की चिड़िया कहा जाता था। आज यह सोने की चिड़िया कहाँ है? सब बैठे भीख माँग रहे हैं चारों तरफ। क्यों? इस देश की सुख-सम्पदा को कौन लूट कर ले गया? परदेश के लोग लूटकर ले गए। क्यों लूट कर ले गए? क्योंकि हमारे पास उसे सुरक्षित रखने की शक्ति नहीं थी। अशोक के समय तो अस्त्रों का बनना ही बन्द हो गया था। सरकार का हुकुम था, दुकानदार जहर नहीं रख सकता था। बिना जहर के कोई बम बनता है क्या? रसायन डालने पड़ते हैं न? वशिष्ठ जी और विश्वामित्र जी ने श्रीराम को सिर्फ शास्त्र विद्या ही नहीं दी, शस्त्र विद्या भी दी। अगस्त्य मुनि ने उनको कवच आदि दिया। हम मानते हैं कि अहिंसा राजनैतिक हथियार है। गाँधी जी ने इसे राजनैतिक हथियार के रूप में प्रयुक्त किया जो अंग्रेजों के लिए ठीक था। लेकिन उस समय यह पूरे देश के लिए उपयुक्त नहीं था। इसलिए हम उस दर्शन को स्वीकार नहीं करते।

यही कारण था कि भारत में बौद्ध धर्म टिका ही नहीं, बल्कि शून्य हो गया। किसी भी धर्म को राजनीति के साथ हाथ नहीं मिलाना चाहिए। धर्म साधु-सन्तों की वस्तु है, पवित्र वस्तु है, जीवन का उद्धार करने वाली वस्तु है। उसे राजनीति में नहीं जाना चाहिए। अशोक के समय बौद्ध धर्म को राजधर्म बनाया गया, जैसे आज पाकिस्तान, सउदी अरब, ईरान और ईराक में इस्लाम राजधर्म है। बौद्ध धर्म इसीलिए मिटा। यूरोप में ईसाई धर्म संसद में आया, राजधर्म बना, मिट गया। यूरोप में ईसाई धर्म के मिटने का यही कारण है। आज वहाँ ईसाई धर्म बस नाम मात्र है। आज महर्षि महेश योगी, भक्तिवेदांत, कृष्णमूर्ति और हम जैसे लोगों की ही चलती है, चर्च वालों की बात कोई नहीं सुनता। किसी भी धार्मिक संस्था को राजनैतिक संस्था के साथ हाथ नहीं मिलाना चाहिए। हमें न इस नेता से मतलब है, न उस नेता से,

न इस राजनैतिक दल से मतलब है, न उस राजनैतिक दल से। धर्म हमेशा व्यक्ति के मार्गदर्शन के लिए है। जैन धर्म राजनीति की तरफ गया ही नहीं, इसलिए बच गया।

तुलसीदासजी इतने महान् कवि रहे हैं, उन्होंने इतने महान् काव्य रामचरितमानस की रचना की। फिर उन्होंने यह क्यों कहा– *ढोल गँवार सूद्र पसु नारी, सकल ताड़ना के अधिकारी?*

तुम तो पढ़ी-लिखी लड़की हो, इस बात को समझती हो कि किसी भी ग्रन्थ में कवि को बहुत तरह की बातें लिखनी पड़ती हैं। कवि को तो रावण का वचन भी लिखना पड़ेगा, शूर्पणखा का वचन भी लिखना पड़ेगा, राम का वचन भी लिखना पड़ेगा, दशरथ का वचन भी लिखना पड़ेगा, कैकेयी का वचन भी लिखना पड़ेगा। उन सब के वचन न्याय और धर्म संगत हों, यह तो कोई जरूरी नहीं। शूर्पणखा तो राक्षस जाति की थी, उसने जो कुछ कहा, वह सही था क्या? वह सब भी तो तुलसीदासजी ने लिखा है। कैकेयी ने जब दशरथ से लड़ाई-झगड़ा शुरू किया, उसने जितनी बातें कहीं, वे सब किसने लिखीं? तुलसीदासजी ने। ऋषि-मुनियों ने जो ज्ञान की बातें कहीं, उन्हें भी तो आखिर तुलसीदासजी ने ही लिखा। तो तुलसीदासजी के ऊपर यह आरोप लगाना कि उन्होंने ऐसा-ऐसा कहा, यह सही नहीं है। अरे, कहा तो कैकेयी ने, उन्होंने तो सिर्फ लिखा है।

जिस चौपाई की तुम बात कर रही हो, यह सुन्दर काण्ड के अन्त से पहले की है। जब समुद्र की प्रतीक्षा करते तीन दिन बीत गये और समुद्र का कोई अता-पता नहीं था, तब रामजी को क्रोध आया– *लछिमन बान सरासन आनू, सोषौं बारिधि बिसिख कृसानू।* तब उन्होंने अस्त्र संधान किया जो लक्ष्मणजी को बहुत अच्छा लगा। तब जाकर समुद्र आया। वहाँ उसने कहा है, *ढोल गँवार सूद्र पसु नारी, सकल ताड़ना के अधिकारी।* क्या यह सिद्धान्त सही है? सिद्धान्त गलत भी हो सकता है। यद्यपि तुलसीदासजी ने यह लिखा है, पर यह तुलसीदासजी का अपना वचन नहीं है, यह समुद्र का वचन है।

विभिन्न पात्रों से कवि जब कुछ कहलाता है, तब उसका उत्तरदायित्व कवि के ऊपर नहीं जाना चाहिए। लेखक या कवि तो सिर्फ सूचना देता है, उसमें उसका क्या दोष? किसी भी साहित्य में लेखक कई पात्रों के मुँह से अनेक प्रकार के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है। कुछ सिद्धान्त विदूषक के मुख से

निकलते हैं, कुछ खलनायक के मुख से और कुछ मूल नायक के मुख से। रामायण का मूल नायक कौन है? राम। खलनायक कौन है? रावण। उनके अलावा अन्य कई पात्र आते हैं। कहीं पर मारीच आता है, कहीं पर बालि आता है। इसलिए तुलसीदासजी से तो दोष हटा ही दो। यह सवाल सैकड़ों बार मुझसे पूछा गया है। मैं तो जवाब देते-देते थक गया हूँ। मेरी हर किताब में इसे छापा जाता है।

रही बात शूद्र, गँवार, ढोल, पशु, नारी की। ताड़न शब्द का अर्थ क्या होता है? ताड़ने का मतलब होता है देखना, अवलोकन करना, रखवाली करना, निरीक्षण करना। ताड़न शब्द त्राटक से आया है। कहते हैं न, क्या ताड़-ताड़ कर देख रहे हो। ताड़ने का मतलब होता है, खूब अच्छी तरह से देखना। अब ढोल को अगर अच्छी तरह से नहीं देखोगे तो वह फट सकता है। उसे हमेशा देखना पड़ता है। गर्मी है तो तेल लगा कर रखते हैं, उसे कसते हैं। और वही चीज गँवार के साथ है। अगर उसे नहीं देखो तो बैठकर खैनी खाता है। वैसे ही अगर औरत का ख्याल न रखो तो कोई आकर उसे ले जाएगा, क्योंकि वह तो बेचारी मासूम होती है। उसे दुनिया की कोई जानकारी तो है नहीं, हमेशा परदे के पीछे रहती है, माँ-बाप की सुरक्षा में रहती है। उसे पता ही नहीं रहता कि दुनिया में किस प्रकार के लोग होते हैं। जो भी अच्छी बात बोलता है, उसी से फँस जाती है। मैं आज की यूरोप की स्त्रियों के बारे में नहीं बोल रहा हूँ, मैं तो तुलसीदासजी के समय के बारे में बोल रहा हूँ। जहाँ तुलसीदासजी ने रामायण लिखी थी, अवध की बात हो रही है। जो जिस माहौल में रहता है, उसी माहौल की बात लिखता है। तुलसीदासजी के समय में आप लोग लड़कियों को नहीं ताड़ते क्या?

तो तुलसीदासजी ने यदि अपने विचार से यह बात लिखी हो, तो गलत विचार नहीं था। अब दूसरी बात यह है कि आप सुन्दरकाण्ड में इसके ऊपर की चौपाई पढ़ना और नीचे की चौपाई पढ़ना। ऐसा लगेगा कि इस चौपाई को बाद में जोड़ा गया है। पहले यह देखना कि वहाँ प्रसंग क्या है। समुद्र रामजी को बतला रहा है कि भगवान, पाँचों तत्त्व आपने बनाये, नियम आपने बनाये, आप चाहें तो मुझे सुखा सकते हैं, मगर फिर आप अपने ही नियम को समाप्त कर देंगे। वहाँ यही प्रसंग है। इसमें *ढोल गँवार सूद्र पसु नारी, सकल ताड़ना के अधिकारी* यह कहाँ से घुस गया? अब जब पढ़ोगे, तब तुम्हें मेरा यह दूसरा उत्तर ठीक लगेगा। हो सकता है किसी ने, किसी समय

में यह चौपाई जबरदस्ती घुसा दी, तुलसीदासजी को बदनाम करने के लिए, या अपनी बात बताने के लिए।

तुलसीदासजी कवि नहीं थे। उन्होंने रामचरितमानस समाधि की अवस्था में लिखी है। एक बात तुमको बतला दूँ कि मैं हिन्दी और अंग्रेजी से ज्यादा अच्छा संस्कृत बोलता हूँ। अंग्रेजी और हिन्दी तो मैंने सीखी है, जबकि संस्कृत मेरी मातृ भाषा है। मुझे आज भी पूरा वेद याद है, पूरी गीता याद है, पूरा ब्रह्मसूत्र, उसकी पूरी व्याख्या मुझे कण्ठस्थ है। सब संस्कृत शास्त्र पढ़ने के बाद, शंकराचार्य की सभी संस्कृत रचनाओं को पढ़ने के बाद एक ही किताब को मैंने जीवन में अन्तिम मत कहा। बाकी सब को हटा दिया। मेरे पुस्तकालय में अब कोई किताब नहीं है। सब किताबें मुंगेर भेज दी हैं। बस एक किताब रखी है, रामचरितमानस। इतनी मधुर, इतनी सरल, इतनी न्यारी। इसे गाँव का गँवार भी समझ सकता है, और पी.एच.डी. करने वाला भी इसपर शोध-प्रबन्ध लिखता है।

वह ग्रंथ जिसे गाँव का देहाती समझ जाए और विश्वविद्यालय में बैठा बुद्धिजीवी उस पर अनुसन्धान करे, वह कोई साधारण पुस्तक नहीं होगी। उसपर चिन्तन करना चाहिए। हम तो कहते हैं कि हर घर में रोज आधा घण्टा रामचरितमानस पढ़ना चाहिए। यहाँ हम लोग रोज सुबह 4 से 5 बजे तक रामचरितमानस पढ़ते हैं। सब लोग नियमित रूप से आते हैं, चाहे देशी हों या विदेशी। हम कहते हैं, जैसा भी हो सके, वैसा पढ़ो, क्योंकि रामचरितमानस का पाठ स्वयं में मंत्र जप है। जब योगी समाधि में रहता है और उसे भगवान के दर्शन होते रहते हैं, उस समय वह जो भी कहता है, वह मंत्र है। जो कुछ भी लिखता है, वह मंत्र है।

रामचारितमानस में कितना सुन्दर प्रसंग आया है! पार्वतीजी ने दूसरे जन्म में शिवजी से रामकथा के बारे में पूछा तो शिवजी गद्‌गद् हो गए– *पूँछेहू रघुपति कथा प्रसंगा, सकल लोक जग पावनि गंगा।* हे पार्वती, रामजी की कथा जो तुम मुझ से पूछ रही हो, वह सारे संसार को पवित्र करने वाली पावनी गंगा है। इसके लिए मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूँ। पूरा रामचरितमानस तुलसीदासजी ने शिवजी के मुख से कहलवाया। लिखा तुलसीदासजी ने, मगर कहा किसने? भगवान शिव ने। और किससे कहा? माता पार्वती से, जिन्हें पूर्वजन्म में रामजी के अवतार होने पर सन्देह हो गया था। उस सन्देह के परिणाम स्वरूप उन्होंने अपना शरीर दाह किया था। फिर पार्वती के रूप में उन्होंने जन्म लिया। तब

जाकर वे कहती हैं कि भगवन्, मेरे सब संशय नष्ट हो गए हैं, अब आप रामजी की कथा पूरी की पूरी सुना दीजिए।

जब तुलसीदास जैसे योगी महापुरुष समाधि अवस्था में रहते हैं, तब वे जो कुछ भी लिखते या कहते हैं, वह मंत्र है। यह कोई जरूरी नहीं कि समाधि में आँखें बन्द हों। जैसे आदमी शराब या भांग पीकर भी बोल सकता है, वैसे ही समाधि की अवस्था में भी सब कर्म किए जा सकते हैं। उन्होंने समाधि की अवस्था में लिखा और हिन्दी भाषा में लिखा। वे तो संस्कृत के धुरन्धर विद्वान् थे, संस्कृत में गद्य-पद्य लिखते थे। जब शाम को संस्कृत में लिखते तो सबेरे सब कुछ गायब हो जाता था। तब उन्हें भगवान का आदेश हुआ कि अपनी भाषा याने अवधी भाषा में लिखो।

हम अपने को बहुत बड़ा तो नहीं कहते, मगर हमने अध्ययन बहुत किया है। पूरे अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन किया है, सारा बौद्ध साहित्य पढ़ा है, शंकराचार्य और रामानुजम् का वेदान्त साहित्य पढ़ा है, फूहड़ साहित्य तक पूरा पढ़ा है। अन्त में हम रामचरितमानस में अटक गए हैं और इसे रोज पढ़ते हैं। कभी-कभी तो एक ही बार बैठकर शुरू से लेकर अंत तक पढ़ा है। रात को 12 बजे शुरू करते हैं और दूसरे दिन शाम को 4 बजे खत्म करते हैं। हमें यह पढ़ने में बहुत अच्छा लगता है। अनेकों सुंदर-सुंदर प्रसंग हैं। अर्थ समझने की क्या जरूरत है। राम कथा तो सब जानते हैं। पढ़ते समय उसमें जो लहर है, जो विद्युत शक्ति है, जो स्वाभाविकता है, जो गहरी भावना है, जो एक प्रभाव है, वह तुम और कहीं नहीं पाओगे। रोज पन्द्रह मिनट पढ़ो, एक दिन ऐसा मजा आएगा कि सब भूल जाओगे।

आपके अंदर इतना ज्ञान है, इतने विषयों पर आप चर्चा करते हैं। आपको कभी ऐसा नहीं लगता जैसे दिमाग में सब नसें तनी हुई हैं?

नहीं, मुझे माता-पिता और गुरुजनों का आशीर्वाद है। थोड़ा मैंने खोया जरूर है, मगर यह मेरे माता-पिता की कृपा का परिणाम है। मेरी फोटोग्राफिक स्मृति थी। जो भी किताब पढ़ता था, वह आँख बन्द करके पूरी दिखाई देती थी। मैं स्कूल में केवल कक्षा में पढ़ता था, घर में कभी पढ़ता ही नहीं था। मैं तो जमींदार का बेटा था। खेती करता था, जंगल देखता था, जमीन-जायदाद देखता था, गाय-बैल देखता था, नौकर-चाकर देखता था। मुझे ही सब काम करना पड़ता था। हमारी डेढ़ हजार एकड़ जमीन थी, डेढ़

हजार एकड़ जंगल थे, 40-50 घोड़े थे, 20-25 खच्चर थे, 200-300 भेड़-बकरियाँ थीं, 50 नौकर थे, सब मुझे ही देखना पड़ता था। मेरे पास पढ़ने का समय ही कहाँ था?

दूसरी चीज मुझे बीमारी का, रोग का कोई अनुभव नहीं है। मैंने कब्ज, मधुमेह, दमा, गठिया और उच्च रक्तचाप जैसे रोगों पर बहुत-सी किताबें लिखी हैं और कहो तो मैं घण्टों बोल भी सकता हूँ। मगर मुझे बीमारी का कोई अनुभव नहीं है। मैं नहीं जानता कि कब्ज क्या चीज़ होती है, मगर बता सकता हूँ कि शंख प्रक्षालन करो, ठीक हो जाओगे। यह मेरे ऊपर बहुत बड़ी कृपा है। और फोटोग्राफिक स्मृति है। यह माता-पिता की देन है, जैनेटिक हस्तान्तरण है। मेरा जैनेटिक हस्तान्तरण बहुत बढ़िया हुआ है।

यह आपका प्रारब्ध रहा होगा, या फिर पूर्व जन्म का कमाया हुआ संस्कार होगा।

नहीं, नहीं। जब मैं पैदा हुआ था, तब ज्योतिषी ने मेरी जन्म-कुण्डली बनाई और जन्म-कुण्डली बनाने के बाद उन्होंने कहा कि यह लड़का लोफर होगा, कंगाल रहेगा, कुलनाशी होगा। मेरे जन्म-कुण्डली में सूर्य शनि के घर में है। जिस व्यक्ति का सूर्य शनि के घर में है, तुम उसका अन्दाज लगा सकते हो? घर में पैसा होते हुए भी कंगाल, वही था मेरा हाल। पैसा गिनना भी मुझे नहीं आता।

कहते हैं कंगाल और मालामाल मे कोई फर्क नहीं। जिसको कछु न चाहिए, सोई शाहंशाह।

नहीं, ऐसी बात नहीं है। लोफर का मतलब होता है, जो घूमता रहता है। कंगाल का मतलब, जिसके पास पैसा नहीं। कुलनाशक का मतलब, जिसे बेटा-बेटी नहीं। तीनों अपनी जगह सही हैं, किन्तु एक चीज का फर्क है। गुरुजी का स्पर्श हो गया, मंत्र मिल गया और गुरुजी ने सारी व्याख्या बदल दी। लोफर का मतलब हो गया परिव्राजक, कुलनाशी का मतलब अविवाहित संन्यासी, जिसके भरपूर शिष्य हों और कंगाल का मतलब होता है अपरिग्रही। केवल गुरु के स्पर्श से व्याख्या बदल गई। नहीं तो जिस आदमी का सूर्य शनि की राशि में है, वह घर में पैसा होते हुए भी 'धोबिया जल बिच मरत पियासा' जैसा है।

क्या प्रारब्ध से गुरु मिला?

नहीं, प्रारब्ध से गुरु नहीं मिलते। गुरु ईश्वर की कृपा से ही मिलते हैं, 'राम कृपा बिन सुलभ न सोई।' गुरु को पाना और गुरु को पहचानना बहुत कठिन है। किसी कुंजड़िनी से कहो, जौहरी की दुकान से हीरा ले आओ तो वह कैसे लाएगी, उसे तो हीरे की पहचान ही नहीं है। दूसरों से पूछेगी कि भाई, यह हीरा है या नहीं। तुम्हें अगर हीरे की पहचान होगी, तो कहोगे कि हाँ यह हीरा है। और अगर हीरे की पहचान नहीं होगी तो कहोगे कि लगता तो ऐसा ही है। गुरु हीरे के समान है, जीवन का एक बहुत बड़ा तत्त्व है। हम लोगों के लगभग सभी प्रांतों और सम्प्रदायों में गुरु बनाना पड़ता है। मध्य प्रदेश में बिना गुरु बनाए रसोईघर में नहीं आने देते हैं। मध्य प्रदेश का यह रिवाज है, बहू जब तक दीक्षा नहीं लेती, उसे रसोईघर में नहीं घुसने देते।

हर शिक्षक गुरु नहीं होता। जो ज्ञान चक्षु खोलकर जीवन से अन्धकार को दूर करे, उसे गुरु कहते हैं। ऐसा गुरु कितनों को मिला है? विवेकानन्दजी को मिला, उनका जीवन सफल हो गया। मगर वह प्रारब्ध की वजह से नहीं। अगर बियावान जंगल में भटकते किसी आदमी को फॉरेस्ट रेंजर मिल जाए और वह उसे जंगल के बाहर तक पहुँचा दे, तो इसे तुम प्रारब्ध कैसे कहोगे? यह प्रारब्ध नहीं है, ईश्वर की कृपा से फॉरेस्ट रेंजर वहाँ पहुँचा जिसने जंगल से बाहर जाने का रास्ता बता दिया।

आपके जीवन की सबसे सुखद घटना यही रही होगी जब आपको गुरु के दर्शन हुए?

हाँ। वैसे मेरा बचपन में संन्यास संस्कार नहीं था, एकदम नहीं। पक्का घर-गृहस्थी का संस्कार था। छोटी उम्र से जमीन-जायदाद को देखना शुरू किया। अल्मोड़ा में पढ़ते थे, पाँच-छः मील दूर गाँव था। शनिवार को हम गाँव जाते थे, खेत वगैरह देखते थे, फिर सोमवार को अल्मोड़ा वापस आते थे पढ़ने के लिए। बाद में मॉनीटर भी बन गए, क्योंकि मॉनिटर को अलमारी भी मिल जाती थी। अपनी किताबें वहीं रखते थे, ले जाने की जरूरत नहीं पड़ती थी। घर पर किताबें कभी नहीं ले जाते थे। हमारा घर आर्य समाजी था और स्वामी दयानन्दजी एवं गाँधीजी के विचारों से पूरा भरा हुआ था। किताबें तो मैंने काफी पढ़ीं, मगर यह संन्यास का सिद्धान्त समझ में नहीं आता था।

फिर मैं जूना अखाड़े की एक तांत्रिक योगिनी, सुखमन गिरि के फन्दे में फँस गया। वह मेरे से 18 साल बड़ी थी। महाकद्दू-सी मोटी, बैंगन-सी काली और दुर्गन्ध की परम सीमा। उसको देखने से जुगुप्सा होती थी। स्त्री को देखने से जुगुप्सा तो नहीं होनी चाहिए, पर उसे देखने का मन नहीं करता था। सब चीजें नकारात्मक ही नकारात्मक थीं। पर उसमें एक गुण था जो मेरी पकड़ में आ गया। यह नैनीताल की बात कह रहा हूँ। वह चक्रों पर, मंत्रों पर, ज्ञान की सप्त भूमिकाओं पर धाराप्रवाह बोलती थी। मैं तो चकित रह गया कि देखने में तो यह फूहड़, बदसूरत और गँवार औरत है, सड़कछाप गाली देती है, माँ-बाप, भाई-बहन किसी को नहीं छोड़ती और रात को बोतल चढ़ाती है, माँस खाती है, ऐसे व्यक्ति को कोई स्वीकार करेगा क्या? मैं पहले दिन गया, फिर दूसरे दिन गया, फिर तीसरे दिन गया। मुझे कुण्डलिनी जागरण वगैरह सब स्पष्ट होने लगा। वह जितना बताती, मैं ध्यान से सुनता। एक दिन मैंने उससे कहा, 'हमें सिखाओगी?' उसने कहा, 'तैयारी करो।' मेरे पास तो बहुत बड़ी जमीन-जायदाद थी। मैंने एक गुफा तैयार कर दी। छुट्टियों में वहाँ जाता था और उससे सीखता था। छः महीने में करीब 40-50 पाठ दिये होंगे उसने। 18 साल की उम्र में उसने शक्तिपात कर दिया। वह इसे शक्तिपात नहीं, अनुग्रह कहती थी। मुझे वैसा ही अनुभव हुआ जैसा अर्जुन को गीता के ग्यारहवें अध्याय में हुआ था। सब अजीब-अजीब चीजें दिखायी दीं।

क्या स्पर्श करके अनुभव कराया?

अरे भाई, बहुत सी चीजें होती हैं जो बताई नहीं जाती हैं। यह तो धारणा की चीज है। उसके बाद मैंने उससे कहा कि मुझे चेला बनाइये। उसने कहा कि चेला-वेला हम नहीं बनाते। हमने तुमको बस एक झलक दिखला दी है। यह अनुभव हमने तुमको कराया है। तुम्हारे पास वह ताकत नहीं कि तुम यह अनुभव खुद पा सको। तुम जाओ, गुरु खोजो। फिर गुरु कृपा प्राप्त करके इस रास्ते पर आओ, और अपने आप अनुभव प्राप्त करो, अभी नहीं। गुरुजी की खोज में निकले तो संन्यास में फँस गये। नहीं तो बचपन में संन्यास के बारे में जरा भी विचार नहीं था।

दूसरा, विदेश जाने का भी बिल्कुल ख्याल नहीं था। मैं बम्बई से टाटा कम्पनी के चार सीटर हवाई जहाज में उड़ान भर रहा था। द्वारिका के पास फैक्टरी है, टाटा केमिकल्स, उसी का उद्घाटन करने जा रहा था। मैं सामने

बैठा था, पॉयलेट के बगल में। उसने पूछा कि आप कहाँ के रहने वाले हैं। फिर पूछा कि आपका पुराना नाम क्या था। मैंने नाम बताया। तब पता चला कि हम दोनों लखनऊ के फ्लाइंग क्लब में साथ-साथ थे। उसने मुझसे कहा कि अब स्टीयरिंग अपने हाथ में ले लो। मैंने कहा, भाई बीस साल से मैंने स्टीयरिंग को छुआ भी नहीं है। पर उसने स्टीयरिंग छोड़ दिया और मुझसे कहा कि अब आप चलाइये। जैसे ही स्टीयरिंग पर हाथ रखा, मुझे विदेश का पूरा चित्र दिखायी दिया। एकदम स्पष्ट, जैसा टीवी में दिखता है। फैक्टरी का उद्‌घाटन किया, फिर वहाँ से सोमनाथ मन्दिर जाकर दर्शन किया। शाम को बम्बई लौट आये। अपने मेजबान से कहा कि पासपोर्ट बनाओ। उसने दूसरी दिन ही पासपोर्ट बनवाकर मुझे दे दिया। चौबीस घण्टे के भीतर। मैं मुंगेर आया, वहाँ कहा, मेरा सब सामान बाँधो। सबको चिट्‌ठी लिख दी कि मैं आ रहा हूँ। दस दिन के अंदर भारत छोड़ दिया। कहने का मतलब यह कि बहुत-सी चीजें ऐसी होती हैं कि आदमी सोचता नहीं है, मगर हो जाती हैं। संन्यास के बारे में नहीं सोचा, पर हो गया। बाहर जाने का नहीं सोचा, पर चला गया। और इस जीवन को आगे बढ़ाने के लिए 40-50 साल से सोच रहा हूँ, इसकी प्रतीक्षा में हूँ।

प्राचीन काल में रोशनी का क्या प्रबन्ध होता था?

उन दिनों में हीरे, मोती, जवाहरात होते थे, दूसरे प्रकार का प्रबन्ध होता था। तुम शायद जानते हो कि जब भगवान कृष्ण ने द्वारिका बसायी तो वहाँ की सीढ़ियों में मणि-माणिक्य जड़े हुए थे। वे प्रकाशवान् थे। हर युग का अलग-अलग विज्ञान होता है, जीने का अलग-अलग ढंग होता है। आदि शंकराचार्य कई शताब्दियों पहले केरल से बद्रीनाथ आए, फिर माँ का अन्तिम संस्कार करने वापस केरल गए। फिर वहाँ से सारे भारत का दिग्विजय किया। पुरी, द्वारिका, जोशीमठ और श्रृंगेरी में मठों की स्थापना की। क्या पन्द्रह-सोलह साल में एक आदमी इतना पैदल चल सकता है? कोई तो चीज होगी। भारत के लोगों के पास अपनी एक अलग क्षमता थी, और अभी भी है। केवल भारत की बात कह रहे हैं, दुनिया की नहीं।

भारत की क्षमता उद्योग-धन्धे की नहीं है। उद्योग-धन्धा तो व्यापार का साधन है। व्यापारी राष्ट्र में भ्रष्टाचार होता है, गलत परम्पराएँ रहती हैं, कुकर्म होते हैं। भारत की संस्कृति कृषि और पशुपालन पर आधारित है। साथ में

छोटे-मोटे व्यापार रहे हैं जिसे बनियागिरी कहते हैं। यहाँ की यही सनातन संस्कृति रही है। जब से अंग्रेज आए, तब से उन्होंने इस सनातन संस्कृति को उपेक्षित बना दिया। इसलिए भारत गरीब है, कंगाल है। इसलिए भारत पर कष्ट आ रहे हैं। इसलिए भारत में भ्रष्टाचार है। सब इसी वजह से है। जब देश कृषि और गोपालन में जाएगा, तब भ्रष्टाचार नहीं रहेगा। भ्रष्टाचार वहीं रहता है जहाँ पैसा नदी की तरह बहता है। वहीं लूट होती है। थोड़ी-सी धार के पानी को कोई कभी लूटता है क्या?

भारत के लोगों को, भारत की सरकार को केवल भारत के गाँवों और किसानों के लिए कार्य करना चाहिए। आज भारत की सरकार सिर्फ उद्योगपतियों और बड़े व्यवसायों के लिए कार्य कर रही है। मैं किसी राजनैतिक दृष्टि से यह नहीं कह रहा हूँ, बल्कि एक विचारक, एक संन्यासी के रूप में कह रहा हूँ। भारत की प्रगति, पवित्रता और सादगी का आधार गाँव है। यहाँ आमदनी भी अच्छी हो सकती है। अगर गाँववाला कमाना चाहे, अगर सरकार मदद करे, ठीक से पानी दे, तो यहाँ की आमदनी बहुत हो सकती है। हमारी गाय रोज 15 लीटर दूध देती है। 3-4 गाय हों तो 40-50 लीटर दूध, माने 500 रुपया रोज का। नौकर-चाकर, घास, वगैरह का खर्चा निकालकर भी 300 रुपया तो बचा, तो महीने में नौ हजार हो गया। दो महीने में गाय का दाम वापस। हम लोगों के यहाँ कहावत है– *उत्तम खेती मध्यम बाँन, निषिध चाकरी भीख निदान।* असली चीज यही है। मगर आज इस देश में खेती उत्तम नहीं है।

यह देश किसानों का है, मजदूरों का है, गोपालन करने वालों का है, छोटे दुकानदारों का है। यह मान कर चलो। और सरकार की सारी नीतियाँ इसी आधार पर होनी चाहिए। शिक्षा का आधार होना चाहिए, गाँव की आवश्यकता, स्वावलम्बी गाँव। अकबर-औरंगजेब पढ़ाकर तुम क्या करोगे? मैंने तो पढ़ा है, कुछ काम नहीं आया मेरे। मुझे तो बस जोड़ना-घटाना काम में आया। अकबर कब मरा, औरंगजेब कब पैदा हुआ, नादिरशाह कब आया, यह तो उनके लिए है जो 80 प्रतिशत से ऊपर अंक लेते हैं। हम लोग तो छँट जाने वाले लोगों में आते हैं। ग्रामीण शिक्षा अलग होनी चाहिए। अरे भाई, लड़की जब ससुराल जाती है, तब उसका पति क्या यही पूछेगा कि औरंगजेब का बाप कौन था? सास क्या पूछेगी? वह तो यही पूछेगी कि खाना बनाना जानती है या नहीं, सिलाई-बुनाई जानती है या नहीं, सोना-चाँदी की परख है या नहीं, गाय रखना जानती है या नहीं, दूध दुहना जानती है या नहीं,

प्राथमिक उपचार जानती है या नहीं। जो चीज गाँव के लिए जरूरी है, वह बुनियादी शिक्षा है। उतना ही लड़की को सिखाना चाहिए। और लड़कों को 6-7 साल के बाद वोकेशनल स्कूल में डाल देना चाहिए। नहीं तो सब शहरों की ओर चले जाते हैं, गाँव में सिर्फ लूले-लंगड़े रह जाते हैं। शहरों में उनके लिए पानी का इन्तजाम करो तो बिजली का इन्तजाम करो। सारा पैसा वहीं खर्च होता है। इसलिए मैं यह चीज बार-बार कहता हूँ कि जितनी ज्यादा शिक्षा दोगे, उतनी ज्यादा बेकारी बढ़ेगी।

मानो या न मानो, पर बेरोजगारी का एक कारण अधिक शिक्षा है, और अधिक जनसंख्या का एक कारण परिवार नियोजन है। परिवार नियोजन से परिवार घटता नहीं है। परिवार को घटाने का एक ही साधन है–शिक्षा। शिक्षा परिवार नियोजन की कुंजी है। यह सब जो टीवी पर बताते हैं कि गर्भनिरोधक गोली ले लो, यह कर लो, वह कर लो, इससे कुछ नहीं होता। परिवार नियोजन अभियान से आज तक क्या हुआ? 99 करोड़ तो हो ही गये हम। और अगर हम सब संन्यासी शादी कर लें तो इसी साल एक अरब हो जाएँगे। अगले साल के लिए भी रुकने की जरूरत नहीं है।

भारत की संस्कृति आदिकाल से लेकर आज तक बड़ी स्वतंत्र रही है। वह जानती है कि अगर स्वतंत्र नहीं रहेंगे तो भ्रष्टाचार बढ़ेगा। जिस तरह से अभी हम चल रहे हैं, अगर ऐसा ही चलता रहा तो इक्कीसवीं शताब्दी में एक और गाँधी को आना पड़ेगा, क्योंकि हम लोग स्वतंत्र नहीं रह सकेंगे। बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ हो जाएँगी, बड़े-बड़े कारखाने हो जाएँगे। हम स्वतंत्र नहीं रह सकेंगे, क्योंकि ये गोरी जात के बनिये बड़े ही संगदिल और निष्ठुर होते हैं। उनके लिए व्यवसाय एक तरफ और भावना दूसरी तरफ, वे लोग इस प्रकार के हैं। मैं तो उनके बीच रहा हूँ, अच्छी तरह से जानता हूँ। उनके लिए माँ-बाप, भाई-बहन सब एक तरफ और पैसा दूसरी तरफ। उनकी चपेट में आ गये तो इक्कीसवीं शताब्दी में फिर 'इंकलाब जिन्दाबाद' करना पड़ेगा।

हम कहीं तो गलती कर रहे हैं। आप पढ़े-लिखे लोग हो, आप सहमत नहीं हो क्या? अंग्रेज लोगों ने सीधे हिन्दुस्तान पर हमला नहीं किया। पहले ईस्ट इण्डिया कम्पनी आयी। अकबर के समय से वे लोग जोर लगा रहे थे। मगर शाहजहाँ के समय जब उसकी बेटी बीमार पड़ी, तब से उन्हें तिजारत की इजाजत मिली। आखिर में पूरी सरकार उनके हाथों में चली गयी, क्योंकि यह जो गोरी जात है, वह बनियों की जात है। वे अपनी बीवी से कहते हैं कि

मैं व्यापार के लिए अमेरिका जा रहा हूँ, तुम्हें मेरे साथ आना है। वह कहती है कि मैं तो नहीं चल सकती। तो कहते हैं कि ठीक है, हम तलाक ले लेते हैं। तुम यहाँ रहो, मैं जा रहा हूँ। उनके सामने बीवी, बेटी, भाई, कोई भी रिश्ता महत्त्वपूर्ण नहीं है। केवल व्यापार और पैसा मायने रखता है। व्यापार उनका शौक है, नशा है, पागलपन है। वह मरी हुई संस्कृति है, अनादि संस्कृति नहीं है। तभी तो कहते हैं न कि पूर्व, पूर्व है, और पश्चिम पश्चिम, दोनों कभी नहीं मिल सकते।

हम लोग बनिया मानसिकता वाले नहीं हैं। यह तो ऋषि-मुनियों की संस्कृति है। पराशर, जमदग्नि, कश्यप जैसे ऋषियों की सन्तान हैं हम लोग। हम उनके खून से पैदा हुए हैं। हमें तो बस छोटा-सा घर चाहिए, थोड़ा रोटी-दाल चाहिए, तन को ढकने के लिए थोड़ा कपड़ा चाहिए, बस, काफी है। अब लम्बा-चौड़ा प्रपंच क्यों? यहाँ स्विस बैंक में पैसा रखो, तो ऑस्ट्रिया में एक मकान है, जर्मनी में दूसरा मकान है, बीवी यहाँ, तो बेटा कहाँ, यह सब हमारी संस्कृति नहीं है।

आप लोग इन बातों पर विचार जरूर कीजिए। इस विषय पर चर्चा होनी चाहिए कि आखिर हमें क्या चाहिए। जितनी मदद व्यापारियों को दे रहे हैं, अगर उतनी मदद एक किसान को मिले, तो वह अच्छा पैसा कमा सकता है, कम खर्च में रह सकता है और सदाचारी जीवन बिता सकता है। औरत पवित्र, आदमी पवित्र, बेटा पवित्र, बेटी पवित्र।

गाँव के लिए यह बहुत जरूरी है कि पढ़े-लिखे लोग यहाँ आकर काम करें। शहर से पाँच-दस लाख रुपये कमाकर गाँव आ जाओ, पाँच एकड़ जमीन ले लो, ट्यूबवेल रखो, नौकर-चाकर रखो, चार-पाँच गाय रखो। हम तो यहाँ सब गाँव वालों से कहते हैं कि गाय से ही हम लाख रुपया साल का कमा लेंगे। हमारी अपनी गोशाला है जहाँ हम गाय रखते हैं। हम 3-4 गाय लेते हैं, गाँव से 3-4 आदमी चुनते हैं, उन्हें एक महीने का प्रशिक्षण देते हैं। उनके घर से सुबह-शाम औरतें आती हैं, दूध निकालती हैं, सफाई करती हैं। उन्हें सब कुछ सिखाते हैं। और एक महीने बाद वे गाय ले जाते हैं, और उन्हें साल भर का चारा दे दिया जाता है। यह यहाँ का रिवाज है।

मजे की बात यह है कि पहले मैं दूध नहीं पीता था। मैं दूध-दही वाला आदमी नहीं हूँ। जब मैं पैदा हुआ तो मेरे माता-पिता ने शराब और मधु चखाया, तलवार का स्पर्श कराया। शाम को जब मैं सोता था तो ब्रांडी पिलायी

जाती थी। हम लोगों का कोई दिन माँस बिना नहीं चलता था। तो हम दूध पीकर क्या करेंगे? बचपन से दूध पिया ही नहीं है कभी, माँ का पिया, सो पिया।



हम कुमाऊँ के हैं, हमारी माँ नेपाल की थीं। नेपाल, गढ़वाल, कुमाऊँ, इन तीनों के यहाँ हम लोगों का रिश्ता होता है। हम लोगों के यहाँ देवी की बहुत पूजा होती है। जब पूजा होती है, तो भैंसे-बकरे कटते हैं। इतने कटते हैं कि किसी के घर में सब्जी-भात वगैरह नहीं लेते। किसी के यहाँ गर्दन, किसी के यहाँ सिर, किसी के यहाँ कुछ और बँट जाता है। यह प्रथा प्राचीन काल से चली आ रही है। यज्ञ और बलि की यह जो प्रथा है, यह केवल हिन्दु धर्म में ही नहीं, ईसाइयों, यहूदियों और मुसलमानों के यहाँ भी है। यह बलि प्रथा सारी दुनिया में अभी भी चलती है, और बड़े जोर से चलती है। बौद्धों ने इसका विरोध किया तो सरकार ने कई कानूनों से बलि प्रथा को बन्द करवाया। तब लोगों ने कहा कि सरकार सार्वजनिक रूप से नहीं काटने देगी तो निजी रूप से काटेंगे।

पहले यह प्रथा सार्वजनिक थी। एक जगह दो-तीन सौ बकरे कटते थे। जब भगवान बुद्ध ने हजारों पशुओं की बलि को देखा, तो उनका हृदय पिघल गया। तब उन्होंने श्रुति की निन्दा की, इस बलि प्रथा की निन्दा की।

निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातम्। सदयहृदयदर्शितपशुघातम् ॥

फिर बौद्ध विचारधारा के जोर से धीरे-धीरे यह कानून बना कि सार्वजनिक बलि बंद। यद्यपि वेदों में इसे स्वीकार किया गया है। वेदों में बलि प्रथा पर एक स्पष्ट अध्याय है। प्राचीन काल में जब ब्राह्मण भोज होता था, तो आमिष भोजन ही होता था। खैर, इसका मतलब यह नहीं कि हम किसी को कह रहें हैं कि वैसा भोजन करो। यह तो सामान्य जानकारी की बात हो रही है।

अभी भी तो उड़ीसा और कुछ प्रान्तों में श्राद्ध के समय ब्राह्मण को मछली का भोजन खिलाते हैं न?

हाँ, यहाँ बिहार में भी कई जगह ब्राह्मण को मछली खिलाते हैं। खैर ये सब चीजें सामाजिक हैं। इनसे अध्यात्म का कोई सम्बम्ध नहीं जोड़ना चाहिए। इस देश में अनेक सभ्यताएँ, जातियाँ और कबीले आकर मिल गये हैं। सच पूछो तो हम लोग जो एक अखण्ड राष्ट्र हैं, वह हम लोगों के लिए एक बहुत बड़ी सुविधा है। नहीं तो यूरोप की तरह छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटे रहते। हम लोगों का विनिमय दर, जिसे अंग्रेजी में एक्सचेंज रेट मेकेनिज्म या ई.आर.एम. कहते हैं, वह हल हो गया है। इसी ई.आर.एम. को हल करने के लिए यूरोपीय राष्ट्र पिछले कई वर्षों से कोशिश कर रहे हैं। पर वे लोग अभी भी सांझा मुद्रा नहीं बना पाए हैं, क्योंकि उनका ई.आर.एम. ठीक नहीं है। जो चीज फ्राँस में जितने में मिलती है, लन्दन में उससे कुछ भी नहीं मिल पाता। हमें दिक्कत नहीं होती क्योंकि हम एक राष्ट्र हैं। ई.आर.एम. को अस्थिरता से बचाने के लिए राष्ट्र का एक होना जरूरी है।

हमारी कितनी ही भाषाएँ हों, कितने ही रीति-रिवाज हों, पर फिर भी एक स्तर पर हम लोगों की संस्कृति समान है। आदमियों की धोती और औरतों का लाल टीका सब जगह समान है। केवल हिन्दुस्तान में औरतें सिन्दूर लगाती हैं, भारत के बाहर कहीं नहीं लगातीं। उत्तर भारत के लोग पूजा में नारियल और सुपारी चढ़ाते हैं, जबकि उत्तर भारत में नारियल या सुपारी कहीं नहीं होता। कुमाऊँ में तो केला तक नहीं होता। पर फिर भी पूजा में *'कदलीफलं समर्पयामि, नारीकेलं समर्पयामि, पूगीफलं समर्पयामि'* किया जाता है। यह एक बात हुई। दूसरी बात, दक्षिण भारत में जिस व्यक्ति को भी संन्यास लेना होता है, वह उत्तर भारत आता है। मगर उत्तर भारत में यदि किसी व्यक्ति को संन्यास लेना हो तो वह दक्षिण भारत नहीं जाता। परम्परा के बारे में बता रहा हूँ कि किस तरह सिद्ध करके रखी है। बंगाल के आदमी को तीर्थ करना हो तो कहाँ जाएगा? बनारस, इलाहाबाद, हरिद्वार, गंगोत्री, यमुनोत्री, बद्री या केदार जाएगा। इस तरह से सब व्यवस्थित करके रखा है। एक राष्ट्र का होना बहुत आवश्यक है। हम सब लोगों के अलग-अलग होने पर भी बहुत-सी चीजें समान हैं। ॐ मंत्र उत्तर से लेकर दक्षिण तक समान है। अगर तुम गौर करोगे तो पाओगे कि हजारों बातें समान हैं।

– 17 अक्टूबर, 1997



अध्याय 8

संन्यास सम्प्रदाय

हमारे यहाँ जो वैष्णव हैं, वे प्राय: विवाहित रहते हैं। कनफटे योगी भी विवाहित होते हैं। संन्यासियों में जो विवाह कर लेते हैं, वे संन्यासी नहीं रह सकते। वे बहिष्कृत हो जाते हैं। उनको गोसाईं कहकर अलग कर देते हैं। गोसाईं ऊपर सफेद कपड़ा पहनें, बाल बाँध दें, खेती वगैरह कर बाल-बच्चों की देखभाल करें। फिर वे स्वामी नहीं रह सकते, उनके नाम के पीछे गोसाईं लग जाता है। यह सामान्य प्रथा है, क्योंकि जो कम उम्र में संन्यास ले लेते हैं, बहुतों का शादी-ब्याह का मन करता होगा चौबीस-पच्चीस साल की उम्र में। अगर एक बार अनुमति दे दें, तो लगभग सभी शादी कर लेंगे। पहले के जमाने में तो 60-65 साल के बाद संन्यास लेते थे, तो शादी का सवाल ही नहीं उठता था। संन्यासी को शादी नहीं करनी चाहिये, यह जो सिद्धान्त बना है, यह संन्यास के आश्रम धर्म से बना है, वह भी अब नयी पीढ़ी में जारी किया है, क्योंकि यदि एक बार शिथिल हो जायेंगे तो बहुत मुश्किल हो जायेगी। संन्यासी होकर कोई मठ-मन्दिर बना ले, फिर शादी करके सारी सम्पत्ति लेकर भाग जाए, तो यह सार्वजनिक सम्पत्ति का दुरुपयोग हो जायेगा।

मगर वैष्णवों में प्राय: शादी की अनुमति है। वे शादी करते हैं, और उन लोगों की जो सम्पत्ति रहती है, वह व्यक्तिगत रहती है। जैसे प्रभुपाद भक्ति वेदान्त इतना बड़ा साम्राज्य स्थापित करके गये। उनकी जितनी सम्पत्ति थी, उनके नाम पर थी। वैष्णवों में ऐसा होता है। उदासीन सम्प्रदायों में यह नहीं होता और संन्यास सम्प्रदाय में तो होने का प्रश्न ही नहीं होता। सिक्खों में

भी नहीं होता, जैनों में भी नहीं होता। एक बार संन्यस्त हो गये तो सम्पत्ति सार्वजनिक हो जाती है, निजी नहीं रहती। वैष्णवों में निजी होती है, क्योंकि जिस समय वैष्णव समाज उत्पन्न हुआ, उस समय वैष्णव लोगों के लिये शादी करना जरूरी हो गया था। यह बौद्ध काल की बात है। बौद्ध काल में बौद्ध संन्यासी लोग गड़बड़ करने लगे थे। तो जनता उखड़ी हुई थी। तब वैष्णवों ने सोचा कि जनता हमसे भी उखड़ेगी, इससे अच्छा है शादी कर लो। तब कोई बोलने वाला नहीं रहेगा। उस समय वैष्णव लोगों ने शादी करना शुरू कर दिया। उनके यहाँ अविवाहित रहने का भी कोई विधान नहीं है। वैष्णव लोग जनेऊ रखते हैं, चुटिया रखते हैं तो स्वाभाविक रूप से गृहस्थ तो हैं ही।

गाँवों में ऐसे बहुत-से मठ-मन्दिर होते हैं। मुंगेर जिले में लक्खीसराय के पास बड़हिया है, वहाँ बहुत बड़ा मन्दिर है। मुंगेर में जो गोसाईं लोग रहते हैं, वे कबीरपंथी हैं। जितने भी कबीरपंथी साधु हैं, उनका मठ रहता है, दस-बीस बीघा जमीन रहती है। वहाँ उनका एक छोटा मन्दिर रहता है, जहाँ वे पूजा करते हैं। एक छोटी गोशाला होती है, आयुर्वेदिक फार्मेसी रहती है, वहाँ वे गाँव के लोगों के लिये दवाई वगैरह रखते हैं। यह सब जगह है।

हिन्दुस्तान में तो साधु मचानों पर रहे हैं, गुफाओं में रहे हैं। पर संन्यासी को संन्यास आश्रम में इसकी अनुमति नहीं है। क्षेत्र संन्यास में अनुमति है। संन्यास के बाद एक संन्यास और भी होता है, वही है हमारा क्षेत्र संन्यास। हमने संन्यास को भी छोड़ दिया है, हम परमस्वतन्त्र हैं। गेरू पहनें या न पहनें, काला पहनें, लाल पहने, कुछ भी पहनें। हम संन्यास के नियमों से बंधे नहीं हैं। यह खाओ, वह मत खाओ, यह करो, वह मत करो, ये सब नियम अब हम पर लागू नहीं हैं। नहीं तो संन्यास में लोग आश्रमों और मठों में रहते हैं। संस्कृत तो प्राय: सब जगह सिखाते हैं संन्यासियों को। यह संन्यासियों के लिये अनिवार्य है। गोशाला, शिव जी का मन्दिर, आदि हर संन्यासी के आश्रम में रहता है।

हमारे यहाँ मुख्यत: तीन सम्प्रदाय हैं–शाक्त, वैष्णव और शैव। और चौथा है उदासीन। उदासीन सम्प्रदाय चार-पाँच सौ साल पहले गुरुनानक के पुत्र श्रीचन्द्र ने शुरू किया था। श्रीचन्द्र बहुत भाव वाले थे, दत्तात्रेय की तरह रहते थे। उन्होंने उदासीन सम्प्रदाय शुरू किया। संन्यास सम्प्रदाय में संन्यासियों के अलग-अलग दस अखाड़े होते हैं, जैसे निरंजनी अखाड़ा,

जूना अखाड़ा, निर्वाणी अखाड़ा, महानिर्वाणी अखाड़ा, अग्नि अखाड़ा, आदि। वैष्णवों के लिए भी अखाड़े होते हैं और उदासीन लोगों के लिऐ भी अखाड़े होते हैं।

ये जितने अखाड़े थे ये सब मुसलमानों के युग में विरोधी गुट थे। मुसलमानों के आने के बाद राजा-महाराजा उनके तौर-तरीके अपना रहे थे। मुसलमानों में बहुविवाह को स्वीकारा जाता है। तो राजाओं को सुविधा हो गई, खूब खाओ-पियो, मुर्गी-पाठा खाओ, यह करो, वह करो। जब वे बिगड़ने लगे तब कई जगह से विरोध हुआ। एक तो भक्ति आंदोलन के लोग आये, जैसे, सूरदास, तुलसीदास, केशवदास, चरणदास, मीराबाई, चैतन्य महाप्रभु, आदि। और दूसरा, संन्यासियों ने अखाड़े स्थापित किये, जिनमें सबसे प्रमुख अखाड़ा रहा जूना अखाड़ा। जूना अखाड़ा ने अवधूतों को तैयार किया। अवधूत माने जो नंगे रहते हैं। ठण्ढी, गर्मी, बुखार, दर्द, कैसा भी हो चलेगा, उन पर कोई असर नहीं पड़ता। उनकी प्रतिरोधक क्षमता बहुत उच्च कोटि की होती है। वे गाँव-गाँव जाकर लोगों को सम्भालते थे ताकि वे मुसलमान न बन जायें। अखाड़े का मतलब लड़ाई करने वाले नहीं, बल्कि एक ऐसा प्रतिरोधी समूह जिसका मकसद हर जगह पहुँचना और लोगों को समझाना था। संन्यासी गाँव-गाँव पहुँचने लगे और लोगों को सम्भालने लगे, मन्दिरों को सम्भालने लगे, नहीं तो मुसलमान मन्दिर तोड़ देते थे। जैसे आनन्द मठ में उल्लेख आता है न, और इनको मदद भी बहुत मिली।

निरंजनी अखाड़ा, जिसके अंतर्गत हम लोग हैं, बहुत शक्तिशाली मठ है। सारा हरिद्वार निरंजनी अखाड़ा का है। जितनी दुकानें हैं, सब लाइसेन्स में दी हुई हैं। वे लोग समाज सुधार का काम करते हैं। जब ब्रिटिश लोगों के साथ हंगामा चल रहा था, तब निरंजनी अखाड़े ने वॉरशिप याने लड़ाकू जहाज मोल लिया था! हम लोग लड़ाई लड़ने में धीमे हैं, पीछे रहते हैं। कहते हैं न कि लड़ाई अंतिम साधन है, जब तक अन्य साधन हो, उसे इस्तेमाल क्यों न करें। संन्यासी राजनीति में प्रत्यक्ष हस्तक्षेप कभी नहीं करते हैं। किसी भी समय नहीं करते। तुलसीदासजी ने तो रामचरितमानस मुगलों के समय में लिखी थी, लेकिन कहीं पर भी उसका संकेत है क्या? राजनैतिक संकेत कहाँ पर है? उस समय इतने समझदार लोग थे, सूरदास जी थे, मीराबाई थीं, पर उनकी रचनाओं में जरा भी संकेत नहीं है। हम लोग कभी राजनीति में नहीं आते, कभी हाई प्रोफाईल में नहीं आते।

मीराबाई बेवकूफ थीं क्या? चित्तौड़ को छोड़कर मथुरा गईं, वृन्दावन छोड़कर द्वारका गईं। एक औरत ने कैसे इतनी लम्बी मुसाफिरी की? क्या उन्हें दुनिया का, राजनीति का पता नहीं रहा होगा? क्या उन्हें नहीं मालूम था कि दुनिया में क्या हो रहा है? मगर कहीं लिखा नहीं। उन्होंने सोचा कि जनता को भटकाने के बजाय भक्ति मार्ग की ओर उन्मुख कर दो। राजा के खिलाफ भड़काने से कोई फायदा नहीं, वह तो तुमको मार देगा। मीराबाई, तुलसीदास, सूरदास, केशवदास, आदि जितने भी कवि लोग आये उन्होंने केवल लोगों को भक्ति मार्ग की ओर डाला, क्योंकि भक्ति मार्ग में डालने से मुसलमानों को कुछ मुद्दा ही नहीं मिला। इस्लाम में तो भक्ति ही प्रमुख है। इसलिये हमने अपने धर्म को वेदान्त-प्रधान न करके भक्ति-प्रधान कर दिया। वेदान्त को अस्वीकार नहीं किया, मगर भक्ति-प्रधान कर दिया।

साकार-निराकार का जो सबसे बड़ा विवाद था, उसका मुसलमानों के जमाने में निराकरण किया, खूब समझाया, क्योंकि इस्लाम निराकारवादी है, वे लोग भगवान की मूरत नहीं मानते, भगवान के अवतार को भी नहीं मानते। ईसाई धर्म भी नहीं मानता। वे लोग नबी, रसूल, पैगम्बर, देवदूत या ईश्वर के पुत्र को मानते हैं, लेकिन भगवान के अवतार को नहीं। हमारे यहाँ राम या कृष्ण भगवान के दूत नहीं, स्वयं भगवान थे। यह चीज भी बचानी थी। भगवान तो निराकार हैं, फिर वे अवतार कैसे ले सकते हैं? राम जी तो राजा के बेटे थे, वे भगवान कैसे हो सकते हैं? इस तरह के प्रश्न करने वाले तो होते ही हैं। उनका उन्होंने निराकरण किया, उपदेशों के माध्यम से नहीं, संगीत के माध्यम से। गाकर बैठाया, कविता के द्वारा बैठाया, क्योंकि अर्धचेतन मन में कविता और संगीत का जो असर होता है, वह गद्य और व्याख्यान का नहीं होता है, इस बात को सब याद रखो। चार पंक्तियों का गीत याद हो जाता है, मगर चार पंक्तियों का गद्य याद नहीं हो पाता। मनुष्य की स्मृति पद्य को पकड़ लेती है, गद्य को नहीं। रामचरितमानस एक दिन में पूरा पढ़ लेते हैं, अगर वह गद्य होता तो नहीं पढ़ पाते। इसलिए उस समय के साधु-महात्माओं ने पद्य और संगीत का सहारा लिया। और वही भावनाएँ लीं जो लोगों के जीवन से सम्बन्धित थीं। वात्सल्य, माधुर्य, दुःख, निराशा, प्रतिस्पर्धा, विरह, अपहरण–ऐसी भावनाओं को जोड़कर रामचरितमानस लिखा है।

रामचरितमानस में तो साकार पर लिखा गया है, तो मुसलमानों ने विरोध नहीं किया?

उन्होंने मुसलमानों के लिये लिखा ही नहीं। मुसलमान क्यों पढ़ेंगे? गाँव-देहात में रहने वाले आम हिन्दू लोगों के लिये लिखा। मुसलमानों ने निराकार पर जो जोर दिया, बुतपरस्ती की जो निन्दा की, उसका असर केवल संकीर्ण हिन्दुओं पर पड़ा। जो लोग साकार को नहीं समझ पाते थे, उनपर पड़ा। कबीरपंथ जैसे कई पंथ हैं जो साकार को नहीं समझ पाते थे। उन लोगों को मुसलमानों का बुतपरस्ती के खिलाफ रवैया बहुत पसन्द आया। उस समय मुसलमानों की तरफ से यह जो राजनैतिक दबाव हो रहा था, उसको बदलना था।

इसी तरह से ईसाई विचारधारा का असर पड़ा। हम लोगों के लिये ईसाई विचारधारा कोई नयी विचारधारा तो है नहीं। सेवा करो, दया करो, प्रेम करो, यह सब तो हमारे धर्म में लिखा ही हुआ है। हर समाज में गरीब, बीमार और उपेक्षित लोग तो होते ही हैं। हिन्दुस्तान में जहाँ किसी आदमी में करुणा और ममता देखते हैं, तो लोग पसंद करते हैं। इस चीज का उन्होंने फायदा उठाया। पर भारत में ईसाई धर्म का कोई विशेष दार्शनिक, सैद्धांतिक या सामाजिक योगदान नहीं रहा। इसलिये वह ज्यादा जड़ नहीं जमा सका। और ईसाई लोग समाज के बड़े लोगों तक नहीं पहुँच सके, उच्च समाज को इन्होंने प्रभावित नहीं किया।

इस्लाम का तो कुछ सैद्धांतिक आधार था, पर ईसाई धर्म का तो कोई तर्कसंगत आधार भी नहीं है। क्यों? क्योंकि ईसाई धर्म का मूलभूत सिद्धांत 'सिन' याने पाप है। ईश्वर जिसे गलत माने वह पाप है। कानून जिसे गलत माने वह अपराध है। यहाँ पाप की बात की जा रही है, अपराध की नहीं। पाप को उन्होंने मूलभूत चीज कह दिया। आदम और हौवा की कहानी सुने हो न? उनकी मान्यता है कि ईसा मसीह को छोड़कर सब पाप की सन्तान हैं। ईसा मसीह माँ-बाप के संयोग के बिना पैदा हुए। मरियम को भगवान ने गर्भवती बनाया और जोसफ को स्वप्न में कहा कि तुम फिक्र नहीं करना। ये सब चीजें सच हों या झूठ, इससे हमें कोई मतलब नहीं, मगर क्या यह एक तर्कसंगत दर्शन है? क्या यह युक्तिसंगत है कि सारे के सारे मनुष्य पाप की संतान होंगे? आहार, भय, निद्रा और मैथुन, ये सभी प्राणियों की मूल प्रवृत्तियाँ हैं। इन्हीं को तुमने कह दिया कि पाप है!

किसी भी विचारक के दिमाग में यह बात जमती नहीं है। अगर यह पाप है तो प्रकृति ने इसे बनाया क्यों? और यह केवल मनुष्य में ही नहीं, कुत्ता, बिल्ली, हाथी, कुरंग, पतंग, मातंग, सब जीवों में है। उस समय राजा राम

मोहन राय, केशवचन्द्र सेन, स्वामी विवेकानन्द जैसे लोग पैदा हुए, जिन्होंने पढ़े-लिखे लोगों का दिमाग ईसाई धर्म से हटाया। खैर ईसाई धर्म तो निष्प्रभावी हो गया और इस्लाम पर भी बहुत जल्दी असर होगा, क्योंकि इस्लाम अब बहुत राजनैतिक हो गया है।

स्वामीजी, आप भक्तियोग की बात करते हैं, तो भक्तियोग में हम जैसे आम आदमी किन बातों को अपनाएँ? जैसे प्रार्थना है, सत्संग है, कर्मकाण्ड हैं, कौन-सी चीज हम लोगों के लिये ज्यादा ठीक रहेगी? या सबका मिला-जुला रूप होना चाहिये?

हर एक आदमी को पहले अपनी जीवनचर्या देखनी चाहिये, अपना समय देखना चाहिये। अपने उत्साह को, अपने काम-काज को देखना चाहिये। उसके बाद पहले जाना चाहिये सत्संग में, स्वाध्याय में। सत्संग दो प्रकार का होता है। एक तो शास्त्रों और ग्रंथों का, और दूसरा होता है सन्तों का। सन्तों का सत्संग हमेशा प्राप्त नहीं हो सकता, मगर स्वाध्याय आदमी सदा कर सकता है। स्वाध्याय के लिए इस समय श्रीमद्भागवत और रामचरितमानस प्रमुख ग्रन्थ माने जाते हैं और इनको समझाया भी जाता है। उसके अलावा स्वामी विवेकानन्द जी, स्वामी शिवानन्द जी, स्वामी रामतीर्थ जी जैसे सन्त-महात्माओं ने बहुत-से ग्रन्थ लिखे हैं। महात्मा गाँधी ने भक्ति पर बहुत अच्छे ग्रंथ लिखे हैं। विनोबा जी ने भी लिखे हैं। उन सब ग्रन्थों को पढ़ना चाहिये। डोंगरे महाराज और पाण्डुरंग जी की भी भक्ति पर बहुत-सी पुस्तकें हैं। श्री राम किंकर उपाध्याय की पुस्तकें भी बहुत अच्छी हैं। रामचरितमानस पर उन्होंने बहुत अच्छा लिखा है। वे रामायण के बहुत बड़े विद्वान् हैं, बनारस में रहते हैं। अब तो बूढ़े हो गये हैं। उन्होंने रामचरितमानस पर टीका लिखा है और गीता पर भी। उन्होंने रामचरितमानस की एक-एक चौपाई को लेकर समझाया है। जैसे कि 'कंकन किंकिनी नूपुर धुनि सुनि', इस चौपाई को लेकर फिर पूरा समझाया है कि मनुष्य को अगर किसी वस्तु से आकर्षण होता है तो उसका आधार क्या है? पुष्पवाटिका में रामचन्द्र जी के मन में जो राग उत्पन्न हुआ, जो श्रृंगार का भाव उत्पन्न हुआ, वह सीता जी के कंकण की ध्वनि से उत्पन्न हुआ, इस तरह से समझाते हैं।

इस प्रकार की पुस्तकों को पढ़ना चाहिये, और स्वाध्याय के बाद अपने लिये साधना का एक छोटा-सा कार्यक्रम रखना चाहिये। साथ ही आध्यात्मिक

जीवन में तनाव नहीं रखना चाहिये। समय आने पर सब चीजें होती हैं। कोई बच्ची तुरंत ही वृद्धा थोड़े ही बन जाएगी। जब 16 की होगी तब लड़की बनेगी, जब 20 साल की होगी तब युवती होगी, 30 की होगी तो स्त्री होगी, 50 की होगी तो प्रौढ़ा होगी, और 60-70 की होगी तो वृद्धा होगी। जब मनुष्य को अपने जीवन में वृद्ध बनने में 60-70 वर्ष लगते हैं, तब सोचो साधना में वृद्ध बनने में कितना समय लगता होगा। एक जन्म काफी नहीं है, कई जन्म लग जाते हैं।

मनुष्य को साधना में परिणाम की अपेक्षा रखे बिना ही साधना करनी चाहिये। आखिर साधना से क्या फल मिलता है, तुम्हें मालूम है क्या? जैसा किताब में लिखा है, जैसा तुम समझते हो वही है क्या? जो तुम समझते हो वह गलत भी हो सकता है। जितना तुम्हारा दिमाग है उसी हिसाब से तुम सोचते हो।

इस युग में साधना के लिये दो चीजें सबसे अच्छी हैं, कीर्तन और जप। समय-समय पर मन करे तो देव दर्शन याने तीर्थयात्रा। गया की तरफ चले गये या देवघर चले गये, किसी भी तीर्थस्थान चले गये। पारसनाथ की पहाड़ी पर भी जा सकते हो, क्या फर्क पड़ता है? यह फर्क तो हम लोगों ने बनाया है। सब एक हैं, पर अलग-अलग ठप्पा भर हमने लगा दिया है।

धीरे-धीरे व्यक्ति को आध्यात्मिकता में जाना चाहिये। आध्यात्मिक जीवन शैक्षणिक जीवन की तरह है। क्या तुम अभी निर्धारित कर सकते हो कि तुम्हारी लड़की पढ़-लिखकर क्या कर सकेगी? नहीं, अभी निर्धारित नहीं कर सकते। तुम कहोगे डॉक्टर बनेगी, हो सकता है वह हाँ कहे या ना। पर तुम्हारे और उसके कहने से कुछ नहीं होता। वह किस लायक है, उसके संस्कार क्या हैं, उसकी योग्यता क्या है, उसका मौलिक तत्त्व क्या है? हर व्यक्ति के जन्म-जन्म का एक मूल तत्त्व होता है और उसी के आधार पर वह चलता है। उस तत्त्व को जानने में बहुत दिन लग जाते हैं।

हमने अनेकों रास्ते देखे हैं, वेदान्त का अध्ययन किया, आत्म चिन्तन किया, गंगोत्री में जाकर खूब जमकर प्राणायाम किया, खूब भाँग-गाँजा चढ़ाया, कुछ नहीं हुआ। हमारे जीवन में भगवान के जो अनुभव हुए हैं, जब उन पर विचार किया तब पता लगा कि अरे, हम तो कर्त्ता हैं नहीं, सब कुछ तो वह है। तब बैठकर भगवान का भजन किया। हमको रास्ता मिल गया। माने मूलतः हमारा संस्कार भक्ति का था, समर्पण भाव का था। मगर

वह समर्पण इसलिये नहीं कर पा रहे थे, क्योंकि अहंकार था। बड़े घर के होने का अहंकार था, ऊँची जाति का होने का अहंकार था, पढ़े-लिखे होने का अहंकार था, बड़े गुरु का चेला होने का अहंकार था, बुद्धिजीवी होने का अहंकार था, कई प्रकार के अभिमान-अहंकार थे। असली बात यही है। अब जाकर पता चला कि कुछ करना ही नहीं है। सब तो वह कर ही रहा है, तुम काहे को सिर मारते हो। रेलगाड़ी दौड़ रही है और तुम भी उसमें दौड़ते जा रहे हो! दौड़ने की क्या जरूरत है? लेटे रहो। मगर यह ख्याल पहले नहीं आया, अभी आया। क्यों? दो-चार अनुभव हुए तब पता चला कि करता तो वह है, मैं थोड़े ही करता हूँ।

क्या आप सबके लिये यही रास्ता बताते हैं? क्या सबके लिये यही सत्य होगा?

सबके लिये सत्य यही है कि उन्हें पता लगाना है कि वे किस योग्य हैं। इस कलयुग में कुछ लोगों को छोड़कर बाकी सब लोगों को भक्ति मार्ग अपनाना चाहिये। जब खूब तेज आँधी-तूफान चल रहा हो, कमरे की खिड़कियाँ खुली हुई हों, उस समय मोमबत्ती तो काम करेगी नहीं। दिया भी काम नहीं करेगा, डिबरी भी काम नहीं करेगी। ऐसे में सिर्फ लालटेन या फिर बल्ब काम करेगा। कलयुग के आँधी-तूफान में तुम्हारा मन तो हमेशा उड़ता रहता है। कॉलेज जाते हो, समाज में काम करते हो, परिवार में रहते हो, तो मन के ऊपर किसी-न-किसी तरह का प्रहार हमेशा होते रहता है। एक मिनट के लिये भी बैठो तो मन भूत, भविष्य, वर्त्तमान में चक्कर मारने लगता है। अब जब मन स्थिर नहीं है, हमेशा चंचल रहता है, तो ऐसी हालत में तुम राजयोग कैसे साधोगे? जबरदस्ती ब्रह्मचर्य पालन करोगे क्या? जबरदस्ती ध्यान करोगे क्या? जबरदस्ती ध्यान करोगे तो पागल हो जाओगे।

श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा गया है– *द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्व जाते।* यह शरीर एक पेड़ है, जिसपर जीवात्मा और परमात्मा रूपी दो पक्षी बैठे हुए हैं। एक नीचे बैठा है, दूसरा ऊपर। नीचे वाला फल को थोड़ा चखकर, 'थू, कड़वा!' कह कर फेंक देता है। सोचता है शायद दूसरा मीठा हो। उसे भी चखकर थूक देता है। फिर तीसरा फल खाने लगता है। ऊपर वाला पक्षी उसे देख रहा है। नीचे वाला कहता है, यार तू क्यों नहीं खाता? तो ऊपर वाला कहता है, तुम ही खाओ भाई, हम तो देखकर ही मस्त हैं।

कहने का तात्पर्य यह कि तुम जो ध्यान करते हो उसका असर तुम्हारे शरीर की नाड़ियों पर पड़ता है। आखिर दोनों पक्षी तो पेड़ पर बैठे हैं न। भय का असर एड्रीनल ग्रंथि पर पड़ता है, काम-वासना का असर यौन ग्रंथि पर पड़ता है। हर भावना का, चाहे वह भय हो, काम हो या क्रोध हो, नाड़ियों और ग्रंथियों पर असर पड़ता है। ध्यान का असर पड़ता है मस्तिष्क के पदार्थ पर। मस्तिष्क के अन्दर जो पदार्थ है, वह जेली की तरह होता है। थोड़ा-सा हिलाओ तो इधर का उधर खिसक जाता है। इसलिए मस्तिष्क के ट्यूमर का ऑपरेशन करते समय डॉक्टर लोगों को बहुत मुश्किल होती है। उस जेलीनुमा पदार्थ के अन्दर ही ये सब संवेदनाएँ हैं। जब मन चंचल हो रहा है, तो उस समय मस्तिष्क की जेली व्यवस्था चंचल हो रही होती है और उसके अन्दर विद्युत क्रिया चल रही होती है। अल्फा, बीटा, थीटा और डेल्टा तरंगें चल रही होती हैं। परन्तु जब तुम जबरदस्ती ध्यान करते हो, उस समय तुम इन विद्युत क्रियाओं का विरोध कर रहे हो।

अगर ध्यान करते समय बहुत आनन्द आता है, तो इसका मतलब तुम अवसाद की तरफ जा रहे हो। दो चीजें अवसाद के लक्षण हैं, एक बहुत ज्यादा खुशी और एक बहुत ज्यादा दु:ख। घर में कोई मर गया, घर जल गया, कोई विपत्ति आ गई तो दु:ख हुआ। दु:ख और सुख दोनों मनुष्य को अवसाद की तरफ ले जाते हैं। इसलिये शास्त्र कहता है कि दोनों के ऊपर उठो। ध्यान की अवस्था में अगर योगी को बहुत आनन्द आता है तो उसे सावधान रहना चाहिये। हम तो अनुभव से कह रहे हैं, क्योंकि वह जो अत्यधिक आनंद होता है, वह तुरन्त अवसाद में डाल देता है। इस बात का हमेशा ख्याल रखना, यह वैज्ञानिक सत्य है। जब-जब आदमी अत्यन्त आनन्द की अवस्था में जाता है, मस्तिष्क में अवसादी लक्षण पैदा होते हैं। सुख और दु:ख, दोनों से मनुष्य को डिप्रेशन होता है। इसलिये सुख भी अच्छी चीज नहीं है। लॉटरी लग गई, नाचो-कूदो, खूब खुश हो, शैम्पेन की बोतल खोलो, ये सब डिप्रेशन के प्राथमिक लक्षण हैं।

यूरोप में देखो, कितना अवसाद होता है। स्वीडन में सब से ज्यादा आत्महत्याएँ होती हैं, जबकि वहाँ कोई समस्या ही नहीं है। वहाँ के लोग यहाँ आश्रम में तीन-चार महीने रहते हैं, जाने के एक दिन पहले किसी मित्र को फोन कर देते हैं कि मैं फलानी तारीख को आ रहा हूँ, नौकरी और घर तैयार रखना। हवाई अड्डे से उतरकर सीधे अपने घर जाते हैं, और दूसरे दिन सुबह

नौकरी पर चले जाते हैं। कोई हिन्दुस्तान में कर सकता है ऐसा? जिस देश में नौकरी और घर की इतनी सुरक्षा है, जहाँ और कोई समस्या नहीं है, उस देश में आत्महत्या क्यों होती है? क्योंकि वे अपने मनोरंजनों में इतना रम जाते हैं कि उन्हें अवसाद हो जाता है। इसलिये हमारे यहाँ महापुरुष कहते हैं, *'सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।'* सुख-दुःख में, लाभ-हानि में, विजय-पराजय में मन को समान रखो।

यह सब कहने का तात्पर्य यह है कि साधना का असर शरीर के तत्त्वों तथा प्रणालियों पर पड़ता है। सिर्फ साधना ही नहीं, यदि तुमको अभी डर लगे तो तुम्हारे अन्दर एड्रीनलीन हॉर्मोन का स्राव शुरू हो जायेगा, तुरन्त खून में मिलने लगेगा। यदि अभी तुम्हारे मन में काम-भावना उठने लगे, तो तुरन्त यौन-हॉर्मोन्स का स्राव शुरू हो जायेगा। माँ के अन्दर वात्सल्य भाव उत्पन्न होता है तो तुरन्त दूध पैदा होने लगता है। अर्थात् मनुष्य की भावना का, मनुष्य की मनोदशा का शरीर पर असर पड़ता है। क्यों? क्योंकि इसी वृक्ष पर दोनों पक्षी बैठे हैं। एक का नाम है जीवात्मा, और दूसरे का परमात्मा। जीवात्मा का स्थान है मूलाधार, और परमात्मा का स्थान है सहस्रार। इसलिये साधना करते समय जल्दबाजी और जबरदस्ती बिल्कुल नहीं करनी चाहिये। सबसे बड़ी चीज तो यह कि जब सब कुछ ही भगवान करता है, तो साधना भी उसी को करने दो। इस उम्र में मैं तो इसी नतीजे पर पहुँचा हूँ कि सब कुछ जो मैंने किया, वह मैंने नहीं उसी ने किया।

परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि मनुष्य पुरुषार्थ नहीं करेगा। अभिमान मनुष्य की सबसे बड़ी विशेषता है, और वह चिन्तन द्वारा इस अभिमान से मुक्त नहीं हो सकता। तुम सोचो कि मैं अभिमान से मुक्त हो जाऊँ, यह सम्भव नहीं। विचार या चिंतन की प्रणाली द्वारा तुम अभिमान से मुक्त नहीं हो सकते। मैं कुछ नहीं हूँ, मैं भगवान का दास हूँ, भगवान ही सब कुछ करते हैं, ऐसा सोचने से भी तुम अभिमान-मुक्त नहीं हो सकते। अभिमान-मुक्त होने के लिए जीवन में अनुभव की आवश्यकता है। कुछ होना चाहिये, कुछ घटना चाहिये, तब तुम्हें पता चलेगा कि तुम गलत थे। हमारे जीवन में कुछ घटा तब हमें पता चला कि सब तो उसी ने किया है, हमने तो कुछ नहीं किया। और इस अनुभव के पहले हम सोचते थे कि हमने ही सब कुछ किया है। सभी लोगों के जीवन में ऐसी घटनाएँ होती हैं, जहाँ पर स्पष्ट संकेत मिलता है कि करने वाला कोई और है। या तो वह पूर्वजन्म का प्रारब्ध या ईश्वर की इच्छा या विधाता

का विधान है, तुम बीच में कहाँ से घुस आए कि मैंने किया? कठपुतली कैसे सोचने लगी कि मैं नाच रही हूँ।

सबहिं नचावत राम गोसाईं। नाचत नर मरकट की नाईं॥

क्या सबके जीवन में ऐसी घटना घटेगी ही?

घटनाएँ सबके जीवन में घटती हैं, मगर प्राय: सभी लोग उन घटनाओं को नजर-अन्दाज कर जाते हैं। जब दशरथ के पूर्वजों के साथ रावण का युद्ध हो रहा था, तो मरते समय वे कहकर गये कि हमारे ही वंश में पैदा हुआ व्यक्ति तुम्हें मारेगा। मगर रावण ने नजर-अन्दाज कर दिया। सीता स्वयंवर में वह असफल रहा और राम जी सफल रहे, उसको भी नजर-अन्दाज कर दिया। मारीच को राम ने उठाकर देश के बाहर फेंक दिया, तब भी उसने नजर-अन्दाज कर दिया। इतना बड़ा योद्धा, जिससे लोक-लोकान्तर काँपते थे, वह सीता जी को चोरी से उठा कर ले गया। आमने-सामने लड़कर ले जाता, विरोध करके ले जाता? आदमी परिस्थिति और अविद्यावश जीवन की कई घटनाओं को नजर-अन्दाज कर देता है।

मैंने जब घर छोड़ा तो पहले सीधे राजस्थान गया। राजस्थान में मेरी एक मद्रासी दोस्त थी, हम लोग साथ ही पढ़ते थे। अब वह मेडिकल लाइन में थी और उसकी शादी हो गई थी। वह इस रास्ते में थी, मुझे पहले ही मालूम था, क्योंकि वह हमेशा श्रीविद्या आदि विषयों पर बोलती रहती थी। इसलिए मैंने सोचा कि पहले उससे ही मिलना चाहिये। गुरु खोजना है तो कुछ तो पता लगाना चाहिये कि कहाँ मिलता है। मैं वहाँ गया तो उसने मुझे एक महात्मा के पास भेज दिया। मैं उनके यहाँ कुछ देर रहा। उनका बहुत बड़ा आश्रम था। वे महात्मा बड़े खुश हुए कि पढ़ा-लिखा लड़का है, यह आश्रम का वारिस बनेगा। मगर मुझे किसी आश्रम का वारिस तो बनना नहीं था, मेरे तो अपने घर में बहुत था। मैं वह जगह छोड़कर बरेली चला आया।

मुझे आज तक याद नहीं है कि मैं बरेली से ऋषिकेश कैसे पहुँचा। मुझे कुछ याद नहीं है कि मैंने ऋषिकेश के लिए कौन-सी ट्रेन का टिकट लिया, किस क्लास का लिया। मुझे बस आखिरी घटना याद है, एक बूढ़ा आदमी प्रतीक्षाकक्ष में हमसे मिला। उससे क्या बात हुई, मुझे कुछ याद नहीं। शायद उसी ने ऋषिकेश का पता दिया हो। जब मेरी चेतना खुली तो पता लगा कि

मैं लक्सर में ट्रेन में बैठा हूँ और मेरे सामने एक जटाधारी महात्मा बैठा है। वह महात्मा सिगरेट पी रहा था। उसे देखकर अच्छा लगा, क्योंकि मैं भी सिगरेट पीता था। मैंने कहा, हमको भी दीजिये न, तो उसने कहा, तुम इतना छोटा लड़का सिगरेट पीता है! फिर उसने पूछा, कहाँ जा रहे हो? मैंने कहा, बस इसी ट्रेन से जा रहा हूँ। उसने कहा, साधु बनना है, चेला बनना है? बस मुझे पता मिल गया, भगवान ने किसी को भेज दिया। बीच में क्या हुआ, मुझे कुछ पता नहीं।

कहने का मतलब यह कि जब मनुष्य कुछ इशारों को समझ नहीं पाता है, तब भगवान उसकी बुद्धि हर लेते हैं और उसको सही दिशा में धकेल देते हैं। उन्होंने मेरी बुद्धि थोड़ी देर के लिये हर ली। अगर मेरे दिमाग की बात होती तो मैं बरेली से पता नहीं कहाँ चला जाता। ऋषिकेश तो जाता ही नहीं, क्योंकि मुझे वहाँ के बारे में पता ही नहीं था। कहीं भी चला जाता। पर उन्होंने बुद्धि हर ली और मुझे ऋषिकेश भेज दिया। एक साधु-महात्मा मिल गये, वे मुझे काली कमलीवाले के पास ले गये और कहा कि यह साधु बनने के लिये आया है। दूसरे दिन हमने पता लगाया, कैलाश आश्रम गये। वहाँ से पता चला कि यहीं बगल में बहुत बड़े महात्मा रहते हैं जो विद्वान्, साधु और तपस्वी हैं–स्वामी शिवानन्द जी। मैं वहाँ चला गया। वहाँ स्वामी शिवानन्दजी को देखा और पहले दर्शन में ही समझ गया कि यही हमारे गुरुजी हैं।

हर एक मनुष्य को अपने जीवन में इस तरह के अनेक अनुभव होते हैं। एक तो यह अनुभव हुआ, इसके अलावा एक और अनुभव सुनाता हूँ। 1963 में मैंने त्र्यम्बकेश्वर में प्रार्थना की थी कि 20 साल आप योग के प्रचार में मेरी मदद कीजिये, फिर मैं सब छोड़कर आ जाऊँगा। एक प्रार्थना की और एक वचन दिया। मनौती का यही नियम है। जब किसी चीज की मनौती करते हो तो उस मनौती के मूल्य के मुताबिक वचन देना पड़ता है। मैंने जिस चीज की प्रार्थना की थी, उसी के मूल्य का वचन दिया।

1963 से 1983 तक योग प्रचार तो जबरदस्त हुआ, मगर मैं यह भूल गया कि मैंने वचन दिया था। 1983 में मैंने बिहार योग विद्यालय के अध्यक्ष पद से इस्तीफा तो दे दिया, यह तो पता नहीं कि कैसे इस्तीफा दे दिया, मगर फँसा ही रहा। 1985 में ऑस्ट्रेलिया में मेरी बहुत बड़ी सड़क दुर्घटना हुई। मैं गाड़ी चला रहा था, आगे देखा कि बम्पर हिल रहा है, जोर से ब्रेक मार दिया, क्लच वगैरह बदला नहीं। उस दुर्घटना में मेरे हृदय, जिगर और

गॉलब्लैडर में चोट आई, मेरी पसलियाँ खिसक गयीं, 5-10 दाँत निकल गये। इतनी गम्भीर दुर्घटना थी कि अगर भारत में होता तो मैं नहीं बचता। स्वामी सत्संगी मेरे पास थी। वह पीछे बैठी थी और मैं आगे था। पन्द्रह मिनट के अंदर मैं इमरजेंसी में था और दो-तीन घण्टे के अंदर मेरा ऑपरेशन हो गया। मैं बेहोश था, मेरे बचने की उम्मीद कम थी। दूसरे दिन मुझे होश आया और उसके बाद मैं एक महीना अस्पताल में रहा। मैं चल नहीं सकता था, अपने पैरों पर खड़ा नहीं रह सकता था, किसी चीज में मन नहीं लगता था। शरीर में बहुत दर्द था, इधर मुड़ो तो दर्द, उधर मुड़ो तो दर्द, सब जगह दर्द होता था। तब मैंने अस्पताल में टीवी मँगा लिया और अंग्रेजी-हिंदी, सब तरह की फिल्में मँगा लीं। शायद ही ऐसी कोई फिल्म हो जो मैंने उस समय न देखी हो।

उसके बाद मैं फिलीपिन्स चला गया और वहाँ से फिर भारत आया। भारत आकर मैं बम्बई के सन-एण्ड-सैंड होटल में रहा। किसी को खबर नहीं की। चुपचाप आया और वहाँ टिक गया। फिर एक दिन सबेरे मुझे ख्याल आया कि नासिक तो यहाँ से बहुत नजदीक है। मैंने कहा, टैक्सी करो और मैं नासिक के त्र्यम्बकेश्वर मंदिर पहुँच गया। व्हील-चेयर से मैं अन्दर गया। उस मन्दिर में देवता नीचे हैं, उतरना पड़ता है। हमने ऊपर से झुककर माथा टेका तो सब याद आ गया, 'अरे हमने तो जबान दी थी कि सब छोड़ कर आयेंगे। अब तो 1983 नहीं, 1985 हो गया। तो दो साल तक हमने वचन का उल्लंघन किया।'

तब हमने सोच लिया कि अब हम मुंगेर में ज्यादा दिन नहीं रहेंगे। जैसे बिजली का करेंट लगता है, वैसे ही यह विचार क्षणभर में कौंधा। तब हम सोचने लगे कि अब कहाँ जाएँ, क्या करें। इन्हीं विचारों में खड़े हुए और सीधे कार तक चले गये। कार में जाने के बाद पता चला कि व्हील-चेयर वहीं छूट गई थी! जो आदमी पैर पर खड़ा नहीं हो सकता था, वह चलकर कार में बैठा! तब मुझे पता चला कि नहीं, यह ईश्वरीय अनुभव है, ईश्वर का संकेत है।

क्या इससे ज्यादा ईश्वर का कोई अनुभव कर सकता है? कोई कहे कि भगवान, तुम निराकार रूप में आओ, या तुम साकार रूप में आओ, या देवी के रूप में आओ, या शिव के रूप में आओ, इस सब की जरूरत नहीं है। लोग इन भौतिक आँखों से स्त्री के रूप को देखकर मोहित होते हैं, मगर

भगवान राम ने तो सीताजी को देखा ही नहीं, *कंकन किंकिनी नूपुर धुनि* को सुनकर ही वे शृंगार रस में आ गये थे। उसी तरह भगवान को देखे बिना भी आदमी को उनकी लीला से प्रभावित होना चाहिये।

मैं उसी समय ठीक हो गया, सौ प्रतिशत ठीक हो गया। सीधा बम्बई गया, हवाई जहाज का टिकट लिया, पटना पहुँचा और पटना से मुंगेर के लिये गाड़ी की। मुंगेर में मैंने सब लोगों को बुलाया और कह दिया कि मैं जा रहा हूँ। कुछ दिनों में झोला-झण्डा उठाया और वहाँ से चल दिया। इधर-उधर बहुत घूमा-फिरा। सब जगह घूमकर, सब देवी-देवताओं का दर्शन कर, 14 जुलाई को मैं त्र्यम्बकेश्वर पहुँचा। वहाँ के महन्त जी ने जूना अखाड़ा की गोशाला में एक टूटा-फूटा कमरा मुझे दे दिया। मैंने उसकी थोड़ी-सी मरम्मत करवायी, सब कचरा निकालकर फेंका, साफ-सफाई की, फिर मैं वहाँ दो महीने रहा। गेरू वस्त्र उतार दिया, माला पहन ली, और लंगोटी पहन ली।

16 जुलाई को भयंकर तूफान आया। आप लोगों को शायद याद होगा, तीन दिनों तक बम्बई में सब कुछ ठप्प रहा। मैं गोशाला में बैठा था, अन्दर भी तूफान, बाहर भी तूफान। मन डूब गया और एक आवाज आयी। मैंने पूछा था कि अब मुझे आगे क्या करना है, तो उस सवाल के जवाब में आवाज आयी–*छः सौ सहस इक्कीसों जाप।* समझ में आ गया कि क्या मतलब है, बस शुरू कर दिया उसी समय से। फिर सवाल यह उठा कि यहाँ इस गोशाला में तो हमेशा नहीं रह सकते। यह तो अखाड़े की जगह है, यहाँ तो नियम होते हैं। मेरे पास बहुत-सी सम्भावनाएँ थीं, गंगोत्री में मेरी अपनी गुफा है, ऋषिकेश में गुरुजी का बहुत बड़ा आश्रम है। उन लोगों ने कहा कि तुम्हारे लिए यहाँ कुटिया बना देगें। माउण्ट आबू में अखाड़ा है, उन्होंने कहा कि स्वामीजी खाना तो आपको बना बनाया मिल जायेगा, आप यहीं रह जाइये। मगर 8 सितम्बर को मुझे आवाज आयी–*चिताभूमौ,* और यह जगह हमें दिखाई दी। बिल्कुल साफ, जैसे टीवी में दिखता है। मैंने स्वामी सत्संगी को बुलाया और कहा कि तुम जाओ और वह जमीन ले लो। वह 9 तारीख को देवघर पहुँची, उसी दिन बातचीत हुई, एक-दो दिन में जमीन के कागजात पर हस्ताक्षर हो गए, 14 तारीख को मुझे वहाँ खबर लगी और 17 तारीख को मैं वहाँ से निकल गया।

कहने का मतलब यह कि ईश्वर की जो अनुभूति होती है, वह स्पष्ट होती है, परन्तु हम लोग अक्सर नजर-अन्दाज कर जाते हैं। इसलिये मनुष्य



को हमेशा ईश्वर की कृपा, ईश्वर की लीला, ईश्वर की कीर्ति और ईश्वर के अनुग्रह को जानने के लिये वॉचडॉग की तरह सतत् सतर्क रहना चाहिये। कहीं ऐसा न हो कि अनुभव छूट जाए। जीवन में ऐसे बहुत-से अनुभव होते हैं, मगर उन सब अनुभवों को हम भूल जाते हैं।

यह युग राजयोग का नहीं है। यह कलयुग है, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, समाधि, आदि मार्ग आम जनता के लिये नहीं हैं। हाँ एक-आध के लिये उपयुक्त हो सकता है। इस युग में केवल दो चीजें आसानी से कर सकते हो, भगवान का नाम लो और दूसरों की मदद करो। इसके अलावा इस युग में और कोई रास्ता नहीं है। अगर कोई आदमी कहे कि हम कठोर साधना करना चाहते हैं तो घर-परिवार सब छोड़ कर आओ और किसी कड़े गुरु के पास रह जाओ, जो अच्छी तरह से पिटाई करे।

इसका मतलब गृहस्थ जीवन में साधना नहीं हो सकती?

बस उतनी साधना हो सकती है जितनी कि गृहस्थ के लिये आवश्यक है। जितनी उसके पाठ्यक्रम में लिखी है, उतनी ही। गृहस्थ का मतलब केवल शादी-शुदा नहीं होता। *गृहीत्वा तिष्ठति इति गृहस्थः*–संस्कृत में ग्रह् धातु का मतलब होता है पकड़ना। तो गृहस्थ का मतलब वह जो किसी चीज

को पकड़े हुए बैठा है। आदमी अपने विचारों, इच्छाओं, वासनाओं और महत्त्वाकांक्षाओं को पकड़े हुए है। उसके अपने अरमान हैं, अपनी पसंद और नापंसद हैं। ये विवाहित-अविवाहित, संन्यासी-गृहस्थ, किसी की भी हो सकती हैं। जब तक ये हैं, तब तक विहंगम मार्ग नहीं लेना, पिपीलिका का मार्ग लेना।

हमारे यहाँ जीवन के लक्ष्य तक पहुँचने के लिये दो रास्ते माने जाते हैं। एक है पिपीलिका का मार्ग, चींटी की तरह चलते जाओ, चलते जाओ। दूसरा है विहंगम मार्ग, माने पक्षी की तरह उड़कर जाओ। इस कलयुग में सारे मानव समाज के लिये भगवान तक पहुँचने के लिये केवल पिपीलिका मार्ग है। विहंगम मार्ग उनके लिये है, जिनके पंख मजबूत हैं, और जो माया के गुरुत्वाकर्षण का विरोध कर सकते हैं, जो काम, क्रोध, मद, मोह, इच्छा और महत्त्वाकांक्षा का विरोध कर सकते हैं। मनुष्य जीवन का गुरुत्वाकर्षण माया ही तो है न? आखिर माया से ही तो बंधे हो न? इसे चाहे माया कहो, आसक्ति कहो या वासना कहो। कोई एक चीज है जिसे हर मनुष्य पकड़े बैठा है। स्त्री नहीं, तो बच्चे को पकड़े बैठे हैं। बच्चा नहीं, तो बाप को पकड़े बैठे हैं। वह भी नहीं तो पैसे को पकड़े बैठे हैं। कुछ भी नहीं तो किसी दुश्मन के साथ दुश्मनी को पकड़े बैठे हैं। मन कहीं न कहीं किसी को पकड़ कर बैठा है। जब वह छूटेगा, तब गुरुत्वाकर्षण विरोधी ताकत तैयार होगी। और तब जाकर वह दत्तात्रेय वाला, वह शुकदेवजी वाला, वह शंकराचार्य जी वाला और वह परमहंस रामकृष्ण वाला विहंगम मार्ग सुलभ होगा। अभी आप उनकी श्रेणी में नहीं आते, यह तो पक्की बात है।

स्वामीजी, बिहार योग विद्यालय से छपी आपकी योग की किताबों में जो लिखा है और आज आप जो कह रहे हैं, इसमें तो बहुत परिवर्तन आ गया है।

नहीं, कोई विरोधाभास नहीं है। उस समय मैं जो मुख्य रूप से कहता था वह भारतीयों के लिये नहीं कहता था। मैंने योग पर जो भी विचार प्रकट किये हैं, वे सब ऑस्ट्रेलिया, यूरोप और अमेरिका जैसी जगहों में किये। वहाँ के लोगों को भक्ति का मार्ग बतलाना माने ईसाई धर्म की याद दिलाना, जिसके वे विरोधी हैं। वहाँ के लड़के-लड़कियों को ईसाई धर्म का 'भगवान ही सब कुछ है, भगवान ही सब जगह है', यह सिद्धान्त फालतू लगता है। वे कहते हैं कि सब

कुछ हम खुद करते हैं। सैटेलाइट हमने बनाया, बिजली हमने बनाई, हवाई जहाज हमने बनाया, एटम बम हमने बनाया। वहाँ के लोग स्व-पुरुषार्थ को भगवान मानते हैं। ईश्वर कृपा को महत्त्व नहीं देते। इसीलिये तो वहाँ ईसाई धर्म कमजोरी पर है।

अब ऐसे लोगों को फिर वही बात दुहराकर देना, मैंने सोचा यह गड़बड़ हिसाब-किताब है, मुझे यह नहीं करना है। तब फिर उनको राजयोग बताया, क्योंकि राजयोग बहुत वैज्ञानिक है। इसमें सामाजिक विज्ञान, भौतिक विज्ञान, आध्यात्मिक विज्ञान, मेडिकल विज्ञान, सब तरह का विज्ञान समाहित है। आसन-प्राणायाम-मुद्रा-बन्ध द्वारा कैसे नाड़ियों और ग्रंथियों को नियंत्रित किया जाता है, कैसे मस्तिष्क के विद्युत आवेगों को नियंत्रित किया जाता है, यह सब वैज्ञानिक है। पश्चिम के देशों को उस समय वैज्ञानिक वस्तु देने की जरूरत थी। अगर तुम कुत्ते को लुभाना चाहो तो माँस दोगे, और गाय को लुभाना चाहो तो हरा घास दोगे न? हमें तो उन लोगों को नयी चीज देनी थी। उसके लिए हमें उन्हें ईसाई धर्म का चारा थोड़े ही देना था कि भगवान ही सब कुछ हैं, वे ही सब कुछ करते हैं। वह सब हमको नहीं बोलना था।

हमने सबसे पहले राजयोग पर चर्चा की। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान और समाधि। फिर हठयोग। हठयोग पर बोले तो विज्ञान पर भी बोलना शुरू कर दिया। ग्रंथियों, अल्फा-बीटा-थीटा-डेल्टा तरंगों, तंत्रिका-तंत्र, इड़ा-पिंगला-सुषुम्ना, इन सब चीजों पर बोलना शुरू कर दिया। जब इन सब चीजों के बारे में बताया तब उन लोगों की समझ में आया। उसी के साथ-साथ मंत्र पर बोलना शुरू कर दिया क्योंकि पाश्चात्य सभ्यता तंत्र को बड़ा श्रेष्ठ विज्ञान मानती है। वे लोग तंत्र से बहुत प्रभावित हैं। अजीत मुखर्जी की तंत्र पर जो पुस्तक है, वह लाखों में बिकती हैं। खजुराहो की शिल्पकला वहाँ बहुत लोकप्रिय है।

जगन्नाथपुरी में अगस्त में जो रथ यात्रा होती है, उसमें रस्सी छूने के लिये हजारों-लाखों विदेशी आते हैं। मुझे तो मालूम नहीं था, पर एक बार स्वीडन के राजदूत की पत्नी मुझसे दिल्ली में मिलने के लिये आयी। उसने कहा कि मेरा लड़का आया हुआ है, मैंने लंदन से उसे खासतौर पर बुलाया है। मैंने पूछा, किसलिये बुलाया है? तो उसने कहा कि रथयात्रा होने वाली है न, मैं उससे कह रही हूँ कि तुम एक बार उस रस्सी को खींच दो, तुम्हारा कल्याण हो जायेगा।

विदेशी लोगों का तंत्र के प्रति बहुत विश्वास है। इसी कारण से विदेश के लोगों ने आचार्य रजनीश की शिक्षाओं को अस्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा कि ये ठीक कहते हैं। आचार्य रजनीश ने तो ईसाई धर्म का पक्का विरोध किया है। मगर फ्रॉयड का विरोध नहीं किया। क्योंकि फ्रॉयड का जो मनोविज्ञान है वह तंत्र के सिद्धांत के साथ मेल खाता है। इसीलिये विदेशों में लोग तंत्र को खराब नहीं कहते, इससे डरते भी नहीं हैं, इसे अशुभ भी नहीं कहते। तंत्र में क्या होता है? पंच मकार, जिसे पंचतत्त्व भी कहते हैं। पंच मकार में मद्य, माँस, मत्स्य, मैथुन और मुद्रा आते हैं। और मनोविज्ञान में फ्रॉयड का पूरे का पूरा सिद्धांत इसका समर्थन करता है। आज पाश्चात्य जगत् में, चाहे वह अमेरिका हो, इंग्लैण्ड हो, जर्मनी हो या फ्राँस हो, कहीं भी ईसाई सभ्यता नहीं है। आज वहाँ फ्रॉयड की सभ्यता है।

इसलिये आप जो कहते हैं, वह विरोधाभास नहीं है। यदि तुम्हारा बच्चा रोटी नहीं खाना चाहता तो तुम उसको जबरदस्ती रोटी नहीं खिला सकोगे। पहले पता लगाओ कि वह क्या खाना चाहता है। वह खट्टा-मीठा-चटपटा खाना चाहता है तो उसे वैसी रोटी दो। मेरे उस समय के प्रवचन और सत्संग ऐसे समाज के लिये कहे गये जो अपने धर्म को मूलत: अस्वीकार कर चुका है। वहाँ के लड़के-लड़कियाँ ईसाइयों की तरह नहीं रहते। ईसाई पादरी किस खेत की चिड़िया है, वे नहीं जानते। एक बार एक पादरी इटली के फ्लोरेंस शहर से गुजर रहा था। उसने एक लड़के से पूछा कि फलाना होटल कहाँ है। लड़के ने पूछा, आप कौन हैं? उसने कहा, मैं पादरी हूँ। लड़के ने आगे पूछा, आप क्या करते हो? तो उसने कहा कि मैं भगवान का पता बताता हूँ। तब लड़के ने कहा कि आपको भगवान का पता मालूम है मगर होटल का पता नहीं मालूम! खैर यह तो एक लतीफा सुनाया पर वहाँ इसी तरह की मानसिकता हो गयी है।

इसलिये आज यदि इन देशों में किसी भी साधक के मन में साधना की जिज्ञासा जागे, गुरु बनाने की जिज्ञासा जागे या सत्संग करने की जिज्ञासा जागे तो वह हिन्दुस्तान आयेगा, वैटिकन नहीं जायेगा। सिर मुड़ाने को कहो तो सिर मुड़ायेगा, गेरू कपड़े पहनने को कहो तो गेरू कपड़े पहनेगा, नाम बदलने को कहो तो नाम भी बदलेगा। मगर ईसाई नहीं बनेगा। ऐसे लोगों के लिये स्वामी सत्यानन्द को भगवान ने अन्दर से प्रेरणा दी कि तू इन्हें वेदान्त मत सिखा, तू इन्हें कर्मयोग भी मत सिखा, तू इन्हें भक्तियोग भी मत सिखा, ये लोग

वैज्ञानिक मानसिकता वाले हैं, इन्हें विज्ञान सिखा। राजयोग विशुद्ध विज्ञान है, उसे सिद्ध किया जा सकता है। सत्य और असत्य का, संग्रह और अपरिग्रह का, ब्रह्मचर्य और अब्रह्मचर्य का, हिंसा और अहिंसा का मनुष्य के मन पर, शरीर पर, नाड़ियों पर, उसकी पाचन शक्ति पर, उसकी ग्रंथियों पर, उसके हॉर्मोन्स पर, उसके अनुकम्पी और परानुकम्पी तंत्र पर क्या असर पड़ता है? इन सब प्रश्नों का आज विज्ञान के आधार पर उत्तर दिया जा सकता है, जिसे वे लोग समझ सकते हैं। और अब हमने भक्ति पर बोलना शुरू कर दिया, तो वे इसे भी स्वीकार कर रहे हैं। पहले तुम चिड़िया पकड़ो, फिर पर काटो।

भारत में कई लोग हैं जिनकी सोच और जीवनशैली पाश्चात्य है। उनके लिये आपका क्या संदेश है?

नहीं, हिन्दुस्तान में ऐसे लोगों की संख्या बहुत कम है। 0.0001 प्रतिशत भी नहीं होगी। हिन्दुस्तान में तो शुरू से हर प्रकार के लोग रहे हैं। यहाँ चार्वाक भी हो चुके हैं, जिन्होंने साफ-साफ बोल दिया–

यावत् जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत् ।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥

खाओ, पियो, मौज उड़ाओ, जरूरत पड़े तो उधार लेकर मौज करो, यही तो चार्वाक सिद्धान्त है न! यहाँ बुद्ध भी हुए, महावीर भी हुए, जिन्होंने ईश्वर को अस्वीकार किया। नैयायिक लोग आये, उन्हें ईश्वर को सिद्ध करना पड़ा। अरे! ईश्वर कोई सिद्ध करने की चीज है? *यत्र धूमः तत्र वह्निः*, जहाँ धुआँ है, वहाँ आग जरूर होगी। जहाँ बच्चा है, वहाँ उसकी कोई माँ जरूर होगी। जहाँ सृष्टि है, वहाँ भगवान जरूर होगा। ईश्वर तो स्वयं सिद्ध हैं, उनको सिद्ध करने की क्या आवश्यकता? यह तो बेवकूफ आदमी भी कहेगा कि ईश्वर है।

खैर यहाँ की चिन्ता छोड़ो, हिन्दुस्तान की धरती एक दूसरी चीज है, यहाँ नास्तिक नहीं होते। यहाँ नास्तिक सिर्फ कहने के लिये होते हैं। क्या महावीर नास्तिक थे? साधु की तरह जीवन बिताया, लंगोटी भी नहीं पहनते थे। अब ऐसे आदमी को तुम नास्तिक कहोगे क्या? क्या बुद्ध वाकई नास्तिक थे? चौबीस घण्टे में एक बार खाते थे, बुढ़ापे तक भिक्षाटन के लिये जाते थे। ऐसे आदमी को नास्तिक कहोगे क्या? नहीं, आपको अपने हिन्दुस्तान

के लोगों की चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। यहाँ अगर बाप नास्तिक होगा, तो बेटा आस्तिक होगा, वह बाप की भरपाई कर देगा। मगर जो देश इस्तानबुल के पश्चिम में हैं, जहाँ वैज्ञानिकों का उदय हुआ है, जहाँ यूनानी दर्शन का बोलबाला रहा है, जहाँ पदार्थवाद ही सब कुछ है–पदार्थ क्या है, इसके कौन-से तत्त्व हैं, इसका विश्लेषण कैसे किया जाए, पदार्थ के अन्दर कौन-सी ऊर्जा है, पदार्थ जीवित है या निर्जीव, एक है या अनेक–जिन देशों ने सिर्फ पदार्थ का अवलोकन और विश्लेषण किया है, उन देशों को फँसाना और उन्हें अपनी वैदिक सभ्यता की ओर लाना, यह कार्य राजयोग के अलावा कोई दूसरा योग नहीं कर सकता।

आज चिकित्सा वैज्ञानिक तो यहाँ तक कहते हैं कि हम क्लोनिंग की विधि से बच्चा पैदा कर सकते हैं, हमें आदमी की जरूरत ही नहीं है। वे कहते हैं कि हम जीवन के सृजनकर्ता हैं। अब जिस देश के लोग ऐसा बोल सकते हैं, उस देश के लोगों को तुम केवल भक्ति-भक्ति कह कर बरगला नहीं सकते। इसलिये पाश्चात्य जगत् में बाकी लोग असफल हुए हैं।

भगवान ने स्वामी सत्यानन्द को यही सिखलाने की अक्ल दी। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि मैंने कभी योग का अध्ययन किया ही नहीं। मैंने न गोरक्ष संहिता पढ़ी है, न घेरण्ड संहिता पढ़ी, न याज्ञवल्क्य संहिता ही पढ़ी। बस नाम सुना है। पर कहने वाले ने मेरे मुँह से कहलवा दिया। उसमें क्या रखा है, आखिर ग्रामोफोन रिकॉर्ड ही तो हूँ। मेरा विषय तो वेदांत रहा है। हम लोगों के यहाँ तो संन्यासियों को सिर्फ वेदांत पढ़ाते हैं। अद्वैत वेदांत, शंकराचार्य का भाष्य, रामानुजाचार्य का भाष्य, श्रीभाष्य, यही तो हम लोग पढ़ते हैं। वह भी हिन्दी या अंग्रेजी माध्यम से नहीं, बल्कि शुद्ध संस्कृत माध्यम से। मैं संस्कृत तो हिन्दी या अंग्रेजी से बढ़िया बोलता हूँ। मेरी मूल भाषा संस्कृत है, सारा अध्ययन संस्कृत भाषा में किया है। लेकिन मैंने वेदांत के बारे में न कहा, न लिखा। भगवान ने मुझे बुद्धि दी कि हठयोग और राजयोग ही रास्ता है। क्योंकि यूरोप की तुलना हिन्दुस्तान के साथ करना गलत है। वहाँ के लड़के-लड़कियाँ पढ़े-लिखे हैं, उनका समाज अलग समाज है। वे लोग दूसरे तरीके से चीजों को देखते हैं। जब तक तुम किसी भी चीज को विज्ञान के द्वारा परीक्षित और प्रमाणित नहीं करोगे, तब तक वे लोग उस चीज को स्वीकार नहीं करेंगे।

– 18 अक्टूबर, 1997



अध्याय 9

ग्रामीण घर

यहाँ गाँव में अधिकांश घर मिट्टी के होते हैं, और व्यक्तिगत सम्पत्ति बहुत थोड़ी होती है। हिन्दुस्तान बहुत पुराना देश है, यहाँ के लोगों को इतिहास अच्छी तरह याद है। किसी भी जगह, किसी भी समय लड़ाइयाँ हो सकती हैं। जब देश का बँटवारा हुआ, तो पाकिस्तान और बंगलादेश से दो-तीन करोड़ लोगों का स्थानांतरण हुआ। आदमी के पास बहुत सम्पत्ति हो, बड़ा मकान हो, तो छोड़ने में बहुत नुकसान होता है।

अफ्रीका में पलायन चल रहा है, वियतनाम में नाविक लोगों का बहुत बड़ा स्थानांतरण चला था, बर्मा से लोग भाग कर थाइलैण्ड गये हैं, युगांडा से लोग भागे हैं। सर्बिया और बोसनिया से लोग भागे हैं। इस शताब्दी के आरम्भ में रूस से लोग भागे थे, चीन से लोग भागे थे। लोगों को एक जगह से दूसरी जगह जाने का जो सिलसिला है, वह दुनिया में हमेशा चलता रहता है। यह ऐतिहासिक सत्य है कि दुनिया में करोड़ों लोग कई कारणों से एक देश को छोड़ कर दूसरे देश जाते हैं। राजनैतिक अशांति के कारण, बेरोजगारी के कारण। ऐसी अवस्था में अगर लोग पक्के मकान बनाने लगेंगे, उनका सारा पैसा उसी में लग जाएगा, और अगर उनको भाग कर जाना पड़े तो सारा पैसा छोड़ना पड़ेगा।

इसीलिये हिन्दुस्तान में नब्बे प्रतिशत लोग ऐसे ही मकानों में रहते हैं, जैसे तुम गाँव में देखते हो। आसपास में जो तुम मकान देखते हो, ऐसे ही मकान हिन्दुस्तान भर में हैं। चाहे उड़ीसा जाओ, चाहे बंगाल, उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र या मद्रास जाओ। कहीं पर फूस लगाते हैं तो कहीं पर खर, खजूर, लकड़ी या

बाँस लगाते हैं। केवल हिन्दुस्तान में ही नहीं, पूरे अफ्रीका, बर्मा, थाइलैण्ड, कम्पूचिया और चीन में सब जगह ऐसा है।

लोग कई कारणों से एक जगह से दूसरी जगह जाते हैं–भूकम्प और बाढ़ जैसी प्राकृतिक विपदाओं के कारण, राजनैतिक विपदाओं के कारण, आर्थिक विपदाओं के कारण। ये जितने भी यहूदी लोग हैं, जो आज इज़राइल में हैं, वे सब काश्मीर से स्थानांतरित हुये हैं। हिमालय एक समय समुद्र था, काश्मीर से लेकर अरुणाचल तक पूरा समुद्र था। उस समय आज के हिन्दुस्तान के दो हिस्से थे। दक्षिण भारत अलग था, बीच में समुद्र था, फिर उत्तर भारत आता था। कई हजार साल पहले समुद्र उठा और पहाड़ हो गया। जब वहाँ पहाड़ उठा होगा, तो वह एक-दो दिन में तो नहीं उठा होगा। उसमें कई हजार साल लगे होंगे। लोग उस समय वह स्थान छोड़ते गये होंगे, छोड़ते गये होंगे।

इसलिये गाँव-देहात में सब मकान तो इसी तरह रहेंगे। हिन्दुस्तान की सरकार तो क्या, कोई भी सरकार या संस्था हिन्दुस्तान के इतने गाँवों के लोगों के लिये पक्का मकान नहीं बना सकती है। बनाएगी भी तो मिट्टी का ही बनाना पड़ेगा, सीमेंट का मकान नहीं बना सकेंगे। हिन्दुस्तान में इतने पक्के मकान बनाने के लिए दुनियाभर का सीमेंट भी काफी नहीं होगा।

इंग्लैंड में, स्विट्जरलैंड में, आयरलैंड में, गाँवों में जो मकान होते हैं, वे सब तो मिट्टी के होते हैं। मकान में लकड़ी को क्रॉस के आकार में लगाते हैं और बीच में मिट्टी जमा देते हैं। ग्रीनलैंड या अलास्का जाओ तो वहाँ के मकान बर्फ की पट्टी से बने रहते हैं। वहाँ जो बर्फ होती है, वह यहाँ की चट्टान जितनी पक्की होती है। वहाँ वे उसे आरी और छेनी से काटते हैं। बर्फ के खण्ड काटते हैं, उसका खम्भा बनाते हैं, फिर मकान बनाते हैं। उसके अन्दर आग जलाकर बैठते हैं। वहाँ चौबीस घण्टे आग जलती है, उस आग के ऊपर लोहे की जाली लगा देते हैं और उसके ऊपर सील के टुकड़े काटकर टाँग देते हैं। वह उसी आग में पकता रहता है। वे लोग माँस ऐसे ही खाते हैं। बर्फ के नीचे कुँआ खोदकर सील को भाले से मार देते हैं, फिर उसे लाकर छत पर डाल देते हैं। जब जरूरत होती है तो चाकू से काटकर लाते हैं और लोहे में टाँग देते हैं। नमक भी नहीं लगाते, सीधा वैसे ही खा लेते हैं। वहाँ के गाँव की बात बोल रहा हूँ।

यह सारी दुनिया में है। इसलिये कोई कल्पना करे या गाँव के लोग भी सोचें कि सरकार हमारे लिये मकान बनाएगी, वह सम्भव नहीं है।

इन्दिरा आवास योजना के अन्तर्गत थोड़े बहुत घर बना लेते हैं, वोट मिलेगा इसलिये। तीन-चार करोड़ रुपये पास करा लेते हैं, थोड़ा इसे, थोड़ा उसे देते हैं। ये सब कमाई के रास्ते निकाले हैं, सब जानते हैं इस बात को, लेकिन बोलेगा कौन। सरकार से जितना भी पैसा इन्दिरा आवास योजना के लिए आता है, वह सब बीच के लोगों में चला जाता है। खैर जो बेईमानी करता है वह सुखी तो नहीं रहता। उसके घर में बीमारी आ जाती है, किसी का बेटा मरेगा, किसी को कैंसर होगा, किसी को टी.बी. होगी। जितने भी लोग बेईमानी से पैसा मारते हैं, इनमें से किसी के यहाँ सुख नहीं है, किसी के यहाँ बीवी बीमार है, किसी को हृदय की बीमारी है, किसी के घर में पागलपन है, कहीं औरत-मर्द का झगड़ा है, कहीं भाई-भाई के बीच मुकदमा है। यह सब बेईमानी के कारण है।

एक परिवार में मियाँ, बीवी और बच्चों के लिये हजार रुपया बहुत होता है। अगर तुम को कहीं हजार रुपये की नौकरी मिल जाए तो तुम अपनी बीवी और बच्चों को ठीक से रख सकते हो। बम्बई की बात नहीं, यहाँ के गाँव की बात कर रहा हूँ। ज्यादा नहीं है, पर काम चलेगा। और अगर दो-तीन हजार रुपया महीना मिलता है, तब तो बहुत काफी है। अब जैसे यहाँ कोई ऑटो चलाता है। उसकी साल भर की आमदनी पैंतीस-चालीस हजार रुपये आराम से हो जाती है। एक घर के लिये इतनी आमदनी काफी है। मगर वह बचाएगा नहीं। क्यों नहीं? बच्चा बीमार है, डॉक्टर के पास जाएगा तो दो सौ रुपया फट से गया। औरत के पेट में ट्यूमर हो गया, तो पहले तो देवघर वाला दो-चार सौ मारेगा। फिर उसको कलकत्ता जाना पड़ेगा तो वहाँ दस-बारह हजार मारेगा। आधे साल की तनख्वाह ऐसे ही खत्म हो जाएगी। उसी दु:ख में वह शराब पीने लगता है। सुखी आदमी कभी शराब नहीं पियेगा। दु:ख को दबाने के लिये, अपने मन की तकलीफ को दबाने के लिये ही आदमी शराब पीता है।

मास्टरजी की बहू भी बोल रही थी कि हमारा घर हजार रुपये में चलता है, दो परिवार का गुजारा चलता है?

हाँ, हमें मालूम है, क्योंकि हम तो यहाँ हिसाब-किताब रखते हैं। यहाँ हम दस-बारह व्यक्ति रहते हैं। प्रति व्यक्ति सब्जी, आटा, दाल, चावल पर कितना खर्चा होता है, हमें मालूम है। यहाँ गाँव में एक आम आदमी एक

हजार में पूरे परिवार का पालन कर सकता है। परन्तु ये लोग ऐसा नहीं करते, बेईमानी करते हैं, दूसरे को ठगते हैं। जैसे टेलीफोन का बिल नहीं देते, टेलीफोन वाले को कुछ दे देते हैं और जहाँ चाहे फोन करते हैं। मुंगेर में मुझे भी ऐसा कहा गया था, मैंने कहा, नहीं-नहीं, यह काम मुझसे नहीं होगा। जिस दिन हमारे पास पैसा नहीं होगा, हम निकल जाएँगे, रहेंगे थोड़े ही। हमें भगवान जितना देता है, उतने में रहेंगे। हम ने जीवनभर यही सिद्धान्त रखा है।

यहाँ तुम किसी भी घर में चले जाओ, कोई-न-कोई समस्या तुमको मिलेगी ही। किसी का मुकदमा चल रहा है, कोई नौकरी से निकाला जा रहा है, किसी की बहू मर गई, किसी की बेटी भाग गई, किसी की हत्या हो गयी, किसी को टीबी हो गया, तो किसी के घर में लड़का पागल है। ये जो दु:ख हैं, ये मनुष्य के कर्म के भोग हैं। ये भोग गरीब के भी हैं और अमीर के भी। पर इन चीजों को कोई नहीं देखता। लोग समझते हैं कि बीमार हैं तो इलाज डॉक्टर के पास है। अगर डॉक्टर के पास इलाज होता तो आज अमेरिका में किसी को बीमार होना ही नहीं चाहिये। अमेरिका में तो बड़े-बड़े डॉक्टर और शल्य-चिकित्सक हैं। यदि यह मान कर चलें कि जिसके पास पैसा है वह सुखी है, तब तो अमेरिका के लोगों को सब से ज्यादा सुखी रहना चाहिये, उनके पास बहुत सम्पत्ति जो है। फिर वे झोलाझण्डा लेकर मुझ जैसे लंगोटी वाले के पैर दबाने यहाँ क्यों आते हैं?

स्वीडन विश्व का सबसे अच्छा वेल्फेयर-स्टेट याने कल्याण-राज्य है, फिर वहाँ इतनी आत्महत्याएँ क्यों होती हैं? जिस देश में नौकरी और घर इतनी आसानी से मिल जाते हैं, वहाँ लोग दु:खी क्यों हैं? यूरोप के लोग बहुत पढ़े-लिखे हैं, लड़के-लड़कियों की शिक्षा बहुत अच्छी है, उन्हें नौकरी बहुत आराम से मिलती है, वे पैसा खूब आराम से कमाते हैं, वहाँ कोई भूखा नहीं रहता, मक्खन-डबलरोटी सबको मिल जाती है। यह सब कुछ होने पर भी वे लोग झोला लेकर हिन्दुस्तान में आकर, सर मुड़ा कर, आश्रमों में क्यों रहते हैं?

मन की शान्ति और सही जीवन के लिये। सही जीवन का मतलब होता है कि मनुष्य को दो रोटी सवेरे और दो रोटी शाम को मिलनी चाहिये, छोटे बच्चे को दूध मिलना चाहिये और गर्भवती स्त्री को ठीक से खाना मिलना चाहिये। फटी-पुरानी साड़ी हो, फटी-पुरानी धोती हो, सिर के ऊपर एक

छत हो, इतना ही तो जरूरी है न? इसे न्यूनतम आवश्यकता कहेंगे। इतना जिसे मिल जाय, वह सुखी है। विदेशी लोग तो चालीस-पचास मंजिला मकान में रहते हैं, उनके घर में फ्रिज है, टीवी है, कपड़े धोने की मशीन है, बर्तन धोने की मशीन है, मिक्सर है, माईक्रोवेव है, सब कुछ है, फिर काहे को रोता है आदमी? ऐसा कहा जाता है और मैंने देखा भी है कि इन देशों में लोग नींद की गोली के बिना सो ही नहीं सकते। जबकि संसार में सबसे सरल और सहज चीज है सोना।

जिसे तुम दु:ख और सुख कहते हो, वह अपना देखने का नजरिया होता है। हर चीज में आदमी का एक सकारात्मक दृष्टिकोण होता है और एक नकारात्मक। दु:ख मनुष्य के मन की नकारात्मक अवस्था का नाम है। दु:ख-सुख बाहर नहीं होता, तुम लोग यह बात याद रख लो। सब महात्मा लोगों का यही कहना है। बाप मर गया, बेटा मर गया, माँ मर गई, बेटी मर गई, बीमारी हो गई, गरीबी हो गई, यह दु:ख नहीं है। दु:ख तो मनुष्य के मन के अन्दर है। सुख और दु:ख, दोनों मन की अवस्थाओं के नाम हैं, दृष्टिकोणों के नाम हैं।

मान लो कोई आदमी हमारा दोस्त है लेकिन अब उसका और हमारा झगड़ा हो गया। वह हमारा दुश्मन बन गया। अब उसका बेटा या बेटी मर जाती है, बोलो हमें सुख होगा या दु:ख? सुख होगा। अब बोलो सुख-दु:ख का कारण उसकी संतान के मरने से जुड़ा था, या हमारे सम्बन्धों से जुड़ा था? सम्बन्धों को लेकर सुख-दु:ख होता है, इसलिये ममता सुख-दु:ख का पहला कारण है। ममता माने मेरापन। ममता सुख का भी कारण है और दु:ख का भी। जो तुम्हारा अपना है, उसे कुछ भी हो जाए तो तुम्हें सुख और दु:ख होता है। और जो तुम्हारा नहीं है, उससे तुम्हें सुख और दु:ख नहीं होता। जब आदमी ये सब चीजें समझ लेता है, तब जाकर उसे सच्चा सुख मिलता है–

गोधन गजधन वाजिधन और रत्नधन खान ।
जब मिले संतोष धन, सब धन धूरि समान ॥

हमारे ऋषि-मुनियों ने, ईसा मसीह ने, मोहम्मद साहब ने, सभी ने इसी बात को कहा है कि संतोष ही सुख है। जब हम पचास साल पहले ऋषिकेश में रहते थे, हमारे पास बस एक कम्बल था, और हम जमीन पर सोते थे। खटिया वगैरह कुछ नहीं थी। सवेरे उठे, नहाये-धोये, कुछ पढ़ा-लिखा, फिर नौ बजे

निकल जाते थे अपना चीवर और पात्र लेकर। काली कमलीवाले का अन्नक्षेत्र था। वहाँ साधु लोगों को दस बजे भिक्षा मिलती थी। वहाँ चार जबरदस्त रोटी देते थे, और हरे मूँग के तड़के का बड़ा-सा चमचा। कभी उड़द का भी होता था। बस गंगा किनारे बैठे और खा लिया। एकदम सुखी। पर यदि वही स्थिति तुम्हारी हो जाती है, तो तुम दु:खी होते हो।

यह दु:ख और सुख कहाँ से शुरू होता है, आदमी को यह जानने की जरूरत है। अगर आदमी का एक बार सुख और दु:ख पर नियंत्रण हो गया, तो फिर उसे किसी चीज की जरूरत नहीं। तब महल और फुटपाथ उसके लिये बराबर है। आखिर अमेरिका, यूरोप, जापान और ऑस्ट्रेलिया के इतने सारे लोग पूरे हिन्दुस्तान में क्यों छाये हुए हैं? लाखों की संख्या में काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक के आश्रमों में आते-जाते हैं और सब पन्द्रह-बीस साल के लड़के-लड़कियाँ हैं। क्यों? उनके यहाँ क्या दु:ख है? वहाँ उन्हें वह सुख-सुविधा प्राप्त है, जो तुम्हें यहाँ प्राप्त नहीं है और जिसकी वजह से तुम अपने को दु:खी समझते हो। अब बोलो, सुख-दु:ख का सम्बन्ध धन-सम्पत्ति से है या किसी और चीज से? तुम्हारे पास वह चीज नहीं है और तुम अपने को दु:खी समझते हो। उनके पास वह चीज है, फिर भी वे अपने को दु:खी समझते हैं।

इसीलिये वे हिन्दुस्तान आते हैं और किसी आश्रम में रहते हैं। कोई आचार्य रजनीश के आश्रम में है, कोई शिवानन्द आश्रम में है, कोई रामकृष्ण मिशन में है तो कोई स्वामी मुक्तानन्द जी के यहाँ है। कोई योग सीखता है, कोई भजन-कीर्तन सीखता है, कोई गुरु-ग्रन्थ साहब सीखता है। कोई मजूरी करता है, कोई खेती करता है। हमारा स्वामी वेदानंद दिनभर मेहनत करते रहता है, और इसे क्या खाना मिलता है? दिन में दाल, चावल, रोटी और शाम को रोटी-तड़का। और तो कुछ नहीं मिलता। इनके यहाँ यह खाना सुअर भी नहीं खाता। इनके यहाँ तो मक्खन, पावरोटी, कॉर्नफ्लेक्स, एक ग्लास फल का रस, कॉफी, इतना तो सिर्फ नाश्ते में चाहिये। दिन में पाँच बार कपड़े बदलते हैं, हर हफ्ते बाल बनाने वाले के पास जाते हैं, दो-तीन घण्टे बैठते हैं, बाल को इधर से उधर करो, यहाँ क्रीम लगाओ, वहाँ दवाई लगाओ, यह सब करते हैं। पानी नहीं पियेंगे, बीयर पियेंगे। शाम को नाचने के लिये क्लब जरूर जाएँगे। जब आदमी वह सब छोड़कर इस रास्ते में आता है और अपने को सुखी समझता है, तो इसका यही मतलब निकलता है कि

सुख मनुष्य की आत्मा में है। इन्द्रियों में सुख नहीं है, इच्छाओं में सुख नहीं है, उपलब्धियों में सुख नहीं है। सुख तो आत्मा का स्वरूप है। जिसकी आत्मा सुखी हो गयी, वह सचमुच सुखी है।

यह समझने की चीज है। संसार में कहीं भी रहो, तुम्हारे पास कितनी ही चीजें हों, अच्छी गाड़ी हो, अच्छा मकान हो, अच्छे बीवी-बच्चे हों, सब कुछ हो, मगर याद रखो सुख वस्तुओं से नहीं मिलता, सुख मन के अन्दर से पैदा होता है। सादे जीवन में सुख होता है। पर सादा जीवन स्वेच्छा से होना चाहिये, मजबूरी से नहीं। यहाँ गाँव के लोगों का सादा जीवन है ही, मगर इससे उनको संतोष नहीं, असंतोष है। ऋषिकेश, उत्तरकाशी या बद्रीनाथ में जो साधु रहते हैं, वे तो इससे भी गरीब हैं। लेकिन गरीबी की वास्तविक परिभाषा क्या है? गरीब किसको कहोगे?

अगर तुम अपने को गरीब कहते हो, तो सबसे पहले यह बताओ कि शादी क्यों की? और शादी कर भी ली तो बच्चा क्यों पैदा किया? और अगर बच्चा पैदा कर भी लिया, तो उसको खर्चीला क्यों बनाया? अपने बच्चे को बचपन से मजदूरी में लगा दो, पच्चीस-तीस रुपये रोज कमायेगा। ठेला चलाएगा, रिक्शा चलाएगा, ट्रेक्टर चलाएगा, रेलवे में कुली का काम करेगा, कुछ भी करेगा। पर तुम पहले से ही उसको बाबू साहब बना लेते हो। लड़का मैट्रिक पढ़ लिया और 'प्यादो सों फरजी भयो, टेढ़ो टेढ़ो जाय।' मैट्रिक पढ़कर कोई मजूरी करेगा?

जब हनुमान संजीवनी लेकर आ रहे थे तब भरत ने उन्हें तीर मारकर गिराया था। उस समय उनका हनुमान जी से परिचय हुआ था। फिर जब लंका युद्ध के बाद हनुमान जी ने आकर श्रीराम के आगमन का समाचार भरत को दिया, तब भरत ने उन्हें क्यों नहीं पहचाना?

जिस समय हनुमान जी को तीर लगा, उस समय हनुमान जी वानर रूप में थे, और जब वे श्री राम के अयोध्या आगमन का समाचार लाये तब ब्राह्मण के वेश में थे। इसलिये भरत ने पूछा कि तुम कौन हो? हनुमान जी तो बहुत वेश धारण कर सकते थे न? उनके पास इच्छानुसार रूप धारण करने की सिद्धि थी।

रामायण में दो-तीन जगह पर कहा गया है कि तप के बल पर विष्णु प्रपंच करते हैं, तप के बल पर शिवजी संहार करते हैं। इस तप की

परिभाषा क्या है? तप किसको कहते हैं? यह किस प्रकार होता है? इसे कौन-कौन कर सकता है?

जिस तरह कर्म एक सामान्य शब्द है, उसी तरह से तप भी एक सामान्य शब्द है। कर्म का कोई विशेष मतलब नहीं होता है। कोई भी काम करते हो, उसे कर्म कहते हैं। तुम चाहे लिखो, पढ़ो, बोलो, हल चलाओ, गाड़ी चलाओ, हवाई जहाज चलाओ या बन्दूक चलाओ, ये सब कर्म के रूप हैं। उसी तरह तप के भी अनेक रूप होते हैं।

हम लोग साधारणतया योगी लोगों के ठण्ढ में रहने, गर्मी में रहने, खाना न खाने, एक पैर पर खड़ा रहने इत्यादि से ही तप का मतलब लगाते हैं। किन्तु तप कुछ और भी है, जैसा कि गीता में लिखा है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण शारीरिक, मानसिक और वाचिक, तीन तरह के तप के बारे में बताते हैं। शारीरिक तप क्या हुआ?

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥ 17.14 ॥

देवता, ब्राह्मण, गुरु और विद्वान् को मानना और उनकी पूजा करना, शुद्ध रहना और स्पष्ट-सीधी बात करना, कपट नहीं होना, ब्रह्मचर्य और अहिंसा का पालन करना, यह शारीरिक तप के अंग हैं। इस तरह से श्रीकृष्ण ने तीनों प्रकार के तप का उल्लेख किया है।

तप का जो मतलब तुम लगा रहे हो कि हिमालय में ठण्ढी सहना या पंचाग्नि की गर्मी सहना, वह तप का एक मतलब है। भगवान को भी जब सृष्टि बनानी होती है तो वे इस प्रकार का उद्योग करते हैं। वे हिमालय में जाकर तप नहीं करते, उद्योग करते हैं। तप का मतलब होता है कठिन उद्योग, वह चाहे कहीं पर भी हो। कहते नहीं हैं क्या कि गृहस्थ आश्रम बड़ी कठिन तपस्या है? मतलब यह कि बहुत कठिन काम करना पड़ता है। तो भगवान के तप करने के बारे में जो कहा है, वह इस रूप में कहा है।

अपनी जुबान पर काबू रखो, इसका मतलब क्या है? ईमानदारी से बोलना?

नहीं। शास्त्रों का पाठ करना, कम बोलना और ठीक से बोलना याने मितभाषण, किसी को तकलीफ नहीं देना, यह वाणी का तप हुआ। करने में

यह बहुत कठिन है। गुस्सा तो आ ही जाता है। देखो, जो चीज कठिन है, वही तप है। जो सरल हो गया वह तप नहीं रहा। जब तुम ऊपर चढ़ते हो तो कठिनाई होती है, और जब नीचे जाते हो तो कठिनाई नहीं होती। पत्थर को लुढ़काओ तो वह अपने आप लुढ़कता जाता है, कोई मुश्किल नहीं होती। मगर जब ऊपर चढ़ाना हो तो कन्धे पर रखकर ले जाना पड़ता है। सरल शब्दों में तप का यही अर्थ होता है, कठिन, दुष्कर काम।

ब्रह्मचर्य का साधना से क्या सम्बन्ध है?

मनुष्य के मन को सब से ज्यादा प्रभावित करने वाली शक्ति काम-वासना है। जैसे हवा चलती है तो पत्ते हिलते हैं, पेड़ हिलते हैं। ज्यादा तेज हवा आई तो पेड़ थोड़े झुकते भी हैं। और तूफान आया तो टूटने भी लगते हैं। काम-वासना तूफान की तरह ही है, जब यह आती है तो फिर उस समय कुछ नहीं सूझता, कोई भी चीज दिमाग में नहीं रहती। ब्रह्मचर्य का मतलब होता है हमेशा ब्रह्म अवस्था में विचरण करना–*ब्रह्मणि चरति इति ब्रह्मचर्य:*। ब्रह्म माने परमात्मा। मन हमेशा परमात्मा में लगा रहे, मतलब ऊँची चीजों में लगा रहे, यही ब्रह्मचर्य है।

हम लोगों के यहाँ कहा जाता है कि 25 साल तक ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये। इससे वीर्यग्रन्थियाँ पुष्ट होती हैं, दिमाग मजबूत रहता है, चित्त की वृत्ति में एकाग्रता रहती है और अवसाद नहीं होता। शरीर, मन और आत्मा के लिये यह बहुत जरूरी है। यदि ऐसा न किया जाए तो मन कम्पायमान रहता है। काम-वासना से मन में क्रोध आता है। क्रोध का कारण काम ही है। जिसमें कामवासना नहीं होगी, उसे क्रोध भी नहीं आयेगा। गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है–

संगात्संजायते काम: कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥
क्रोधाद्भवति सम्मोह: सम्मोहात्स्मृति विभ्रम: ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ 2.62–63 ॥

काम से क्रोध पैदा होता है, क्रोध से मोह पैदा होता है और मोह से कुमति आती है। कुमति से विपत्ति की उत्पत्ति होती है और अंत में विनाश होता है। तो निश्चित रूप से ब्रह्मचर्य का साधना में बहुत बड़ा स्थान है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। अनादिकाल से सिद्ध-महात्मा यह कहते आये हैं।

यहाँ काम का तात्पर्य सामान्य इच्छा से है या यौनेच्छा से?

काम का मतलब होता है इच्छा या कामना। इच्छा तीन प्रकार की होती है, पहली पुत्रैषणा, सन्तान की इच्छा, दूसरी वित्तैषणा धन-सम्पत्ति की इच्छा और तीसरी दारैषणा, स्त्री-पुरुष की इच्छा। ये तीन तरह की इच्छाएँ सबमें हैं। इन तीनों में दारैषणा याने काम-वासना सर्वाधिक प्रबल होती है।

अगर ये इच्छाएँ मनुष्य के मन में नहीं होंगी, तो मनुष्य गोबर-गणेश रहेगा। इच्छा के कारण ही मनुष्य कर्म करता है। अगर तुम्हें पुत्र की इच्छा नहीं होगी, सम्पत्ति की इच्छा नहीं होगी, स्त्री की इच्छा नहीं होगी तो तुम काम करोगे ही क्यों? आज तुम जो भी पुरुषार्थ कर रहे हो, 24 घण्टे जो भी खटपट करते रहते हो, ये तीन ही तो ढकेलने वाले हैं। हर काम के पीछे कोई-न-कोई इच्छा लगी हुई है। अगर भगवान मनुष्य के अन्दर ये इच्छाएँ समाप्त कर दे तो वह अकर्मण्य हो जाएगा। अकर्मण्यता से सृष्टि का विनाश हो जाएगा। इसलिये भगवान ने मनुष्य के अन्दर इच्छा पैदा की और मनुष्य ने कर्म करना चालू किया। बीवी रखी, बच्चे पैदा किए, घर बनाया। पहले झोपड़ी बनायी, फिर मकान बनाया, फिर सौ मंजिला मकान बनाया। पहले बैलगाड़ी या घोड़ागाड़ी से सफर करते थे, उसके बाद समुद्री जहाज से जाना शुरू किया, फिर रेलगाड़ी से और उसके बाद हवाई जहाज से। उस पर भी उसका मन नहीं भरा, तब उसने चन्द्रमा और मंगल ग्रह पर जाना शुरू कर दिया। कहने का मतलब यह कि मनुष्य इच्छा करता है और उस इच्छा के कारण ही उसके मन में स्वप्न आते हैं और उसके लिये वह कर्म करता है। इस इच्छा को ही काम कहते हैं। यह काम सृष्टि का आधार है।

स्वामीजी, अगर साधना में ब्रह्मचर्य का अनिवार्य स्थान है, तो क्या विवाहित लोग साधना नहीं कर सकते?

जरूर कर सकते हैं। मैंने कहा ब्रह्मचर्य 25 साल तक अनिवार्य है। उसके बाद 25 साल गृहस्थाश्रम। वहाँ साधना दूसरे तरीके से होती है। कुछ साधनाएँ ऐसी होती हैं जो ब्रह्मचर्य के साथ ही की जा सकती हैं और कुछ साधनाएँ विवाहित जीवन में की जाती हैं। साधना दो तरह की होती है, एक तो भक्ति साधना और दूसरी योग साधना। योग का मतलब यह साधारण योगाभ्यास नहीं। योग में कुण्डलिनी का उत्थान करते हैं, उसमें ब्रह्मचर्य रखना पड़ता है।

हमारे ऋषि-मुनियों ने वेदों में लिखा है और आज भी कहा करते हैं कि सम्पूर्ण या अखण्ड ब्रह्मचर्य का अधिकार किसी को नहीं है। नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का अधिकार केवल साधकों को है। नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का मतलब हुआ कि तुम विवाहित व्यक्ति हो पर विशेष अवसरों पर ब्रह्मचर्य का पालन करते हो। इन विशेष अवसरों को शास्त्रों में अशून्य शयन व्रत कहते हैं। पंचांग में लिखा रहता है न, अशून्य शयन व्रत। इसका मतलब होता है अकेले सोना। वे खास-खास दिन होते हैं, जो हम लोगों के यहाँ निर्दिष्ट हैं कि उस दिन व्यक्ति को ब्रह्मचर्य पालन करना ही चाहिये। वे नक्षत्र वगैरह देखकर निर्धारित होते हैं। इसे कहते हैं नैष्ठिक ब्रह्मचर्य, जिसमें ब्रह्मचर्य को अनुष्ठान के रूप में निष्ठापूर्वक अनुष्ठित करना चाहिये।

यहाँ एक बात याद रखने की है कि हम लोगों के वैदिक शास्त्रों में स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को कभी भी पाप नहीं माना गया है। ईसाई धर्म में इसे पाप कहते हैं, पर हम लोगों के यहाँ ऐसा नहीं माना गया है। हम लोगों को यह बताया गया है कि यह वृत्ति सब प्राणियों में प्रमुख, प्रधान और प्रबल वृत्ति है, इसलिये इसका नियमन होना चाहिये, इसे अनुशासन में लाना चाहिये। इसलिये गृहस्थ को अशून्य शयन व्रत करना चाहिये। उसके कुछ नियम होते हैं। जैसे तुमने नौ दिन का अनुष्ठान किया, क्योंकि यह तुम्हारी निष्ठा है। उसे कहते हैं नैष्ठिक ब्रह्मचर्य। उसके अतिरिक्त फिर कल्प ब्रह्मचर्य है। जैसे तुम किसी तीर्थ में गये अथवा कुम्भ मेले में गये, तो एक कल्प तक, माने एक निश्चित अवधि तक तुमने ब्रह्मचर्य का पालन किया। समय-समय पर इस बारे में अलग-अलग तरह के विचार दिये गए हैं। और एक जो सबसे कठिन होता है वह है तांत्रिक ब्रह्मचर्य। उसके बार में तुम्हें कोई बताएगा भी नहीं।

ब्रह्मचर्य, जिसके बारे में तुम बात कर रहे हो, वह इतना सरल विषय नहीं है। किसी परमाणु वैज्ञानिक से तुम एटम बम के बारे में बात करोगे तो वह तुम्हें कुछ-न-कुछ बताएगा जरूर, मगर वह एक गंभीर विषय पर बात कर रहा है, साधारण विषय पर नहीं। वह भले ही परमाणु शास्त्र पर कुछ बातें कर ले पर तुम्हें एटम बम बनाना तो सिखाएगा नहीं। उसी तरह मानव जीवन में काम-शक्ति को नियमित करना और दिशा देना बहुत महत्त्व की चीज है। और यह बहुत ही कठिन चीज है। इसमें सफलता की दर बहुत कम है। बड़े-बड़े साधु-महात्मा भी फिसल जाते हैं। नारदजी को कितनी मुश्किल हुई थी!

इसलिए गृहस्थ को चाहिए कि वह शास्त्र में बताये गये गृहस्थाश्रम के नियमों का निष्ठापूर्वक पालन करे।

स्वामीजी, आपने कहा कि अखण्ड ब्रह्मचर्य का अधिकार किसी को नहीं है। वह अखण्ड ब्रह्मचर्य क्या है?

जैसे अखण्ड दीपक है, वह जल रहा है तो जलते जा रहा है। अखण्ड का मतलब जो खण्डित न हो, जो टूटे नहीं।

शंकराचार्य को अखण्ड ब्रह्मचारी नहीं मानेंगे क्या?

नहीं, शंकराचार्य को अखण्ड ब्रह्मचारी के रूप में नहीं मानेंगे, क्योंकि वे अवतारी पुरुष थे। ज्ञानदेव, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, ये सभी अवतारी पुरुष थे। अवतार का मतलब क्या? मान लो तुम बम्बई के रहने वाले आदमी हो, तुमसे किसी ने कहा कि बगल में फिल्म बन रही है, उसमें तुम सेठजी की भूमिका का थोड़ा अभिनय करके आओ। तुम सेठजी की भूमिका अदा करने गये, उसमें अगर शादी भी कर ली, बाल बच्चे भी हो गये तो वहाँ ब्रह्मचर्य थोड़े ही भंग हुआ। अवतारी पुरुष केवल लीला करने के लिये आते हैं, लीला माने नाटक। अवतारी पुरुष अगर शादी करते हैं, वह भी लीला है, बच्चे पैदा करते हैं, वह भी लीला है, चोरी करते हैं, वह भी लीला है, जो कुछ भी करते हैं, सब लीला है। इसलिए अवतारी पुरुष के लिये यह नियम नहीं है।

अवतारी पुरुष का मतलब वे ईश्वर का अंश लेकर किसी प्रयोजन विशेष के लिये आए हैं। अर्थात् ईश्वर के दूत। उन्हें भगवान ने सन्देशवाहक के रूप में भेजा कि तुम यह काम करके आ जाओ। इसलिए उनके बारे में यह कहना कि वे ऐसे क्यों थे, वैसे क्यों नहीं थे, मुहम्मद साहब ने शादी क्यों की, ईसा मसीह ने ऐसा क्यों किया, यह सब निष्प्रयोजन है। समझ में आया न? ये अवतारी पुरुष थे। अवतारी पुरुष समय-समय पर उतरते हैं और एक कठिन काम करके चले जाते हैं, जो आम लोगों की समझ में नहीं आता।

शंकराचार्य जब आए उस समय भारत में बौद्धधर्म के कारण राजनैतिक उथल-पुथल हो रही थी, राजनैतिक परिस्थिति बहुत बिगड़ी हुई थी। जब गाँधीजी आए, उस समय हिन्दुस्तान के लोग आजादी के लिये व्याकुल थे, लेकिन समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करें। बन्दूकें नहीं थीं, तोपें भी नहीं

थीं, पढ़े-लिखे लोग भी नहीं थे। जो शिक्षित थे वे अंग्रेजों के पक्ष में थे। कोई कहता उनके घरों को आग लगा दो, कोई कहता मार दो उनको, कोई कहता कालकोठरी में डाल दो अंग्रेजों को। यही तो लोग कह और कर रहे थे, पर किसी की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। गाँधीजी एक अवतारी पुरुष थे, वे एक विचार लेकर आए और काम कर गये। मान लो गाँधीजी नहीं आते और सुभाषचन्द्र बोस आजाद हिन्द फौज लेकर आते तो क्या करते? अंग्रेजों के सामने तो उनकी 303 राइफल चलती नहीं। जर्मनी जैसी महाशक्ति को हराने वाले आजाद हिन्द फौज को छोड़ देते थे क्या? भून डालते। वहाँ पर अंग्रेज राज कमजोर नहीं पड़ता, पर गाँधीजी के सामने वह कमजोर पड़ गया, क्योंकि गांधीजी ने उनकी कमजोरी पकड़ ली।

अगर शत्रु को हराना हो तो अपनी ताकत को मत देखो, उनकी कमजोरी पहले पकड़ लो। गाँधीजी ने अपनी ताकत नहीं तौली, अंग्रेजों की कमजोरी तौली और वह तौलने के लिये दक्षिण अफ्रीका उनका पहला प्रयोग था। वहाँ उन्होंने तौल लिया कि हमारे दुश्मन की कमजोरी क्या है। इसलिये वे सुभाषचन्द्र बोस या अन्य क्रान्तिकारियों के साथ कभी सहमत नहीं हुए। गाँधीजी सीधा 'नहीं' कह देते थे। वे हमेशा अहिंसा, अहिंसा कहते रहते थे, लाखों बार यह मंत्र दोहराया। और साथ ही वे हरिजन उत्थान, अछूत उत्थान, विधवा विवाह और बुनियादी शिक्षा जैसे मुद्दों पर हमेशा बोलते रहते थे, क्योंकि उन्हें मालूम था कि हमारे यहाँ नीची जाति के साथ ऊँची जाति का जो सलूक है, वह गलत है। अछूत उद्धार का उनका स्वप्न आज यथार्थ बन गया है। उनका 'स्वदेशी कपड़े' का आन्दोलन बहुत ही अच्छा था। खैर, गाँधीजी की तो हर चीज अंग्रेजी हुकूमत पर एक प्रहार थी, चाहे वह नमक सत्याग्रह हो या और कुछ। माने वे एक अवतारी पुरुष थे।

रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, ये जितने भी अवतारी पुरुष होते हैं, ये ईश्वर की एक विभूति लेकर उतरते हैं, बस अपना काम करके चले जाते हैं। बाकी किसी चीज से कोई मतलब नहीं। हम लोग तो पूर्व जन्म के कर्म भोगने के लिये आये हैं, पर वे कर्म भोग के लिये नहीं आते। वे तो किसी खास काम के लिए नियुक्त रहते हैं। काम खत्म करके तुरंत लौट जाते हैं। इसलिये उनके साथ अखण्ड ब्रह्मचर्य जैसी उपाधियों का सवाल ही नहीं उठता। रामकृष्ण परमहंस की तो शादी भी हुई थी। पर उन्हें गृहस्थ कहोगे या ब्रह्मचारी?

सभी को अगर भगवान ने पैदा किया है, तो फिर यह अवतारी पुरुष में अन्तर कैसा?

जी नहीं, सब लोग ईश्वर के बनाये हुए नहीं हैं। सब लोग तो प्रकृति के बनाये हुए हैं। ईश्वर स्वयं में अकर्त्ता है, और प्रकृति उसकी सहयोगिनी है। ईश्वर की तीन शक्तियाँ होती हैं–इच्छा शक्ति, क्रिया शक्ति और ज्ञान शक्ति। इन तीन शक्तियों से ही जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश होता है। जैसे किसी फैक्ट्री का डायरेक्टर कुछ भी नहीं करता, वह तो मुख्यालय में बैठा रहता है, अकर्त्ता और अभोक्ता। बस मीटिंग वगैरह करता है। सारा काम तो मजदूर करते हैं, कर्मचारी करते हैं। अब यह बताइये कि उस फैक्ट्री को वास्तव में चलाता कौन है, मजदूर या डायरेक्टर? कोई कहेगा मजदूर, कोई कहेगा डायरेक्टर। बस यही सिद्धान्त ईश्वर और सृष्टि पर लागू होता है।

तो ये मजदूर कौन हैं?

जैसे किसी संस्था में अलग-अलग विभाग होते हैं, वैसे ही इस सारी सृष्टि के कर्म विभाग हैं और कर्म विभागों का निर्णय तीन शक्तियाँ करती हैं–इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति। इच्छाशक्ति परमेश्वर से अभिन्न है, जबकि क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति उनसे भिन्न हैं। क्रियाशक्ति के प्रकृति, माया और कुदरत जैसे बहुत-से नाम हैं। यही क्रियाशक्ति जगत् का निर्माण करती है। पंचतत्त्वों और तीन गुणों के सम्मिलन से, पंचीकरण से सारी सृष्टि बनती है। अब उसमें अनेकों नियम हैं, जैसे गुरुत्वाकर्षण का नियम, विद्युत का नियम आदि। यह सारा काम प्रकृति के आगे अन्य शक्तियाँ करती हैं। यह विशाल ब्रह्मण्ड, जो आपको दिखाई देता है और नहीं भी दिखाई देता, उसके पीछे एक बहुत बड़ी योजना है और उसी को समझाने के लिये हम लोगों के यहाँ कुबेर, यम, इन्द्र, वरुण, मरुत और अग्नि जैसे नाम आते हैं। ये सृष्टि के देवता हैं जो अलग-अलग विभागों को देखते हैं। उन्हें दिग्पाल भी कहते हैं। पुराणों में नाम तो आता ही है, और तुम लोग पूजा भी तो करते ही रहते हो। यह सृष्टि की वास्तविकता है।

प्राकृतिक विज्ञान में हम जिस भी चीज के बारे में पढ़ते हैं, चाहे वह वनस्पति हो या खनिज या गैस, कहीं तो उसका न्यूक्लियस, उसका केन्द्र रहता ही है। मान लो बंगाल की खाड़ी में बहुत बड़ा तूफान उठा। उस तूफान का कहीं-न-कहीं तो केन्द्र होता है न, जहाँ से तूफान को बल मिलता है।

अगर तुम तूफान के उस केन्द्र को, उस बीज को अस्त-व्यस्त कर दोगे तो तूफान खत्म हो जायेगा। तूफान एक प्रक्रिया है, जिसमें हवा गोल-गोल चलती है, मगर वह शुरू कहाँ से हुई, उसका स्रोत क्या है, उसे किसने शुरू किया, उसका कारण क्या है? जिसे हम लोग दबाव या डिप्रेशन कहते हैं, वह दबाव क्यों हुआ? ये सब चीजें जो प्राकृतिक विज्ञान में कही जाती हैं, उन्हीं को हम आध्यात्मिक विज्ञान में देवी-देवता का नाम देकर समझाते हैं। समझ में आया न?

भगवान ही सृष्टि के मालिक हैं, वे ही इसके संचालक हैं, वे ही इसके मूल हैं। वैसे भगवान शब्द कहना गलत है, क्योंकि इससे पुल्लिंग की कल्पना आ जाती है। भगवती कहोगे तो स्त्री की कल्पना आ जाती है। अब भगवान स्त्री है या पुरुष? शास्त्र में कहा है कि भगवान न पुरुष है, न स्त्री। न वह चलता है, न दौड़ता है। वह यहाँ भी है और वहाँ भी। पहले ही उपनिषद्, ईशावास्य उपनिषद् में यह लिखा हुआ है–

तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यत: ॥

भगवान को स्त्री के रूप में मानना या पुरुष के रूप में मानना, यह साकार उपासना है, जिसे अपनी साधना के लिये करते हैं और करना भी चाहिये। परन्तु वास्तव में भगवान न पुरुष है न स्त्री। वह तो शक्ति है। मान लो हम तुमसे पूछें कि अणुशक्ति पुल्लिंग है या स्त्रीलिंग। अगर हम तुमसे कहें कि अणुशक्ति की तस्वीर बनाओ तो तुम पुरुष की तस्वीर बनाओगे या स्त्री की? स्त्री की तस्वीर बनाओगे तो उसके लम्बे बाल होंगे, मूँछ और दाढ़ी तो होगी नहीं। क्या वैसी तस्वीर बनाने से अणुशक्ति सचमुच में औरत हो गई? यह तो एक प्रतीक है जो तुमने बनाया है। हम लोग हर चीज का प्रतीक रखते हैं। जब क्रोध को प्रतीक बनाया, तो एक तरीके से बना लिया, बड़े दाँतों वाली, हाँथों में लम्बे-लम्बे नाखून, भयंकर मुँह और उलझे हुए लम्बे-लम्बे बाल। मगर क्रोध स्वयं में ताड़का की तरह औरत तो नहीं है। वह मात्र प्रतीक है समझाने के लिये।

काम, ईर्ष्या, राग, द्वेष, इन सबके प्रतीक होते हैं। रावण क्या है? रावण के दस सर थे, दस तो तुम्हारे भी हैं, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ। बीस हाथ तुम्हारे भी हैं, दायें दस और बायें दस। दायाँ माने सकारात्मक और बायाँ

माने नकारात्मक। विचार, अनुभव, दृश्य, स्वाद, ये सब अच्छे-बुरे दोनों होते हैं न? तो बीस नहीं हुए क्या? यह प्रतीक है। रावण का पूरा स्वभाव तमोगुण का प्रतीक है। उसकी नाभि में जो पीयूष कुण्ड था, वह भी प्रतीक है।

मनुष्य अपनी इन्द्रियों का दमन बेशक कर ले पर उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। आँख बन्द कर लो, नाक बन्द कर लो, कान बन्द कर लो, मगर वासना तो अन्दर है, इच्छा-पीयूष अन्दर है, तृष्णा के रूप में, कामना के रूप में। आखिर कामना होती क्यों है? कल तुमने हलवा खाया, आज फिर खाने की कामना होगी। जिस चीज का भोग तुमने पहले भोग लिया है, उसकी इच्छा दोबारा मन में उठने को ही तृष्णा कहते हैं? तृष्णा माने प्यास। जब तक वह तृष्णा जलेगी नहीं तब तक रावण मरेगा नहीं। यह प्रतीक है।

ईश्वर सब से परे है। जिस तरह से विद्या और ज्ञान का कोई धर्म नहीं होता, वनस्पति या हवा या पानी का धर्म नहीं होता, वैसे ही ईश्वर का भी कोई धर्म नहीं होता। ईश्वर की बनाई हुई जितनी भी चीजें हैं, वे सब भेदरहित हैं। मनुष्य ने केवल अपने राजनैतिक प्रयोजन के लिये धर्म, लिंग, जाति, आदि के आधार पर भेद डाले हैं। न तो तुम शूद्र हो, न वैश्य, न ब्राह्मण और न ही क्षत्रिय। ये सब राजनैतिक ठप्पे हैं। तुम मनुष्य हो और मूल में तुम परमपुरुष परमात्मा की बनायी हुई आत्मा हो। अब उन्होंने बनाया या उनकी प्रकृति ने बनाया, बात एक ही है।

तुम्हारी कोई जात नहीं है। हम जात-पात क्यों मानते हैं? उसका कारण राजनैतिक और सामाजिक है। ईश्वर की सृष्टि में तुम सर्वत्र समानता और एकता पाओगे। धर्म और जाति के आधार पर यह सामाजिक भेदभाव ईश्वर का बनाया हुआ नहीं है। चर्च तो पहले था नहीं, ईसा मसीह तो ईसाई थे नहीं, न ही मुहम्मद साहब मुसलमान थे, न भगवान बुद्ध बौद्ध थे, न गुरु नानक सिख थे और न राम वैष्णव थे। किन्तु लोगों ने चर्च बनाया, बाद में उस चर्च में झगड़ा हुआ, ग्रीक आर्थोडॉक्स चर्च, कैथोलिक चर्च, और एंग्लीकन चर्च सब अलग हो गए। इस टकराव का कारण राजनीति ही था। इंग्लैण्ड का राजा, हेनरी अष्टम अपनी औरत को तलाक देकर दूसरी शादी करना चाहता था, पर वैटिकन चर्च ने उसे अनुमति नहीं दी। वह राजा था, उसने कहा कि चर्च को मारो गोली, पोप को अँगूठा दिखा दिया और इंग्लैंड में अपना चर्च बना दिया, जिसे आज एंग्लीकन चर्च कहते हैं। इसी से प्रोटेस्टेंट मत बना। आयरलैंड में तो कैथोलिक-प्रोटेस्टेंट का झगड़ा आज तक चल रहा



है। उत्तर आयरलैंड और दक्षिण आयरलैंड का झगड़ा हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के झगड़े से ज्यादा खतरनाक है। राजा ने अपनी स्पेनिश रानी को तलाक दे दिया, दूसरी से शादी कर ली और अपना चर्च स्थापित कर लिया। इस तरह से धर्म बनते हैं जी।

जहाँ तक इस्लाम का सवाल है, मुहम्मद साहब के बारे में तुम लोग ज्यादा जानते नहीं हो। मुहम्मद साहब एक कबीले के आदमी थे। जिस तरह आज के जमाने में ढाबा होता था, जहाँ रात को ट्रक ठहरते हैं, पानी भरते हैं, खाना खाते हैं, उसी तरह से उस समय वहाँ कारवाँ सराय होती थी, जहाँ रात को ऊँट रोकते थे। वहाँ पानी होता था, खाने-पीने का इन्तजाम होता था, ऊँट को खूँटे पर बाँध दिया जाता था। मुहम्मद साहब वहाँ सराय में काम करने वाले लड़के थे और उनकी बचपन से ही भगवान के प्रति बहुत आस्था थी। रात में जब काम पूरा होता था तब वे थोड़ी दूर जाकर भगवत् भक्ति करते थे। कोई कहता है योग करते थे, कोई कहता है प्राणायाम करते थे, सब अलग-अलग बात कहते हैं। जब सब लोग बहुत कहने लगे तब उनकी शादी की गई। मदीना के बड़े अमीर घर की लड़की थी। पर उनपर कुछ खास असर पड़ा नहीं। वे अपना काला कम्बल लेकर रोज रात को निकल जाते थे, और वहीं पहाड़ियों में बैठकर ध्यान करते थे।

एक दिन वहाँ मोहम्मद साहब को ईश्वर का आभास हुआ, और कुरान की आयतें उन्हें सुनाई देने लगीं। जैसे अपने यहाँ वेदों को श्रुति कहते हैं, श्रुति माने जो सुना, वैसे ही कुरान भी श्रुति है। मुहम्मद साहब तो कुछ लिख

नहीं सकते थे, वे तो अनपढ़ थे। उन्हें जो कुछ सुनाई दिया, उसे वे धीरे-धीरे लोगों को कहने लगे। छोटे-छोटे सत्संगों और सभाओं में वे लोगों को समझाते थे, और लोग उन बातों को मानते भी थे। वे भक्ति करते थे और जो भक्ति करेगा उसके पास तो लोग आएँगे ही। जो कुछ भी वे कहते थे, उससे बहुत-से लोगों को नाराजगी भी होने लगी। क्योंकि धर्म में छल, कपट, पाखण्ड तो सब जगह है। उन्होंने जब पाखण्ड के खिलाफ सीधा-सीधा बोलना शुरू कर दिया तो लोग इससे नाराज हो गये। वे उनकी सभा में कहीं पत्थर फेंकते थे, कहीं कुछ करते थे। मगर मुहम्मद साहब फिर भी निर्भय होकर बोलते जाते थे, और अनुयायियों की संख्या भी बढ़ती जा रही थी।

वे केवल एक ही बात कहते थे कि भगवान एक है, सब कुछ वही करता है, हम सब उसके बन्दे हैं, तुम्हें जो कुछ भी माँगना है, उससे माँगो, पण्डे-पुजारियों की जरूरत नहीं है। भगवान की भक्ति पैसा कमाने की चीज थोड़े ही है। हम साधु हो गये, इसका मतलब यह नहीं कि सबसे पैसा ऐंठना चाहिये। पैसा ऐंठना न साधु का धर्म है, न पुजारी का। लोग प्रेम से मदद करें यह बात दूसरी है, मगर हमें झूठ-मूठ बोलकर नहीं ऐंठना चाहिये। इस तरह की बातें वे साफ-साफ करते थे।

अब उनके ऊपर हमले बढ़ते गये, उनको मारने का षडयन्त्र होने लगा। तब उनके भक्तों ने कहा कि आप यहाँ से भागिये, तब मुहम्मद साहब मक्का छोड़कर मदीना चले गये। उस दिन को वे लोग इस्लामी पंचांग की शुरुआत मानते हैं न। मदीना में उनकी ससुराल थी। उनके ससुराल के लोग मालदार थे और राजनीति में भी आगे थे। वहाँ उन लोगों ने मुहम्मद साहब से कहा कि दामाद जी, खाली कुरान से काम नहीं चलेगा। एक हाथ में कुरान रखो और एक हाथ में तलवार। तलवार का मतलब उन्हें सेना दी गई, आदमी दिये गये। वे 40-50 आदमी लेकर निकलते थे और प्रवचन देते थे जिसमें हजारों लोग आते थे। जो बदमाश लोग आते थे, उनको पकड़ लिया जाता था और उनसे कहा जाता था, 'दीन या इस्लाम', हाँ बोलो या ना। हाँ बोलो तो ठीक, ना बोलो तो गला काटो। यह इस्लाम की कहानी है।

केवल इस्लाम की नहीं, ईसाई धर्म की भी यही कहानी है। ईसाइयों ने क्रूसेड छेड़ा, क्रूसेड माने धर्मयुद्ध। लोगों को पकड़कर उल्टा लटकाया और कहा कि बोलो, हाँ या ना। हाँ बोला तो उतारा और बप्तिज्मा किया, और ना बोला तो मार डाला। तो ऐसे बने ईसाई और ऐसे बने मुसलमान।

क्या यहाँ कोई जबरदस्ती हिन्दू नहीं बनाता है?

हम लोग थोड़ा विस्तार से इस विषय का परीक्षण करें। कोई भी आदमी अपने धर्म को बिना मतलब नहीं छोड़ता। लोग जरूर थोड़े बहुत दबाव के कारण मुसलमान या ईसाई बने, मगर ज्यादातर लालच के कारण बने, सुखी जिन्दगी बिताने के लिये बने। जैसे यह गंगो है, हमारे बगल में रहता है। 'ऐ गंगो, इधर आओ', सब इसको ऐसे ही पुकारते हैं। अगर यह गंगो कल ईसाई हो जाए, इसका नाम गैब्रियल हो जाए, तो तुम कहोगे, 'हैलो गैब्रियल, गुड मॉर्निंग।' फर्क पड़ गया न?

लोगों ने समय-समय पर सामाजिक प्रतिष्ठा और सम्मान के लिये धर्म परिवर्तन किये हैं। केवल यही नहीं, कई बार विवाह के लिये भी धर्म परिवर्तन किये हैं। कई लोग जो छुआछूत से पीड़ित थे, वे दूसरे धर्म में चले गये। हमारे यहाँ छुआछूत गजब का था, नहीं था क्या? तुम्हें शायद मालूम नहीं है, तुम जिस युग में पैदा हुए हो उसमें उस समय की कल्पना भी नहीं कर सकते। हम थोड़ी-सी कल्पना कर सकते हैं। शूद्रों के गाँव में आते ही, उनकी छाया पड़ते ही लोग स्नान करते थे। ब्राह्मण अपने कुएँ से पानी नहीं देते थे। यह 1950 की बात कह रहा हूँ, बहुत पुरानी भी नहीं। दुकानदार शूद्र ग्राहक के हाथ से पैसा नहीं लेते थे। वहाँ पर एक डिब्बा रहता था, उसमें पानी रहता था। ग्राहक उसमें पैसा डालता था और मुँह के आगे कपड़ा रख कर बोलता था कि मुझे धनिया दो।

कमजोर जातियों के साथ बहुत सामाजिक अन्याय किया गया है। इस उत्पीड़न से पीड़ित होकर बौद्धों के समय वे बौद्ध बने, मुसलमानों के समय मुसलमान बने और ईसाइयों के समय ईसाई बने। फिर गाँधीजी के समय काँग्रेसी बने और अब अलग-अलग राजनैतिक दलों में शामिल हुए हैं। यथार्थ की बात बोल रहा हूँ, इसमें किसी की अलोचना नहीं है। यदि हमें इन सब चीजों से अपने समाज को बचाना है, तो सबसे पहले यह जान लो कि जाति के आधार पर भेदभाव गलत है। अगर तुम क्षत्रिय जाति के हो और मैं चमार जाति का, तो तुममें और मुझमें कोई फर्क नहीं देखना चाहिए। भगवान ने जातियाँ, धर्म और वर्ग नहीं बनाए। उन्होंने सबको माँ के पेट में 260 दिन रखा है, सबको एक जैसा शरीर दिया। सारी सृष्टि में, सभी प्राणियों के लिए उन्होंने जब एक ही नियम बनाया है, तब तुमने दो नियम क्यों बना दिये?

अल्लाह ने तो सबको इन्सान बनाया ।
हमने ही उन्हें हिन्दू मुसलमान बनाया ॥

तुम पंजाब में रहते हो तो पंजाबी कहलाते हो, पर यह सिर्फ एक स्थानीय पहचान है। तुम्हारी आँखें थोड़े ही पंजाबी हैं, तुम्हारे नाक-कान थोड़े ही पंजाबी हैं। सब कुछ तो वैसा ही है जैसा एक बंगाली का है। पिछले तीन-चार हजार वर्षों से हम लोगों के धर्म की यही सबसे बड़ी कमजोरी रही है, और इसी कारण हम लोग नित्य-निरन्तर गिरते जा रहे हैं। हिन्दुस्तान के पतन का कारण और कुछ नहीं, केवल छुआछूत और ऊँच-नीच का भेदभाव है। इंग्लैंड या अमेरिका में शादी करते समय कोई यह थोड़े न देखता है कि तुम किस जाति के हो। अगर भगवान ने ही जाति बनायी है, तो सब जगह क्यों नहीं बनायी, ऐसा अभागा हिन्दुस्तान ही क्यों रहा जिसमें जाति बना दी। या तो हिन्दुस्तान के प्रति कोई नाराजगी थी या कोई पक्षपात था कि तुम ही लोगों के यहाँ जाति बनेगी। ये सब चीजें यहाँ इतनी बद्धमूल हो गई हैं कि न तुम इन्हें तोड़ पाओगे, न तुम्हारे पिता तोड़ने देंगे, न तुम्हारे रिश्तेदार तोड़ने देंगे, न तुम्हारा समाज तोड़ने देगा। तुम आज भी किसी छोटी जात की योग्य लड़की के साथ शादी नहीं कर पाओगे। समाज कितना क्रूर हो गया है।

कुछ साल पहले की घटना है, एक जर्मन लड़की राजस्थान में घूमने आयी थी। वहाँ वह एक रिक्शे वाले से बहुत प्रभावित हो गई। जो भाड़ा तय किया था, उसके ऊपर यदि वह कुछ देती थी तो वह साफ बोल देता था कि मेरा जो भाड़ा है, वही लूँगा, उसके ऊपर कुछ भी नहीं। वह उसकी ईमानदारी से बहुत प्रभावित हुई। आदमी गरीब है, उसके घर की हालत बहुत खराब है, मगर फिर भी आदमी सिद्धान्त और उसूल वाला है। इस आदमी से मेरी पटरी बैठेगी। बस यह सोचकर उससे शादी कर ली। जब शादी कर ली तो राजस्थान में हंगामा मच गया। लोगों ने सोचा कि उसने लड़के को फँसा लिया है। कचहरी तक बात चली गयी। मगर वह तो जर्मन लड़की थी, शक्तिशाली देश की थी। उसने उसका पासपोर्ट बनवाया और उसे उड़ाकर ले गई। अब क्या करोगे तुम? कोई कमजोर जात की तो थी नहीं। पढ़ी-लिखी लड़की देश में अकेली आयी, लड़का ढूँढा और वह भी ढंग का लड़का ढूँढा। उसने कहा कि लड़के तो दुनिया में सब एक से होते हैं, मगर कुछ ऐसे होते हैं जिनके जीवन में कुछ सिद्धान्त होते हैं और जो किसी भी हालत में उन सिद्धान्तों के साथ समझौता नहीं करते, चाहे गरीबी हो या बीमारी। ऐसे आदमी से हम जरूर शादी कर सकते हैं। और उससे शादी कर ली।

–20 अक्टूबर, 1997



अध्याय 10

विवेकी व्यक्तियों को छोड़कर हर व्यक्ति को दूसरों की बात सुननी चाहिए। अपनी बात को कहने से ज्यादा दूसरों की बात सुननी चाहिए, क्योंकि मनुष्य को अपना चेहरा कभी दिखाई नहीं देता। मैं जो सोचता हूँ, वह ठीक है कि नहीं, उसका प्रमाण क्या है? कोई प्रमाण तो है नहीं। हर आदमी अपने को ठीक समझता है, कोई अपने को गलत समझता ही नहीं। इसे कहते हैं अभिमान, जो मनुष्य के व्यक्तित्व का आधार है। अगर आदमी अपने को ठीक नहीं समझेगा तो उसका व्यक्तित्व बिगड़ जायेगा।

इसलिए मैंने कहा कि हर आदमी को दूसरे की बात सुननी चाहिए, मानने के लिए नहीं कहा। बस सुनना चाहिये कि दूसरा आदमी ठीक कहता है या गलत। तुम्हारे लिए वह बात कितनी उपयोगी होगी, यह जानना तो मुश्किल है, इसलिए एक ही बात जाननी चाहिये कि कहने वाला कौन है। कहने वाला आदमी कंगाल है और तुमसे कहता है कि पैसा कैसे कमाना चाहिए, तो एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल दो। कोई आदमी बारह महीने बीमार रहता है लेकिन तुमसे स्वास्थ्य के बारे में कहता है कि ऐसा करो, वैसा मत करो, यह खाओ, वह मत खाओ, तो उसकी बात भी यहाँ से सुनकर वहाँ से निकाल देनी चाहिए। कोई आदमी रोज शराब पीता है और तुमसे कहता है कि शराब नहीं पीनी चाहिये, तो उस आदमी की बात पर भी ध्यान नहीं देना चाहिये।

उसी आदमी की बात पर ध्यान देना चाहिये जिसने उस विषय में कुछ प्राप्त किया हो जिस पर वह बोल रहा है। कोई गरीब आदमी है और लखपति बन गया, कोई छोटी जात का है और पी.एच.डी. कर लिया, कोई वेश्या का

पुत्र है और संत-महात्मा बन गया, कल तक कोई डाकू-बदमाश था, आज बहुत बड़ा ज्ञानी बन गया, ऐसे आदमी की बात चुपचाप सुन लेनी चाहिए। अनुभवी आदमी की बात सुनने में कोई खतरा नहीं है। जो ज्ञान की बात कहते हैं, पर अपना अनुभव नहीं है, उनकी बात पर ध्यान नहीं देना चाहिये।

हर एक बात के बारे में हर एक व्यक्ति की अलग राय होती है। किसी से तुम पूछो कि गुलाब कब लगना चाहिये तो एक कहेगा कि अक्टूबर के बाद लगना चाहिये, दूसरा कहेगा नहीं, मार्च में लग सकता है, तीसरा कहेगा कि जून-जुलाई में भी लग सकता है। तुम्हें यह देखना होगा कि तीन आदमी तीन तरह की बात क्यों कह रहे हैं, तीनों अपनी जगह ठीक हो सकते हैं। एक आदमी ऑस्ट्रेलिया का हो सकता है, वह अपने मौसम के हिसाब से कह रहा होगा। मगर तुम्हें यह देखना चाहिये कि तुम्हारे यहाँ अक्टूबर में लग सकता है या मार्च में। निर्णय तुम्हें लेना होगा। और जीवन में निर्णय लेना आसान नहीं है।

मान लीजिये कोई किसी काम का प्रभारी है, वह अपने अधीनस्थ कर्मचारी को कुछ काम देता है। कर्मचारी को लगता है कि काम ऐसे नहीं, वैसे करना चाहिए। उस समय प्रभारी की बात को चुपचाप सुनना चाहिये या सुझाव देना चाहिये?

जी हाँ, प्रभारी की बात जो भी हो चुपचाप सुन लेनी चाहिये। बहुत-से लोग तो गुस्सा करके रो देते हैं, अपने आप पर नियंत्रण खो देते हैं। हमारे जैसा प्रभारी हुआ तो कहेगा या तो चुपचाप हर काम करो, नहीं तो जाओ यहाँ से। जिस भी संस्था या विभाग का प्रभारी हो, उसके अनुरूप उसका व्यक्तित्व होना चाहिए। व्यक्तित्व अच्छा नहीं हुआ तो फिर अधीनस्थ कर्मचारी तर्क करते हैं। और यदि व्यक्तित्व अच्छा हुआ तो किसी की हिम्मत नहीं होती है। अधिकांश चीजें व्यक्तित्व पर निर्भर करती हैं।

अधीनस्थ कर्मचारी को मालूम हो कि यह काम गलत है, फिर भी चुपचाप कर लेना चाहिये?

ये सब छोटी-छोटी चीजें हैं, इनमें ज्यादा दिमाग नहीं लगाना चाहिये। अरे, क्या होगा? दाल में नमक थोड़ा ज्यादा पड़ जायेगा, थोड़ा सा चावल गिर जायेगा, दरवाजा खुला रह जायगा, मच्छर अन्दर आ जायेंगे। इन छोटी-छोटी चीजों में आदमी कहाँ तक सर मारेगा? आखिर क्या नुकसान होगा?

मकान थोड़े ही गिर जाएगा, कोई मर थोड़े ही जाएगा। ये सब चीजें बहुत छोटी-छोटी होती हैं। किसी को ऐसी चीजों के बारे में ज्यादा नहीं सोचना चाहिये। जब हाथी चलता है तब वह यह नहीं देखता कि कितने मेंढक मरे, कितनी चींटियाँ मरीं, कितने कीड़े मरे। और जैन महात्मा जब चलते हैं तो चींटी, तिलचट्टा, सब देखते हुए जाते हैं, तो पहुँचने में बहुत देर लगती है।



छोटी बातों पर ज्यादा ध्यान नहीं देना चाहिये। जिस आदमी को बड़ी संस्था चलानी पड़ती है, उसे यह सब नहीं सोचना चाहिये। पर बहुत-से प्रभारी लोग ऐसे भी होते हैं, जो बहुत छोटी-छोटी बातों में परेशान हो जाते हैं। प्रभारियों को इन सब चीजों में जाना नहीं चाहिये। अधीनस्थ कर्मचारियों से भिड़ना ही नहीं चाहिये, क्योंकि सारा काम तो वही करते हैं, चाहे सही करें या गलत।

कभी-कभी डाँटना चाहिए क्या?

नहीं। अगर कुत्ता गलत जगह टट्टी करता है, और उसे शाम को बुलाकर पीटा तो उसकी समझ में कुछ नहीं आएगा। कुत्ता जिस समय गलत जगह पर टट्टी-पेशाब करे, उसी समय उसको मारो और ना कह दो। दो-चार बार में उसकी समझ में आ जाता है। लेकिन जब इन्सान कोई गलती करे, तब उसे उसी समय मत कहो, नहीं तो वह तुरन्त प्रतिक्रिया करेगा, यह उसका स्वभाव है। उस चीज को मन में रखना, दस-पन्द्रह दिन में कभी बात-बात में वह चीज कह देना, वह भी अपमानजनक तरीके से नहीं, तो यह तुरन्त काम करता है।

आजकल के जमाने में कोई भी आदमी किसी से नहीं डरता है। तुम्हारा नौकर जानता है कि चला जाऊँगा तो खाना कौन बनायेगा? तुम्हारा ड्राइवर जानता है कि चला जाऊँगा तो गाड़ी कौन चलाएगा? तुम थोड़े ही चलाओगे, ड्राइवर तो रखना ही पड़ेगा। यह श्रम का युग है। सतयुग ब्राह्मणों का युग था,

त्रेता क्षत्रियों का, द्वापर वैश्यों का, और यह कलियुग श्रमिक लोगों का युग है। श्रमिक लोग अब सत्ता में आ रहे हैं। खुद देख लो, वस्तुस्थिति आँखों के सामने है। इस समय बुद्धिमानों के पास शक्ति नहीं है, व्यावसायिक लोगों के पास शक्ति नहीं है, आज समाज में शक्ति श्रमिकों के हाथ में है। वे लोग मिल बन्द करा देते हैं, कोर्ट-कचहरी सब बन्द करा देते हैं। श्रमिक अपनी शक्ति को जान गये हैं। पहले अवसर नहीं था, सोचते थे कि गाँव छोड़कर कहाँ जाएँगे, पर अब वे अपनी शक्ति जानते हैं।

यह श्रमिकों और कर्मचारियों का युग है। पुराणों में लिखा भी है कि कलियुग में शूद्र राज्य करेंगे। यहाँ शूद्र का मतलब कोई नीची जाति नहीं है, यहाँ शूद्र का तात्पर्य है श्रमजीवियों, मजदूरों, किसानों और कर्मचारियों से, जो पोस्ट ऑफिस, रेलवे स्टेशन, फैक्टरी, टेलिफोन ऑफिस, कचहरी वगैरह में काम करते हैं। आजकल हम उन्हें वर्कर या श्रमजीवी कहते हैं, शास्त्र में शूद्र कहते हैं। गीता में कहा गया है–

कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥ 18.44॥

कृषि, पशुपालन और वाणिज्य का काम चाहे किसी भी जाति का आदमी करे, वह वैश्य कर्म है। और शूद्र कर्म है परिचर्या, चाहे वह किसी भी जाति का आदमी करे, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। शास्त्र में ब्राह्मण चिन्तन करने वाले को कहते हैं, क्षत्रिय युद्ध करने वाले को, वैश्य व्यापार करने वाले को और शूद्र हर प्रकार के काम करने वाले को कहते हैं। इस जमाने में हर देश में मजदूरों, श्रमिकों और कर्मचारियों के पास बहुत शक्ति है।

आखिर एटम बम कौन बनाता है? वैज्ञानिक थोड़े ही बनाते हैं, वे तो बस अनुसन्धान करते हैं। हवाई-जहाज कौन बनाता है? अस्त्र-शस्त्र कौन बनाता है? किताबें कौन छापता है, इंजीनियर और डायरेक्टर थोड़े ही छापते हैं। प्रयोगशालाओं में परीक्षण भी तो वही करते हैं। वही नापते हैं कि यूरेनियम कितना शुद्ध हुआ, वही पैक करते हैं, लेबल लगाते हैं, उसे भण्डार में जमा करते हैं, कम्प्यूटर में दर्ज करते हैं। सब कुछ वही करते हैं। थोड़ी-सी गफलत हुई, कहीं पर कमजोरी आई तो यूरेनियम तस्करी हो गयी। अभी हाल में रूस में साम्यवाद के गिरने के बाद यूरेनियम की तस्करी हो रही थी। यह सब काम करने वाले कौन हैं? श्रमिक। ये श्रमिक हर प्रकार के होते हैं। इनमें बहुत-से

लोग आतंकवादी समूहों में भी चले जाते हैं। अमेरिका में यह पता चल रहा है कि बहुत-से आतंकवादी समूह सोवियत संघ के पतन के बाद तैयार यूरेनियम की तस्करी करने लगे है। जो यूरेनियम बिजली उत्पादन के लिये होता है, उसमें 30-40 प्रतिशत शुद्धता से काम चल जाता है, मगर बम बनाने के लिये इसमें और शुद्धता होनी चाहिये। बहुत-से लोग रूस में बेरोजगार हो गये हैं, अब वे लोग क्या करेंगे? बम बनायेंगे, और क्या। पहले तो देशी बम थे, फिर प्लास्टिक बम आए, और अब परमाणु बम।

कर्मचारियों और श्रमिकों की बात कर रहा हूँ। ये बहुत तेज और दुस्साहसी लोग होते हैं, यह मेरा अनुभव है। अच्छा काम है कि बुरा काम है, पाप है कि पुण्य है, बीवी-बच्चों का क्या होगा, ये लोग कुछ नहीं सोचते, बस करना है। अफगानिस्तान में कितने लोग मर रहे हैं, कोई चिन्ता नहीं है। श्रीलंका में कमर में बम बाँध कर जाते हैं। अभी कुछ ही दिन पहले वहाँ के कुछ लोग नौसेना के जहाज के अन्दर चले गये और बम छोड़ दिया। खुद भी मर गये और जहाज भी उड़ गया। इस प्रकार के लोग हैं ये। यह तुम लोग नहीं कर सकोगे। माँ-बाप है, भाई-बहन है, बेटा-बेटी है, घर है, बैंक खाता है, हम कई चीजें सोचते हैं। वे लोग ये सब नहीं सोचते। उनकी खोपड़ी ऐसी नहीं है। यह जमाना इन लोगों का है, राजा मौनी होगा। प्रजातंत्र को हमारे पुराणों में मौनी राज कहते हैं। आखिर राष्ट्रपति क्या करता है जी? केवल हस्ताक्षर। मौनी राजा है न? हिन्दुस्तान में यह मौनी राज सौ साल तक चलेगा।

प्रजातंत्र पर कई जगह बहुत संकट आ रहे हैं। इसलिए यह ज्यादा दिन चलने वाला नहीं है। क्या संकट आ रहे हैं? डाकू-लुटेरे सब अपनी ताकत के बल पर संसद में पहुँच गये हैं। बीस-तीस लोगों की हत्या करने वाले वहाँ पहुँच गये हैं। प्रजातंत्र पर तो सारी दुनिया में संकट आ रहा है। अंत में लोग क्या करेंगे, उसे तो छोड़ेंगे ही। पहले धर्मतंत्र था, ब्राह्मण लोग राज करते थे। फिर राजतंत्र आया, राजतंत्र में राजा राज करता था। वह खत्म हुआ तो सैन्यतंत्र आया। सेना का राज भी खत्म हुआ, धर्मतंत्र, राजतंत्र सब खत्म हो गया, अब प्रजातंत्र आया है, और वह भी निरंकुश और अमर्यादित। तुम जो कहो वह भी ठीक, हम जो कहें वह भी ठीक। प्रजातंत्र आतंकवाद को समाप्त नहीं करता। अमेरिका में तो समाप्त नहीं हो पा रहा है। किसी भी देश में आतंकवाद समाप्त नहीं हुआ है, क्योंकि आतंकवाद हम ही लोग तो करते हैं न। कोई बाहर से थोड़े ही आता है।

प्रजातंत्र हमेशा रहेगा, यह हम नहीं मानते। प्रजातंत्र उसी देश में सफल होता है जिस देश में सभी लोग पढ़े-लिखे और समझदार हों। सब समझदार कैसे हो सकते हैं? यह तो असम्भव है। खैर पुराणों में ऐसा लिखा है कि सौ साल तक मौनी राज रहेगा, उसके बाद फिर भगवान का अवतार होगा, वे नयी व्यवस्था स्थापित करेंगे।

जब आत्मा फिर से शरीर में आना चाहती है तो क्या वह खुद किसी विशेष माँ के गर्भ का चयन करती है या फिर कर्म के अनुसार माता का गर्भ मिलता है?

कर्म के अनुसार वह माँ के गर्भ में आती है। आदमी जो कुछ कर्म करता है, वह सब एक गोदाम में चला जाता है। हमने तुम्हें दस साल पहले देखा था, इस बीच हमारी तुमसे बात नहीं हुई। आज हम दस साल के बाद मिले हैं तो याद रहेगा या नहीं? अन्दर गोदाम में उस पुरानी मुलाकात का कहीं बीज था, तभी तो। इसे स्मृति कहते हैं और यह स्मृति बीज के रूप में संस्कार बनती है। मनुष्य जो कुछ भी करता है, वह बीज रूप में उसके अन्दर जमा होता जाता है। इसे शास्त्र में सूक्ष्म शरीर कहते हैं। आँखों से दिखने वाला यह शरीर स्थूल शरीर है, इसके अन्दर जो है, उसे कहते हैं सूक्ष्म शरीर। और यह सूक्ष्म शरीर अपने आप न इधर जाता है, न उधर। उसे ले जाने के लिए एक और शरीर होता है, जिसे कहते हैं कारण शरीर।

यह बहुत ही कठिन विषय है, जिसे शास्त्रों में कहानियों के द्वारा कई तरह से समझाया गया है। सूक्ष्म, कारण और साक्षी, इन तीनों को मिलाकर जीवात्मा कहते हैं, यह जीवात्मा दूसरे शरीर में प्रवेश करती है। तंत्र शास्त्र में एक क्रिया है, मसान जगाना, जिसमें गुरु साधक को श्मशान घाट में ले जाता है। श्मशान में तो ज्यादा शव रहते नहीं, लोग जलाकर चले जाते हैं, इसलिए कब्रिस्तान में भी ले जाता है और वहाँ जाकर यह मसान जगाने की क्रिया करवाता है। किसी मृत शरीर को खड़ा करता है, उठाता है। वह किस प्रकार का शरीर है, किस जाति का है, स्त्री है या पुरुष है, किस बीमारी से मरा, बूढ़ा था या जवान या बच्चा, पहले यह सब जानना पड़ता है। तब फिर उस जगह पर मसान जगाते हैं और जगाकर उसको खड़ा करते हैं। थोड़ी देर के लिये उसमें प्राणों का संचार करते हैं, थोड़ी देर के लिये उसे जाग्रत करते हैं। फिर वह वापस चला जाता है।

वे किस आत्मा को लाते हैं?

किसी और की आत्मा को लाते हैं। जगाने के बाद वह शरीर ज्यादा समय जिन्दा नहीं रहता, वह किसी खास काम का भी नहीं होता। तंत्र में यह मसान सिद्धि एक गुप्त विषय है। शव को जगाते हैं, जब अभ्यास पक्का हो गया, तब फिर उसको वापस कर देते हैं। इसका मतलब यह कि उस साधक का अब आत्माओं पर नियंत्रण है। इसे चाहे अतीन्द्रिय शक्ति कहो या आध्यात्मिक, मगर यह होती है।

जीवात्मा का कोई स्वरूप नहीं होता, वह निराकार रूप में रहती है। जैसे गेहूँ का बीज ले लो, जब गेहूँ का बीज लगाते हो तो दूसरा गेहूँ का पौधा पैदा होता है, उसमें डालियाँ निकलती हैं, पत्ते पैदा होते हैं, यह सब कहाँ से निकला? बीज के अन्दर पौधा छिपा था न? पर वह साकार रूप में तो नहीं था न। अगर तुम गेहूँ को पीसो तो उसमें गेहूँ का पौधा दिखाई देगा क्या? नहीं। जब तुमने बीज को हथौड़ी से तोड़ा, तुमने कुछ नहीं देखा, क्योंकि असली गेहूँ तो निराकार होता है। जिस गेहूँ को तुम देखते हो वह उसका स्थूल शरीर है। उसके अन्दर में जो सूक्ष्म है, जो दिखाई नहीं देता, वह जीवात्मा है।

जीवात्मा ध्वनि तरंग की तरह निराकार होता है। हम जो बात कर रहे हैं, तुम्हें कुछ दिख रहा है क्या? मगर सुनाई दे रहा है न? क्योंकि कान में एक ऐसा यंत्र है जो ध्वनि तरंग को पकड़कर उसका रूपान्तरण करता है। वैसे ही दिल्ली या लन्दन से जो भी टीवी सिग्नल आता है, वह सैटेलाइट से डिश में आता है, फिर तुम्हारी टीवी में आता है, जहाँ टीवी के अन्दर का यंत्र उसे रूप और ध्वनि में रूपान्तरित करता है। जीवात्मा स्वयं निराकार है, परन्तु तंत्र में उस जीवात्मा को किसी तरह से पकड़ा जा सकता है। किस जीवात्मा को पकड़ा जाता है? जो मुक्त नहीं हुई है उसको। मुक्त का तात्पर्य यहाँ वेदान्त वाली मुक्ति से नहीं है। जैसे कलकत्ता की सड़कों और स्टेशनों पर बहुत-से लावारिस बच्चे भटकते रहते हैं, वैसे ही बहुत-सी आत्माएँ मरने के बाद भटकती रहती हैं। ऐसी आत्माओं को वे लोग नियंत्रित करते हैं। नियंत्रित करें या नहीं, उसके लिए एक प्रयोग करते हैं। मसान जगाना एक प्रयोग है। जब देखा कि मसान जगा दिया, तब फिर कई लोग उन आत्माओं से काम निकालते हैं, बहुत व्यापार करते हैं।

पर कहते हैं कि जो इस तरह का व्यापार करते हैं उनकी शक्ति नष्ट हो जाती है?

हाँ, उनकी शक्ति का नाश तो हो जाता है।

एक पारसी औरत है, उसके दो बेटे मर गये हैं। उनकी आत्माएँ उस औरत के पास आती हैं। वे लोग बातचीत करते हैं और औरत उसको लिख लेती है।

पारसी लोगों में श्राद्ध होता नहीं, और वे लोग मुर्दा को जलाते भी नहीं। पारसी लोग मुर्दे को एक ऊँचे टावर में फेंक देते हैं, जहाँ उसे चील-गिद्ध खाते हैं। यह कहना बहुत कठिन है कि कौन-सी आत्मा भटकेगी और कौन-सी आत्मा इस देह के बन्धन से मुक्त होगी। बहुत-सी आत्माओं का पुराने शरीर से बन्धन रहता है। वह घर में भटकती रहती है, आस-पास भटकती रहती है, छोड़कर नहीं जाती है। सब आत्माएँ नहीं, कोई-कोई। इसलिये जब आदमी मरता है तो ये जितनी भी अंत्येष्टि क्रियाएँ होती हैं, उनको करना होता है। वे आत्मा को गति देने में मदद करती हैं। अब जैसे किसी को कहें कि यहाँ से चले जाओ तो पहले उसके लिए रेलगाड़ी का टिकट बना देंगे और फिर रेलगाड़ी में बैठा भी देंगे। जब तुम्हें गाड़ी का टिकट देकर गाड़ी में बिठा दिया तो यही मतलब हुआ कि तुम जाओ न। यह विदाई दी जाती है आत्मा को। आत्मा जान जाती है कि मुझे 'जाओ' कहा है, याने मुझे जाना ही है।

यह प्रथा भारत में ही है, और जगह नहीं है क्या?

नहीं, श्राद्ध की प्रथा प्राय: हर धर्म में है। यहूदियों में है, मुसलमानों में है, ईसाइयों में है, सिक्खों में है। यह एक प्रकार से मृत व्यक्ति के प्रति श्रद्धा है। आजकल के आधुनिक लोग कुछ और कहते हैं, मगर करते सब हैं। हम लोग दूसरे धर्मों और सम्प्रदायों के बारे में ज्यादा नहीं जानते क्योंकि हमारा समाज उनके समाज से भिन्न है। लेकिन अगर तुम उनके बीच में रहो तब तुम्हें पता चलेगा कि सब धर्मों में कर्मकाण्ड होता है, अन्त्येष्टि क्रियाएँ होती हैं, प्रार्थनाएँ होती हैं। देखा नहीं, जब राजकुमारी डायना मरी तो कितना कर्मकाण्ड हुआ। मदर टेरेसा मरीं तो चर्च में ले गये, पादरी लोगों ने क्या-क्या कर्मकाण्ड किया। बाइबिल से पढ़ते हैं 'डस्ट टू डस्ट', फिर उनको अन्दर दफनाते हैं। कहीं सात दिन का कर्मकाण्ड होता है, कहीं दस

दिन का। मुसलमानों का चालीस दिनों का होता है। हर एक धर्म में जन्म से लेकर मरने तक कर्मकाण्ड होते हैं। पहले के जमाने में भी होते थे, आज के जमाने में भी होते हैं। हम लोग जानते नहीं हैं, इसलिए सोचते हैं कि उनके यहाँ नहीं होता होगा।

जैसे ही माँ गर्भ धारण करती है, वैसे ही जीवात्मा गर्भ में प्रवेश करती है या कुछ समय के बाद?

तीन महीने बाद। तीसरे महीने के अन्त में जीवात्मा का माँ के गर्भ में प्रवेश होता है। तुम अपने घर में कब जाओगे? जब छत बन जायेगी, खिड़की-दरवाजे लग जाएँगे, रंगाई-पुताई हो जाएगी, तभी न? वैसे ही शरीर जीवात्मा का घर है। वह अपने घर में कब जाएगी? जब लघु रूप में शरीर के सब अंग तैयार हो जायेंगे। तीन महीने में माँ के गर्भ में जो अंकुर होता है, उसमें मनुष्य शरीर के जितने भी अंग होते हैं, वे सब सूक्ष्म रूप में बन जाते हैं।

मृत्य के बाद मनुष्य की भावनाएँ भी उसके साथ जाती हैं क्या?

भावना कर्म से पृथक् होती है। भावना का पुनर्जन्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। भावना मनुष्य जीवन की प्रतिक्रिया है। किसी व्यक्ति के प्रति, किसी विचार के प्रति, किसी सुंदर वस्तु के प्रति, जन्म या मृत्यु के प्रति, पति या पत्नी के प्रति, स्त्री के प्रति, पुरुष के प्रति, पुत्र के प्रति, मित्र के प्रति या शत्रु के प्रति जो प्रतिक्रिया तुम्हारे मन में होती है, उसे भावना कहते हैं। यह भावना इस जीवन तक सीमित रहती है। मृत्यु के बाद भावना का पुनर्जन्म नहीं होता। भावना मनुष्य के जीवन में एक अध्यारोपण है। घर-परिवार-समाज परिस्थितियों की देन है, प्रकृति की देन नहीं है। इसका मतलब यह कि तुम्हारी जो भावना है, वह मृत्यु तक तुम्हारे साथ रहेगी, मृत्यु के बाद नहीं।

मृत्यु के बाद जीवात्मा केवल अपने कर्मों को ले जाती है। और उन कर्मों का जो मूल्यांकन है, वह भावना नहीं, प्रकृति करती है। कौन-सा कर्म अच्छा है और कौन-सा बुरा, इसका मूल्यांकन प्रकृति द्वारा होता है। तुमने तो अपनी भावना के आधार पर कह दिया कि यह काम अच्छा है और वह काम बुरा, यह व्यक्ति अच्छा है और वह व्यक्ति बुरा, यह पाप है और वह पुण्य। यह निर्णय तुम्हारी भावना ने लिया है, वह प्रकृति का निर्णय नहीं हो सकता। वह प्राकृतिक नियमों का आधार लेकर निर्णय देती है कि यह गलत है या सही।

प्रकृति जब कर्मों का मूल्यांकन करती है, जिसके आधार पर मनुष्य का दूसरा जन्म होता है, तब वह मूल्यांकन सामाजिक नैतिकता के आधार पर नहीं होता। आज से सौ साल पहले समाज जिस काम को गलत कहता था, आज वह सही हो गया है। इसलिए प्रकृति का जो मूल्यांकन होता है वह सामाजिक नियमों को नहीं, प्राकृतिक नियमों को आधार बनाकर किया जाता है।

धर्म क्या है और अधर्म क्या है, इसपर निर्णय लेना बहुत कठिन है। वेद अलग बात कहते हैं, पुराण अलग बात कहते हैं, ऋषि-मुनि भी एकमत नहीं हैं। इसलिये यह कैसे जानें कि जीवात्मा के साथ जो भी कर्म जाते हैं, उनके आधार पर उसे शुभ जन्म की प्रप्ति होगी या अशुभ जन्म की, शुभ फल मिलेगा या अशुभ। यह सामाजिक मूल्यों पर तो आधारित है नहीं। इसलिये न्याय-पद्धति में इस विषय पर कई बार विचार-विमर्श हुआ है। प्राकृतिक न्याय क्या है और सामाजिक न्याय क्या है? बड़े-बड़े विद्वानों और न्यायाधीशों ने इस पर पुस्तकें लिखी हैं। सामाजिक न्याय तो समझ में आ गया। हम लोगों ने निर्णय कर लिया कि यह काम खराब है, छः महीने जेल में डाल दो। यह सामाजिक न्याय हो गया। पर सामाजिक न्याय का आधार प्राकृतिक न्याय नहीं होना चाहिये क्या? इस विषय पर इस्लाम में चर्चा हुई है, ईसाई धर्म में चर्चा हुई है, वैदिक धर्म में चर्चा हुई है, आधुनिक विद्वानों में चर्चा हुई है।

वर्तमान न्याय पद्धति से सब सहमत नहीं हैं। न्याय और कानून का आधार क्या है? किस चीज को तुम धर्म कहते हो और किस चीज को अधर्म? किसी ने मेरे ही घर में आकर मेरी बीवी का बलात्कार किया, मैंने उसे गोली मार दी, बोलो गलत किया या सही। प्राकृतिक न्याय क्या कहता है, और सामाजिक न्याय क्या कहता है? यह तय करना बहुत मुश्किल है। कर्म का निर्णय, पाप और पुण्य का निर्णय बहुत मुश्किल है। परमात्मा के अलावा और कोई इसको नहीं जानता।

जीवात्मा जब दूसरे शरीर में प्रवेश करती है, तब वह अपने कर्मों को लेकर जाती है। अगर उसे बदला लेना है तो बदला लेती है। अब बदला कैसे लोगे? बेटा बन जाओ, सबसे बड़ा बदला यही है। खैर, गहना कर्मणो गतिः, कर्मों की गति जानना बहुत कठिन है। केवल इतना जानना चाहिये कि मनुष्य मरने के साथ मरता नहीं है, उसके पीछे उसका बीज चलता है, और कालान्तर में वह दूसरे शरीर में प्रवेश करता है। यह पक्की बात है।

जो लोग अपना सम्पूर्ण जीवन संगीत या नृत्य को समर्पित कर देते हैं, क्या उनको अगले जन्म में संगीत या नृत्य आसानी से सीख पाने में उसका लाभ मिलता है?

संगीत के प्रति समर्पण, या विज्ञान के प्रति समर्पण, यह कोई सामान्य चीज नहीं, यह एक विशिष्ट गुण है। इस जन्म में जो व्यक्ति संगीत को समर्पित हुआ, वह अगले जन्म में भी संगीत के प्रति समर्पित होगा, यह पक्की बात है। क्योंकि समर्पण की पहचान है त्याग। अगर तुमने संगीत में अपने को समर्पित किया है तो इसका मतलब केवल यह नहीं कि तुम्हें संगीत अच्छा-लगता है या दो-तीन घण्टे संगीत का अभ्यास करते हो। नहीं, तुमने उसके लिये क्या त्याग किया है? मान लो कि तुम्हें किसी लड़की से प्रेम है या माता-पिता से प्रेम है या पुत्र-पुत्री से स्नेह है। अब इस परिस्थिति में तुम्हें संगीत के सम्बन्ध में निर्णय लेना है। अगर तुम यह निर्णय ले लो कि उस लड़की से प्रेम-सम्बन्ध मेरे लिये गौण है, माता-पिता का सम्बन्ध गौण है, घर-गृहस्थी गौण है, संगीत ही मेरे लिये सबसे पहली चीज है, चाहे पैसा मिले या न मिले, नफा हो या नुकसान, दु:ख हो या सुख, तब जाकर अगले जन्म में संगीत तुम्हारे साथ चलेगा। यह नहीं कि संगीत तुम्हें बहुत पसन्द है, उसके प्रति बहुत समर्पण है, फिर किसी लड़के या लड़की से प्रेम हो गया, तो उसके बाद संगीत छूट गया। शादी हुई, बच्चा पैदा हुआ, तब से समय ही नहीं मिलता। ऐसे आदमी के साथ संगीत नहीं जायेगा।

समर्पण में सम्पूर्ण त्याग करना पड़ता है। जिस व्यक्ति में ऐसा समर्पण भाव होता है, उसे कहते हैं भ्रमर-कीट-न्याय। भ्रमर माने भौंरा या ततैया, और कीट माने कीड़ा। ततैया में स्त्री-पुरुष नहीं होते, इनकी जाति में प्रजनन प्रक्रिया नहीं होती। ये क्या करते हैं, मालूम है? ये मिट्टी ले लेते हैं, उसका छोटा-सा गोल घर बनाते हैं। फिर घास से छोटे-छोटे हरे कीड़े को पकड़ कर लाते हैं। किसी भी कीड़े को पकड़ लेते हैं, बस छोटा और हरा होना चाहिए। फिर उसे अन्दर घुसा देते हैं और बन्द कर देते हैं। थोड़ी देर बाद फिर खोलकर अन्दर जाते हैं और ऊं-ऊं-ऊं की गुंजन करते हैं। फिर उसको बन्द कर देते हैं। कुछ दिन तक ऐसा लगातार करते हैं। उसके बाद वह कीड़ा भौंरा बनकर बाहर निकलता है! ये जो भौंरे हैं, सभी कीड़ों से बने हैं।

भ्रमर-कीट-न्याय का यही सिद्धान्त है कि जब उस कीड़े को केवल उस भौंरे के गुनगुनाने की आवाज सुनायी देती है, वह उसमें इतना तन्मय हो

जाता है कि कालान्तर में स्वयं भौंरा ही बन जाता है। इसलिए हम लोग कहते हैं न कि ॐकार का उच्चारण करो, उच्चारण करते-करते तुम ॐ स्वरूप हो जाओगे। यह भ्रमर-कीट-न्याय सभी चीजों में लागू होता है, चाहे तुम अध्ययन करो या संगीत, नृत्यकला अथवा शिल्पकला में जाओ। चाहे किसी भी विषय में जाओ, वृत्ति तदाकार होनी चाहिए। न इधर देखना, न उधर देखना, इसे कहते हैं एकाग्र वृत्ति। पूरी तन्मयता होनी चाहिए, तब आदमी इस जगत् में भी सिद्धि प्राप्त करता है और फिर अगले जन्म में भी उसी चीज को प्राप्त करता है।

जो संन्यास जीवन यापन करता है, वह अगले जन्म में फिर संन्यासी होता है क्या?

नहीं, यह जरूरी नहीं है। संन्यासी फिर संन्यासी बने, यह कोई पक्की बात नहीं है, क्योंकि संन्यास लेने के बहुत-से उद्‌देश्य होते हैं। जहाँ संन्यास का उद्‌देश्य पूर्णतया आध्यात्मिक हो, जहाँ व्यक्ति का लक्ष्य आत्मज्ञान, ईश्वर भक्ति, ब्रह्मचर्यविद्या, केवल वही हो और कुछ नहीं, तब वह दुबारा संन्यासी बनेगा। मगर इसका मतलब यह नहीं कि वह फिर संन्यास सम्प्रदाय में जायेगा। नहीं, संन्यास का मतलब केवल गेरू पहनना या सिर मुड़ाना नहीं होता। संन्यास सम्प्रदाय भी होता है, जैसे हम दशनामी सम्प्रदाय में हैं। संन्यास आश्रम भी होता है, 75 साल के बाद बूढ़े को कहते हैं कि संन्यासी हो जाओ। एक संन्यास वृत्ति या भावना भी होती है। जैसे महात्मा गाँधी की वृत्ति संन्यासी जैसी थी। सेवा के प्रति, पैसे के प्रति संन्यासी जैसी वृत्ति थी। जो भी काम वे करते थे, संन्यासी की तरह करते थे।

तो संन्यास सम्प्रदाय, संन्यास आश्रम और संन्यास वृत्ति, ये तीन अलग-अलग चीजें हैं। संन्यास लेने के बाद केवल कपड़ा बदला, सर मुड़ाया, तो कोई जरूरी नहीं है कि अगले जन्म में वह उस वृत्ति, उस संस्कार को लेकर पैदा हो। मैंने कई लोग देखे हैं जो संन्यास वृत्ति को लेकर पैदा होते हैं। बचपन से ही उनके मन में त्याग और ज्ञान की भावना होती है। वे संन्यासी हैं, यह पक्की बात है। मगर बहुत-से लोग ऐसे होते हैं कि घर में कोई मर गया या काम में मन नहीं लगा तो सोचते हैं, 'छोड़ो भाई सब कुछ, आश्रम चलते हैं।' आजकल तो एक नया फैशन हो गया है। संन्यास में लोग इसलिए आ रहे हैं कि विदेश जाने को मिलता है। विदेशों में

संन्यासियों की बहुत इज्जत है। आजकल वहाँ पादरियों को तो कोई पूछता ही नहीं है, चर्च में कोई जाता नहीं। जबकि स्वामी विवेकानन्द जी, स्वामी रामतीर्थ जी और स्वामी शिवानन्द जी जैसे महात्माओं के कारण संन्यासियों की बहुत प्रतिष्ठा है, योग के प्रति बहुत निष्ठा है। इसलिए आजकल बहुत-से लोग संन्यास-मार्ग में आते हैं। ऐसे लोग मेरे पास आते हैं तो मैं चाँटा मारकर भगा देता हूँ।

संन्यास कई स्वार्थपूर्ण उद्‌देश्यों से लिया जाता है। कई तो चोर-डकैत होते हैं, पुलिस का वारन्ट निकलता है तो छिपने के लिए आ जाते हैं। बहुत-से लोग ऐसे होते हैं जिनको घर से निकाल दिया जाता है, बूढ़ा हो गया, काम का नहीं है या औरत विधवा हो गयी, भाई-भाभी रखने को तैयार नहीं, तो वे लोग भी आकर संन्यास ले लेते हैं। कई लोग सोचते हैं कि बेटा काम नहीं करता, चलो आश्रम में रख दो। संन्यास सम्प्रदाय में तो अनेक प्रकार के लोग आते हैं। मगर संन्यास का जो मुख्य प्रयोजन होता है, वह यही कि मनुष्य सदा ब्रह्मविद्या का चिन्तन करे, ऊँची चीजों का चिन्तन करे। यदि ऐसा होगा तो फिर वह अगले जन्म में जरूर संन्यासी होगा।

कई बार कहा जाता है और कहानियों में भी आता है कि मरते समय व्यक्ति जैसा सोचता है, उसका अगला जन्म वैसा ही होता है। क्या यह सत्य है?

हाँ, यह सच है। आखिर जिसने जिन्दगीभर बदमाशी की वह मरते समय राम-राम थोड़े ही कहेगा। छोटा-सा उदाहरण दूँ, तुम रात में सोते हो तो तकिये पर सर रखकर क्या सोचते हो? वही जो तुम्हारा व्यक्तित्व है। आदमी जब बिस्तर पर जाता है, शान्ति के क्षणों में शयन करता है, तब उसके मन में वही विचार आयेंगे जो उसके व्यक्तित्व का आधार हैं। इसी प्रकार जब आदमी मृत्यु-शैय्या पर होता है, उस समय उसके मन में वही विचार आते हैं जो उसके व्यक्तित्व के, उसके आचरण के आधार होते हैं। गीता में लिखा भी है–

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
य: प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशय: ॥ 8.5॥

भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन से यह जो कहा है कि अंतकाल में मेरा स्मरण करने वाला मुझे प्राप्त करता है, वह बिल्कुल सही है।

स्वामीजी, इस संन्यास वृत्ति को कैसे ग्रहण किया जाय, इसे कैसे पनपाया जाय?

संन्यास वृत्ति को पनपाने का कोई उपाय नहीं है। संन्यास जीवन की परिपक्वता का नाम है। जैसे केले का पेड़ लगाया तो पहले फूल निकलेगा, तब उसमें से केले का फल निकलेगा, फिर उस केले के फल को पकने में समय लगेगा। उसी तरह जीवन की तैयारी गृहस्थाश्रम है, और जीवन की परिपक्वता संन्यास। गृहस्थाश्रम प्रयोग है, जिसकी पूर्णता और परिपक्वता संन्यास आश्रम में होती है। संन्यास को और परिपक्व बनाने का कोई दूसरा रास्ता तो मुझे मालूम नहीं है। सत्संग करो, स्वाध्याय करो, विवेक-वैराग्य विकसित करो, यह सब ठीक है, मगर संन्यास कोई बी.ए. या एम.ए. का कोर्स नहीं होता। संन्यास तो धीरे-धीरे अपने आप ही पनपता है। सन्त ज्ञानेश्वर और आदिगुरु शंकराचार्य बचपन से ही संन्यासी थे। भगवान बुद्ध छत्तीस साल में संन्यासी बने। संन्यास तो अपने अन्दर से स्वयं प्रकट होता है। जबरदस्ती किसी को मार-मार कर संन्यासी नहीं बनाया जा सकता।

गुरु और भगवान को एक ही माना जाता है न। तो अगर कोई गुरु की छत्रछाया में रहने के लिए ही संन्यास ले, तो यह आध्यात्मिक विचार है या कुछ और?

हाँ, यह आध्यात्मिक विचार है, क्योंकि किसी भी धर्म में, विशेषकर हमारे वैदिक धर्म में गुरु का महत्त्व सबसे अधिक है। उपनिषदों में कहा भी गया है–

यस्य देवे पराभक्तिः यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्था प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

सब जगह गुरु का जो महत्त्व है, वह ईश्वर से अधिक बताया है। इसलिए यह बात तो ठीक है कि गुरु के साथ रहना स्वयं में ही एक संन्यास है। पर वास्तव में संन्यास की व्याख्या क्या है? लोग तो संन्यास को समझते नहीं हैं। सच कहा जाए तो सबसे बड़ा संन्यास तो माँ का होता है। वह अपने बच्चे के लिए, अपने पति के लिए, अपने परिवार के लिए कितना त्याग करती है। जो आदमी दूसरों के लिए अपने स्वार्थ का त्याग करे, वह संन्यासी है। और जब वह आदमी केवल अपने लिए, अपनों के लिए परिश्रम करे, वह स्वार्थ है। संन्यास में स्वार्थ नहीं होना चाहिए। संन्यास में परमार्थ प्रधान होता है।

संन्यासी स्वयं के लिये नहीं जीता, वह सिर्फ दूसरों के लिये जीता है। यह संन्यास की प्रमुख परिभाषा है। माँ अपने लिए थोड़े ही जिन्दा रहती है। सब माताओं की बात तो मैं नहीं कह रहा हूँ, मगर प्राय: वह सबके खाने के बाद खाती है, सबके सोने के बाद सोती है, सबके जागने के पहले जागती है। माँ का त्याग तो बहुत बड़ा त्याग है।

अब इतना ही फर्क है कि वह केवल अपनों के लिए करती है, पति अपना, पुत्र अपना, घर अपना, परिवार अपना। उसका स्वार्थ है, इसलिए पूर्ण संन्यास उसमें नहीं उतरा। इसलिए दु:खी-सुखी दोनों रहती है। यद्यपि उसमें सारे गुण विद्यमान् हैं, उसने अपने स्व को त्याग दिया है, स्व को हटा दिया है, मगर वह सिर्फ अपनों के लिए त्याग करती है। यहीं पर वह बंध जाती है, यही उसकी सीमा है। माँ का जो त्याग है, ठीक यही चीज अगर किसी व्यक्ति में हो, पर अपनों के बजाय परायों के लिए हो, तो वह संन्यासी है।

पराये लोगों के साथ, अनजान लोगों के साथ आत्मभाव का व्यवहार करना ही संन्यास है। तुम्हारे घर में कोई बीमार पड़ा, हमें मालूम पड़ा, मगर वह अनुभूति नहीं हुई जो तुम्हें हुई है। हमें पता चला क्योंकि हम दोस्त हैं, मगर तुम्हें जो पीड़ा, तकलीफ, परेशानी और चिन्ता है, वह मुझे नहीं है, क्यों? क्योंकि तुम्हारा उस व्यक्ति के प्रति आत्मभाव है, मेरा नहीं है। आत्मभाव माने अपने जैसा। जब मेरा उस व्यक्ति के प्रति अपने जैसा भाव होगा, तब मुझे वही अनुभूति होगी जो तुम्हें हुई है। अनुभूति का आधार आत्मभाव होता है। जो अनुभूति माँ को अपने पुत्र, पति, इत्यादि के लिए होती है, वही अनुभूति उसे अगर दूसरों के लिए हो जाए तो वह संन्यासिनी है। शास्त्रों में संन्यास की प्रमुख परिभाषा यही है। जैसे नदियाँ अपना पानी नहीं पीतीं, वृक्ष अपना फल नहीं खाते, वैसे ही संन्यासी परोपकार के लिए जीवित रहते हैं।

तरुवर फल नहीं खात है, नदी न संचै नीर ।
परमारथ के कारने साधुन धरा सरीर ॥

संन्यासी दो चीजों को लेकर जीवित रहता है, पहला ब्रह्मचिन्तन और दूसरा परोपकार। आदिकाल से हमारे यहाँ संन्यासी की यही परिभाषा रही है और शायद अन्य धर्मों में भी यही है। बीच में श्रद्धा का अभाव हुआ था, मगर अब तो हिन्दुस्तान में प्राय: सब स्वीकार करते हैं। और स्वीकार भी इसीलिए किया कि योग पहले तो विदेशों को निर्यात हुआ, तब यहाँ के लोगों ने



उसकी महिमा जानी। अब तो स्कूल, कॉलेज, सब जगह योग सिखाते हैं। अगले कुछ वर्षों में सभी स्कूलों में योग शिक्षा चालू हो जाएगी। मुंगेर के लोग पाठ्यक्रम बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। मजे की बात यह है कि जो बीमारियाँ आधुनिक चिकित्सा विज्ञान से दूर नहीं होती हैं, वे योग से दूर हो जाती हैं। खैर यह तो इसका एक पक्ष है, उपचारात्मक। मगर योग का दूसरा पक्ष भी है, यह मेधा, स्मृति और बुद्धि के लिए बहुत अच्छा है।

ऐसा समझो कि योग का उद्धार विदेशी जातियों ने ही किया है। अगर यूरोप के लोग योग को स्वीकार नहीं करते, तो यहाँ के लोग भी नहीं करते। यहाँ के लोग तो योग का विचित्र मतलब लगा देते थे, कहते थे, क्या साधु बनना है जो योग करोगे? पर इन विदेशियों ने योग पर अनुसंधान किया और योग के महत्त्व को स्वीकार किया।

एक-डेढ़ सौ साल पहले की बात है, कई साधु लोग हिन्दुस्तान से अफगानिस्तान और ईरान होते हुए यूरोप जाते थे। डेनमार्क और स्वीडन जैसे स्कैण्डीनेवियन देशों में एक प्रथा है कि उनके घरों में एक अतिथि-पुस्तिका रहती है, जब उनके घर में कोई विदेशी अतिथि आता है, तो उससे अपनी भाषा में चार-पाँच लाइन लिखवाते हैं। हम जाते थे तो हम भी लिखते थे। उन पुस्तिकाओं में हमने कहीं अलीगढ़ के योगी बाबा तो यह बाबा तो वह बाबा की लिखी लाइनें देखीं। पतंजलि योग सूत्रों का डैनिश भाषा

में अनुवाद भी उन लोगों के घर में विद्यमान है। कहने का मतलब यह कि बहुत पहले ही यूरोप में योग पहुँच चुका था। सोवियत संघ बनने के पहले लाटविया, लिथुएनिया, एस्टोनिया, स्लोवेनिया, क्रोएशिया जैसे देशों से जो चिट्ठियाँ हमारे गुरुजी के यहाँ आती थीं, वे आज तक हैं। वहाँ योग आश्रम थे। अंग्रेजों की महारानी विक्टोरिया ने स्वयं यहाँ से योगी बुलाकर आसन सीखा है। उनके संस्मरण में है। तो योग तो बहुत पहले वहाँ पहुँच चुका था। मगर स्वामी विवेकानन्द जी के बाद उसमें अचानक गति आयी। अब तो वहाँ जो योग की पुस्तके छपती हैं, वे हजार-दो हजार नहीं छपती, अस्सी-नब्बे लाख छपती हैं। इतनी किताबें बिकती है वहाँ।

उन लोगों का योग में दृढ़ विश्वास है, क्योंकि उनके पास कोई धर्म तो है नहीं आज। यूरोप में आज कोई धर्म नहीं है। ईसाई धर्म तो आज मात्र एक संस्था है। जन-साधारण के विश्वास के आधार के लिए किसी धर्म की आवश्यकता पड़ती है। व्यक्ति पूछता है, जन्म क्या है, पुनर्जन्म क्या है, मृत्यु क्या है? उनके पास कोई जवाब ही नहीं है। हम लोग जाकर जवाब देते हैं। मनुष्य की जिज्ञासा को आधार चाहिए। सृष्टि में ऐसी कौन सी चीज है, जिसे मनुष्य जानना चाहता है। इसका जवाब तो दो ही व्यक्ति दे सकते हैं, एक वैज्ञानिक, दूसरा सन्त। आध्यात्मिक चीजों का जवाब सन्त ही दे सकते हैं और भौतिक चीजों का जवाब वैज्ञानिक दे ही रहे हैं।

इसके अलावा एक और बात हुई है, जिस पर आप लोगों का ध्यान नहीं जाता। किसी भी देश में रहने वाले लोग उस देश के मूल निवासी हों, यह जरूरी नहीं। हमेशा से लोग बाहर गये हैं, बाहर से आयें हैं। यह कई कारणों से होता है, राजनैतिक उथल-पुथल से होता है, महामारी के फैलने से होता है, प्राकृतिक विपदाओं की वजह से होता है, भूकम्प या बाढ़ के आने से होता है। कई कारणों से लोग एक देश को छोड़कर दूसरे देश जाते हैं। हिन्दुस्तान में ही देख लीजिए, दो-तीन करोड़ तो इसी शताब्दी में स्थानांतरित हुए हैं। इसी तरह से महाभारत युद्ध के बाद हिन्दुस्तान से बहुत बड़ा पलायन हुआ है। वह युद्ध तो गृह युद्ध था। गृह युद्ध के बाद तो पलायन होता ही है। यह एक राजनैतिक सिद्धांत है। कहाँ हैं वे लोग जो कौरवों के हारने के बाद, पाण्डवों के जीत जाने पर, द्रौपदी और भीमसेन जैसे बदला लेने वाले लोगों के जिन्दा रहने पर लाखों की संख्या में यहाँ से भागे? इतिहासकारों ने इस पर चिन्तन नहीं किया है, किन्तु हम उनसे मिले हैं। आयरलैंड के लोग कहते हैं कि महाभारत के

बाद हमारे पूर्वज यहाँ आये थे। उनको आज भी याद है, यह वहाँ की परम्परा है। आयरलैंड को अल्स्टर भी कहते हैं। अब तो वह दो हो गया है, उत्तर और दक्षिण। उत्तर प्रोटेस्टेंट है और दक्षिण कैथोलिक।

दूसरी बात, हिन्दुस्तान के वैज्ञानिक, दार्शनिक, संगीतज्ञ, नर्तक, नाट्यकार और कलाकार पिछले आठ सौ सालों में लाखों की संख्या में इस देश से निकले हैं। अशोक के समय इस देश की सरकार ने तो शस्त्र-अस्त्र बनाना ही बन्द कर दिया था। अस्त्र-शस्त्र बनाने वाले लोग क्या करते, सब निकले यहाँ से। जितने भी लोगों को बौद्ध सरकार के आने से नुकसान हुआ, वे सब चले गये। हिन्दुस्तान का तो राजनैतिक निरस्त्रीकरण हुआ, यह तो आप जानते हैं न। आखिर जो तीर, तलवार और भाले बनाते थे, वे क्या करेंगे? वे कहाँ गये? वैदिक विचारक दक्षिण भारत भागे। और जो नाचने-गाने वाले होते हैं, यह तो सतत्-स्वतन्त्र समुदाय है, उस पर तो समाज का नैतिक ढांचा काम करता ही नहीं है। मुसलमानों के आने के बाद ये लाखों की संख्या में भागे, क्योंकि मुसलमानों के आने से नाचने वालों के रहने का तो सवाल ही नहीं उठता। जो औरतों के चेहरे पर घूँघट लगायें, वे औरतों को नाचने कैसे दें? यह सब इतिहास की बात कह रहा हूँ, इतिहास से बाहर नहीं जा रहा हूँ।

इन सब लोगों को आजकल जिप्सी कहते हैं। ये आज यूरोप और रूस में फैले हैं, और इनकी जाति को रोमानो भी कहते हैं। ये एक जगह नहीं टिकते हैं। ये लोग दो-चार साल कहीं रहेंगे, अपना तम्बू लगा दिया, गाड़ी रख दी, खाना-वाना वहीं बना लेते हैं, नाचते-गाते हैं, छोटा-मोटा काम किया, थोड़ा पैसा कमाया, फिर चल दिये। कहीं पर अटके नहीं। ये भारत के वंशज हैं। जब हम इन देशों में जाते थे, उन लोगों से मिलते थे, तो वे लोग पानी से हमारे पैर धोते थे। इतना ठण्डा देश, मुझे जूता-जुराब खोलना पड़ता था और वे लोग बाल्टी में आठ आना डालकर लाते थे। अपने यहाँ नियम है न कि जब गुरु के यहाँ जाते हैं तो सोना-चाँदी ले जाते हैं। उसके बाद वे पैर धोते थे। वे लोग जानते हैं कि वे यहाँ के हैं। यहाँ का सारा इतिहास जानते हैं। इस पर अध्ययन हुआ है, उनकी भाषा पर अध्ययन हुआ है। जिस-जिस देश में गये हैं, उस-उस देश की भाषाओं से प्रभावित तो हुए हैं। पर आज इतिहासकारों ने जो पुस्तकें उनपर लिखी हैं, बिल्कुल यही बात इंगित करती हैं।

यह सब कहने का तात्पर्य यह कि यूरोप में आज योग और सनातन धर्म के प्रति लोगों की जो इतनी निष्ठा और आकर्षण है, उसकी वजह यही है।

यहाँ से किसी कारण लोगों ने पलायन किया है, चाहे महाभारत के समय किया हो, चाहे बौद्ध काल में किया हो, चाहे मुगल काल में किया हो, चाहे अन्य राजनैतिक कारणों से किया हो। यही मुख्य कारण है। एक चीज पर विचार करो। जब ईसाई धर्म हिन्दुस्तान आया तो उसका विरोध हुआ। इस्लाम आया, विरोध हुआ। मगर वैदिक धर्म का पाश्चात्य जगत् में कहीं भी विरोध नहीं हुआ है। खासकर बुद्धिजीवी वर्ग से। जबकि यहाँ ईसाई धर्म का विरोध हुआ है, इस्लाम का विरोध हुआ है और बौद्ध धर्म का तो इतना विरोध हुआ कि उसे यहाँ से पूरी तरह हटा ही दिया गया। और वहाँ वैदिक धर्म अच्छी तरह से पनप रहा है, लोग संन्यास ले रहे हैं, नाम बदल रहे हैं, रामजी की पूजा किये जा रहे हैं, रामचरितमानस पढ़ रहे हैं, श्रीमद्भगवद् गीता पढ़ रहे हैं। गीता तो मानो उनकी बाइबिल हो गयी है। गीता का वहाँ बहुत आदर है। वे भगवद् गीता के दर्शन को मानते हैं। लाखों की संख्या में वहाँ के लोग हिन्दुस्तान में आकर आश्रमों में रहते हैं। मांसाहारी लोग यहाँ का दाल-भात खाते हैं, क्यों? वैदिक धर्म का क्यों विरोध नहीं हुआ? क्योंकि वे लोग किसी समय इस देश के संस्कार लेकर गये हैं। यह बात माननी पड़ेगी।

देखा जाए तो हमारे धर्म का विरोध बहुत सरल है। वैदिक धर्म का विरोध तो सबसे आसान काम है, बस साकार-निराकार का मुद्दा खड़ा कर दो। ईश्वर को निराकार कहना तो सरल है। हम तुमसे कहें कि ईश्वर निराकार है, तुम कहोगे, हाँ होता है। मगर साकार कैसे होता है? भगवान जन्म लेते हैं, फिर शादी करते हैं, फिर उनकी स्त्री को कोई भगाकर ले जाता है, यह समझ में ही नहीं आता है। हमारा वैदिक दर्शन समझदार को ही समझ में आता है। यह नासमझ की समझ में नहीं आयेगा। अब भगवान को क्या जरूरत थी अवतार लेने की, वहीं से मिसाइल भेजकर रावण को मार डालते। उनको क्या जरूरत थी जन्म लेने की, वन जाने की, बन्दरों की मदद लेने की? यह समझ में नहीं आता है। इसलिए तुलसीदासजी कहते हैं कि निराकार अत्यन्त सुगम और सरल है, इसे स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं होती, जबकि साकार बहुत दुर्लभ है। समझ में नहीं आता है। वैदिक धर्म की यह विशेषता होते हुए भी इसका कहीं भी कोई विरोध नहीं हुआ। यह अपने में एक उपलब्धि है, जिसके कारण का संकेत मैंने दे दिया है।

– 21 अक्टूबर, 1997



अध्याय 11

जल्दी सोना और जल्दी उठना, आदमी को स्वस्थ, सम्पन्न और बुद्धिमान् बनाता है। हम 7 बजे सो जाते हैं और 12 बजे उठ जाते हैं। बचपन से ही हमारी आदत है। हम मुंगेर आश्रम में भी 7 बजे सो जाते थे, अधिक से अधिक 8 बजे, और 12 बजे उठ जाते थे। फिर नहा-धो कर अपना टाईपिंग, संपादन, पत्राचार, एकाउँट्स आदि का काम देखते थे। सुबह होते-होते सब काम कर लेते थे, क्योंकि दिन में तो लोगों से मिलना पड़ता था। दिन में काम नहीं हो पाता था, इसलिए रात में ही बैठकर अपना प्रूफ रीडिंग, हिसाब-किताब वगैरह की जाँच कर लेते थे।

वैसे भी जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है, नींद कम हो जाती है न?

नहीं, ऐसा नहीं है। जब आदमी ज्यादा उम्र का होता है तब नींद इसलिये कम होती है कि वह शारीरिक कार्य नहीं करता। अगर आदमी घूमता रहे तो ऐसा नहीं होगा। ज्यादा उम्र में सबसे जरूरी चीज है, घूमना। सबेरे और शाम निश्चित रूप से घूमना चाहिए। नहीं देखते हो बूढे लोग क्या करते हैं? सबेरे कहीं चले जाते हैं, शाम को कहीं चले जाते हैं, कभी किसी की पार्टी में चले जाते हैं, कभी किसी की शादी में चले जाते हैं। यह उनके लिये एक प्रकार की शारीरिक क्रिया हो जाती है। पुरानी गाड़ी को अगर पड़े रहने दोगे तो उसमें जंग लग जाएगा, कोई-न-कोई पुर्जा खराब हो जाएगा। इसलिये ज्यादा उम्र वालों को कम उम्र वालों से ज्यादा चलना चाहिये। उनकी प्राणशक्ति कम हो जाती है, रक्त का प्रवाह धीमा हो जाता है। और कुछ नहीं तो बदन में दर्द हुआ, तो उससे भी नींद कम आती है। दिन में सोते हैं,

इसलिये भी रात में नींद कम आती है। हमें जल्दी सोने की आदत बचपन से है, बचपन से पाँच घण्टे सोते आए हैं।

जर्मनी में एक आदमी था, जिसकी कोई दुर्घटना हुई। उसके बाद वह कई सालों तक नहीं सोया। फिर भी वह स्वस्थ था, उसे कोई आलस्य भी नहीं था?

यह प्रकृति की एक अनोखी घटना है। ऐसा नहीं होता कि नींद नहीं आती। नींद का सम्बन्ध मुख्यत: मस्तिष्क से होता है। जब मस्तिष्क में तरंगें शून्य तक पहुँचती हैं, जिन्हें डेल्टा तरंगें कहते हैं, तब मस्तिष्क में विद्युतचुम्बकीय क्रियाएँ कम हो जाती हैं। जब मस्तिष्क में विद्युतचुम्बकीय क्रियाएँ खत्म हो जाती हैं तब उस समय हृदय भी धीमा हो जाता है। हृदय की गति धीमी हो जाने से उसे आक्सीजन की कम जरूरत पड़ती है। तुमने देखा होगा कि कई बार जब आदमी सोता है तो कितनी जोर से श्वास लेता है। उसका मतलब होता है कि उसका दिमाग सोया नहीं है। जिसका दिमाग सोया नहीं रहता वह बहुत ज्यादा खर्राटे मारता है। खर्राटे का मतलब होता है ऑक्सीजन को अंदर दबाव से ले जाना, जबकि वास्तविक नींद की अवस्था में ऑक्सीजन की खपत बहुत कम होती है।

स्वामीजी, कुछ लोग कहते हैं कि उनको स्वप्न बिल्कुल नहीं आते?

नहीं, स्वप्न सब को आते हैं। स्वप्न रहित निद्रा नहीं होती। निद्रा अगर सौ प्रतिशत शून्य डेल्टा तरंगों पर पहुँच जाए तब स्वप्न नहीं आता है। और डेल्टा तरंग थोड़ी भी जागेगी तो चेतना भी रहेगी, स्वप्न भी रहेगा।

अपनी जरूरत तक या उससे थोड़ा ज्यादा पैसा कमाना तो अच्छा है, पर कई लोग हैं जिनके न कोई आगे है न पीछे, जानते हैं कि हम मरने वाले हैं, फिर भी वे लोग इतना धन इकट्ठा करने में अपना माथा क्यों मारते हैं? पैसा कमाने का लालच नहीं जाता। क्या यह उनका मानसिक रोग है?

पैसा एक नशा है। किसी को पैसे का नशा होता है, तो किसी को सत्ता का। नशा माने आदत हो जाती है। जैसे शराब पीने वाले आदमी के लिये उस नशे को छोड़ना बहुत मुश्किल होता है, उसी तरह से सत्ता का भी असर होता है।

कोई यह नहीं कहेगा कि पाँच-दस साल मंत्री रह गये, रुपया-पैसा बना लिया, चलो बस हुआ। सत्ता और राजनीति को छोड़ने में कई मुश्किलें आती हैं।

इसी तरह पैसा भी एक नशा होता है। आदमी को कितना भी पैसा मिले वह कम ही लगता है। अगर करोड़पति के पास केवल एक करोड़ रह जाए तो कहेगा क्या हो रहा है, सारा पैसा चला गया। और यह प्रवृत्ति केवल अमीरों में हो, ऐसी बात नहीं। अमीर लोग आजकल अपना पैसा स्विट्जरलैंड के बैंक में या ऑस्ट्रेलिया में या सोने के बिस्कुट बना कर घर के नीचे तहखाने में रखते हैं, तो गरीब किसान-मजदूर भी कोई कम नहीं। ये लोग घर की बूढ़ी औरत को कभी भी घर से बाहर नहीं निकालते हैं। कहीं भी जाएँगे तो वह घर में रहेगी, रखववाली करने वाले कुत्ते की तरह। जहाँ उनका चूल्हा होता है, उसके नीचे गाड़ते हैं सोना। पहले एक गड्ढा करके राख बिछा देते हैं, जितना भी सोना वगैरह होता है वहाँ रख देते हैं, फिर उसके ऊपर राख बिछा देते हैं, उसके ऊपर खूब मिट्टी डाल कर लीप देते हैं और उसके ऊपर फिर चूल्हा बना लेते हैं। यह उन लोगों की तिजोरी होती है। ये लोग घर में खिड़की नहीं बनाते हैं। हमने यहाँ जितने लोगों का घर बनवाया, उन लोगों ने खिड़की के लिये मना कर दिया कि बाहर से कोई देख लेगा। बड़ी मुश्किल हो जाती थी। हम लोग तो हवा के आने-जाने के लिये खिड़की रखते हैं, लेकिन ये लोग नहीं रखने देते। अन्दर जाते ही भयंकर अंधेरा रहता है। और वहाँ कोने में एक बूढ़ी औरत बैठी रहती है, पहरा देते रहती है।

हर हिन्दुस्तानी के घर में कम-से-कम दो तोला सोना जरूर रहता है। हिन्दुस्तान में कंगाल से कंगाल भी खाली नहीं रहता। शादी पर सोना नहीं दिया जाय तो अपशगुन माना जाता है। हिन्दुस्तान में आम आदमी के पास सोना बहुत है, जिसे वह सरकार को देने के लिये तैयार भी नहीं है। जितनी भी सरकारें हैं, चाहे वे अमेरिका की हों या यूरोप, जर्मनी या जापान की, वे उद्योगपतियों को दृष्टि में रखकर ही कानून बनाती हैं। आखिर उन्हीं से फायदा है, वे ही चुनाव के समय उनकी मदद करते हैं। इसलिए सरकार उनके आदमियों को अहम् पदों पर रखती है, बैंक का महाप्रबंधक बना देती है, ठेका वगैरह दिला देती है। उद्योगपतियों की उनपर कृपा दृष्टि रहती है और उनकी उद्योगपतियों पर। सब जगह यही हाल है। फर्क केवल इतना है कि विदेशी सरकारों के पास इतना पैसा है कि वे अपनी जनता के लिए भी कुछ करती हैं।

जो देश शुरू से पूंजीवादी रहा है, वहाँ राजा का चुनाव निश्चित रूप से उद्योगपति ही करते हैं। पर जो समाजवादी देश हैं, वहाँ राजा कौन होगा? कहने को तो इसका निर्णय प्रजा करती है। राजनेता लोग जब संसद में जाते हैं तो बड़े उत्साह के साथ जाते हैं कि कुआँ बनायेंगे, नलकूप खुदवायेंगे, गरीबों के लिए मकान बनायेंगे, यह करेंगे, वह करेंगे। लेकिन संसद में जाने के बाद, मंत्री बनने के बाद उन्हें असलियत मालूम पड़ती है। और असलियत यह है कि उनका सचिव उनकी मेज पर बड़ी-बड़ी कम्पनियों की फाइलें रखता जाता है, और उन्हें निर्णय लेना पड़ता है। कौन-सा हवाई जहाज खरीदें, किससे पुर्जे खरीदें, किससे बम खरीदें।

जितनी भी सरकारें होती हैं, उन्हें उद्योगपति और बड़े-बड़े व्यापारी लोग ही बनाते हैं। वोट तुम लोग देते हो, मगर निर्णय पैसे वाले लोग लेते हैं। जिसको वे चाहें, वही आएगा। यह सब जगह होता है, कोई नयी बात तो है नहीं। यह हमारी सरकार है, हमने नेता चुनकर भेजा है, यह कहना पागलपन है। जो गरीब है, वह तब तक गरीब ही रहने वाला है, जब तक सरकार के पास पैसा न हो। और हिन्दुस्तान की सरकार के पास पैसा नहीं है।

ऐसी बात नहीं कि अमेरिका में गरीब नहीं हैं। वहाँ भी गरीब हैं। सड़क पर सोने वालों की कमी न तो फ्रांस में है और न इंग्लैण्ड में। चोर-डाकुओं की कमी नहीं है। हम जब लॉस एंजिलीस में गरीबों की बस्ती में गये तो राम राम! हैरान रह गये। मगर कुल मिलाकर उन लोगों ने अपनी जनता के कल्याण के लिए काफी खर्चा किया है।

यह बात तो हम अच्छी तरह से जानते हैं कि यह जमाना पैसे का है। और पैसा कमाने का सबसे अच्छा तरीका है, अपना देश छोड़ना। मारवाड़ियों ने अपना देश छोड़ा, पैसा कमाया। सिन्धियों ने अपना देश छोड़ा, पैसा कमाया। सरदार लोगों ने अपना देश छोड़ा, पैसा बनाया। बाकी लोग अपनी टूटी हुई झोपड़ी तक नहीं छोड़ पाते हैं। भले ही बच्चे भूखे रहें मगर रहेंगे घर में ही। यह नहीं कि घर छोड़ दें, कहीं चले जाएँ, पैसा कमाएँ।

वे बाहर जाकर कमा सकते हैं पर अपने देश या शहर में रहकर नहीं, इसका कारण क्या है?

कारण यह है कि जब आदमी अपने देश में, अपने समाज में, अपने घर में रहता है, तब वह सुरक्षित रहता है, उसमें संघर्ष का अभाव रहता है, वह

भिड़ना-पिटना नहीं चाहता। जब परदेश जाता है, तो एकदम असुरक्षित हो जाता है। तब वहाँ उसके अन्दर जितनी भी प्रतिभाएँ छुपी हुई रहती हैं, सब निकलती हैं। चोर हो तो चोरी करता है, डकैती करता है, मार-पीट करता है। किसी तरह से अन्दर की प्रतिभा निकालता है।

जितने लोग घर छोड़ कर बाहर गये, वे ऐसे वातावरण में गये जहाँ उनका कोई अपना नहीं था। किसी से उधार नहीं ले सकते, कोई उनके दु:ख को नहीं बाँट सकता, कोई उनकी रक्षा नहीं कर सकता। तब उनमें जितनी छुपी हुई प्रतिभाएँ हैं, वे प्रकट होती हैं। अंग्रेज लोग घर छोड़ कर गये, कितनी विकट परिस्थितियों से गुजरे। पानी के जहाज में छ:-छ: महीने बीवी-बच्चों को छोड़कर रहते थे। इटली से, ग्रीस से, जर्मनी से या स्पेन से ये लोग जब दक्षिण अमेरिका या उत्तरी अमेरिका गये तो क्या अपनी बीवी साथ ले गये? नहीं, उन्होंने अपनी बीवी से कह दिया, तुम भी स्वतंत्र, हम भी स्वतंत्र। बीवी के साथ रहो या पैसा कमाओ। हँसना और गाल फुलाना दोनों एक साथ नहीं होता। पैसा कमाने के लिए आदमी को घर से बाहर तो निकलना ही पड़ेगा।

सुरक्षित वातावरण में रहोगे तो तुम्हारे अन्दर जो योग्यता निहित है, वह विकसित नहीं होगी। जब तुम्हें उसके बारे में पता ही नहीं है, तो विकसित कैसे करोगे? जब आदमी असुरक्षित वातावरण में रहता है तब सब प्रकट होता है। हिन्दुस्तान ऊँचा क्यों नहीं उठा? और वे लोग इतना ऊँचा क्यों उठे? यहाँ सब एक-दूसरे की छत्र-छाया में रहते हैं। मियाँ बीवी की छत्र-छाया में, बीवी मियाँ की छत्र-छाया में। बेटा बाप को, बाप बेटे को, सब एक-दूसरे को पकड़े रहते हैं। इसलिए यहाँ आदमी कमजोर हो जाता है। बाहर जाने से आदमी स्वतन्त्र रूप से रहता है और आजाद होकर सोचता है।

आज जो जमाना आ रहा है, उसमें जितने भी व्यापार और व्यवसाय हैं, वे व्यक्तिगत नहीं संस्थागत होंगे। यह धीरे-धीरे सब जगह हो रहा है और उसमें आमदनी भी बहुत है। आज कल जितने भी लड़के-लड़कियाँ कम्पनियों में काम करते हैं, जम करके पैसा कमाते हैं। जैसे मैनेजर होता है, उसे एम.बी.ए., कम्प्यूटर, सब पढ़ना पड़ता है, फिर आराम से लाखों रुपये माँगते हैं, बढ़िया कपड़ा पहन कर बैठते हैं। दस-बीस हजार रुपये के कपड़े तो उनके शरीर पर रहते हैं। और उनके बीवी-बच्चों का तो पूछिये ही मत, केवल कपड़ों का हिसाब लगाएँ तो लाखों हो जाता है।

आजकल तो अमेरिका और कनाडा जैसे देशों में कई ऐसे पैसे वाले लोग हैं जिनके बड़े-बड़े मकान हैं और मकान के आगे निजी हवाई पट्टी भी है। उनका अपना निजी राजसी जहाज रहता है। हिन्दुस्तान में खैर उसकी जरूरत भी नहीं है। अगर हम यहाँ हवाई जहाज रखें भी तो बेकार है। तीन घण्टे में मुंगेर, चार घण्टे में धनबाद, पाँच घण्टे में पटना तो पहुँच ही जाते हैं। पर कई देशों में ऐसी कठिनाइयाँ हैं कि ट्रेन से एक गाँव से दूसरे गाँव जाने में कम-से-कम 24 घण्टे लगते हैं। वहाँ पहाड़ ऐसे हैं कि उतरो, चढ़ो, उतरो, चढ़ो। जैसे कोलम्बिया में बगोता से मेदेयीन जाना हो तो कार से 24 घण्टे लगते हैं। इससे अच्छा है कि अपना हवाई जहाज या हेलीकॉप्टर रख लो, आधे घण्टे में पहुँच जाओ। वहाँ कई लोग ऐसा ही करते हैं। अमेरिका में बहुत-से लोग रोज न्यूयॉर्क से वॉशिंगटन काम पर जाते हैं। उनका अपना डबल सीटर या फोर सीटर जहाज होता है। उससे वॉशिंगटन चले जाते हैं, वहाँ उनका जहाज हवाई अड्डे पर उतर जाता है, उनकी कार वहीं गैरेज में रहती है। उस कार में अपनी कम्पनी चले जाते हैं। शाम को 4 बजे अपनी कंपनी से निकले, गाड़ी हवाई अड्डे पर छोड़ी, जहाज लिया, घर पहुँच गये।

हमारे गुरु भाई स्वामी विष्णुदेवानन्दजी भी अपना हवाई जहाज रखते थे। हम तो जब भी अमेरिका या कनाडा जाते थे, उसी जहाज से जाते थे। हम तो खुद हवाई जहाज चलाते थे। स्वामी विष्णुदेवानन्दजी कनाडा में रहते थे। वे केरल देश के रहने वाले थे। अब तो उनका शरीर नहीं रहा। उन्होंने कनाडा में योग का बहुत प्रचार किया। हम तो उनके हवाई जहाज पर एक घण्टे में मांट्रीयल से न्यूयॉर्क पहुँचते थे। और वहाँ ब्लाइंड नैविगेशन होता था, आँख बन्द करके जहाज चलाते थे। जहाज में लगे यंत्रों से पता चलता है कि तुम्हारा जहाज कहाँ जा रहा है। साथ ही ट्रैफिक कन्ट्रोल वाला भी निर्देश देता रहता है। आँख बन्द करके ब्लाइंड नैविगेशन! पहली बार तो मुझे बहुत डर लगा, क्योंकि मैंने पहले कभी किया नहीं था।

हिन्दुस्तान में एक तो इसकी जरूरत नहीं है और दूसरा यहाँ गरीबी बहुत ज्यादा है। यहाँ पैसे की बहुत अहमियत है। सब पैसे के पीछे भागते हुए नजर आते हैं। यह मुश्किल है यहाँ। जबकि पाश्चात्य देशों में पैसा, नौकरी, घर, बीवी, कुछ मुश्किल नहीं। यहाँ लड़की की शादी कराने में बाप के बाल सफेद हो जाते हैं, लड़कियों की पढ़ाई कराने में हजारों रुपये

खर्च हो जाते हैं। यहाँ व्यवस्था थोड़े ही है। यहाँ जो आदमी अपने बल पर जी सकता है वही जियेगा।

व्यवस्था वहाँ होती है जहाँ हर व्यक्ति की मदद होती है। हमारे आश्रम में ऑस्ट्रेलिया की बीस-बाईस साल की लड़की रहती है, धर्मक्षेत्र। जिस दिन उसे यहाँ से जाना होगा, वह अपने दोस्त को फोन कर लेगी कि मैं इतनी तारीख को आ रही हूँ, मेरे लिये इस प्रकार का घर ले लेना और मेरे लिये नौकरी ढूँढ लेना। वह यहाँ से जायेगी, हवाई अड्डे पर उतरेगी, सीधे उस घर जायेगी जिसका उसके लिये इतंजाम किया गया है और अगले दिन सुबह नौकरी पर चली जाएगी। यहाँ तो न नौकरी मिलती है, न घर। जबकि उसे तो टिकट के लिये पैसे की भी जरूरत नहीं पड़ेगी। वह ज्यादा पैसा-वैसा नहीं रखती, सौ-पचास डॉलर होगा तो होगा। उसे अगर टिकट की जरूरत पड़ेगी तो सीधे दिल्ली में अपने दूतावास जायेगी और वहाँ अपना पासपोर्ट नम्बर दे देगी। उसे टिकट मिल जायेगा। अपने देश जाकर सरकार के पास अपना पासपोर्ट जमा कर देगी। पैसा चुकाएगी और पासपोर्ट वापस ले आयेगी। इतना सरल है।

इन लोगों की सरकार इनका बहुत ख्याल रखती है। अगर आज इन गोरी लड़कियों में से किसी को कोई परेशानी हो जाए तो वह अपने उच्च आयुक्त को फोन करेगी और वह सीधे भारत के प्रधानमंत्री या गृहमंत्री से बात करेगा। बारह घण्टे के अन्दर-अन्दर यहाँ पुलिस कार्यवाही कर लेगी। ये लड़कियाँ भले ही बहुत पढ़ी-लिखी न हों, पर इन्हें अनुभव बहुत होता है। गाड़ी चलाना, मकान बनाना, रंगाई-पुताई, सिलाई-बुनाई, बढ़ई का काम, सब कुछ बचपन से ही सीखना पड़ता है। मगर स्वतंत्र वातावरण में, माता-पिता के यहाँ नहीं। ये अपने माँ-बाप से पैसा नहीं माँगेंगे। वे प्रेम से दे दें तो बात दूसरी है। चौदह-पन्द्रह साल की उम्र के बाद वे माँ-बाप से भीख नहीं माँगते। उसके बाद माँ-बाप के साथ रहना उनकी शान के खिलाफ है। चौदह साल का बच्चा अगर अपने पाँव पर खड़ा नहीं रह सकता तो अपंग है वह। इसलिये ये लोग दुनिया पर राज कर रहे हैं।

यहाँ माँ-बाप तो यही सोचते रहते हैं कि कब लड़का-लड़की की शादी करेंगे। अब धर्मक्षेत्र यहाँ दो साल से है, दो-चार साल और रहेगी। हो सकता है हमेशा के लिये यहीं रह जाए। या हो सकता है दो साल के बाद सोचे कि यहाँ से जाना है, नौकरी करनी है। यह उसको सोचना है, माँ-बाप को नहीं।

यह एक नयी चीज है, जिसे हिन्दुस्तान के लोग आसानी से नहीं समझ पाते। एक और लड़की है विद्यासागर, जो फ्राँस की है। वह यहाँ कई वर्षों से थी, गाँववालों के लिए मकान बनाती थी। आखिर में उसने सोचा कि हमें जाकर शादी करनी चाहिये और वह चली गयी। मगर यह उसने सोचा, उसकी माँ ने नहीं। वहाँ माँ-बाप बच्चों से नहीं कहते कि तुम यह करो, तुम यह मत करो। नहीं, 14 वर्ष के बाद बच्चे को खुद अपना भविष्य सोचना चाहिये। विद्यासागर 28 साल की है, इस उम्र की लड़की को माँ-बाप कहें कि तुम यह करो, वह करो, तो यह ठीक नहीं है। उसने कहा कि मुझे शादी करनी है, चली गई। चर्च में शादी रचायेंगे, माँ-बाप को निमंत्रण देंगे कि मेरी शादी में आइये। और उनके माँ-बाप क्या लायेंगे, जानते हो तुम? गुलाब का एक फूल। फूल भी नहीं, आधी कली लाते हैं। सोना-चाँदी, साड़ी, चूड़ी कुछ भी नहीं, बस गुलाब की एक कली लायेंगे, क्योंकि पति और पत्नी के बीच का जो सम्बन्ध होता है, वह सोना-चाँदी या हीरे-जवाहरात से नहीं आँका जाता, वह फूलों से आँका जाता है। फूल प्रेम और सौंदर्य का प्रतीक है। सबको फूल अच्छा लगता है। इसलिये माता-पिता वर-वधू को केवल एक फूल देते हैं, सोना-चाँदी नहीं।

हिन्दुस्तान के लोग अभी भी सोना-चाँदी, कपड़े-लत्ते, रुपये-पैसे और जमीन-जायदाद को बहुत महत्व देते हैं। जिस दिन ये लोग इन चीजों को कम महत्व देने लगेंगे, तब इनको पता चलेगा कि जीवन जीने का एक और तरीका भी होता है। हम सबसे कहते हैं, केवल घर में ही रहकर काम मत खोजो। सबको घर छोड़ना चाहिये। हम घर छोड़ कर संन्यासी बने। अगर घर नहीं छोड़ते तो वही हाल होता जो सबका होता है। नहीं, घर छोड़कर ही आदमी जिन्दगी जीता है, और अपना जीवन अपने ढंग से बनाता है।

सीता कल्याणम्

जैसे तुम तुलसी विवाह करते हो, वैसे हम यहाँ सीता विवाह करते हैं। हमारे घर में राम-सीता की मूर्ति है, उसी को रखेंगे, वह विसर्जन वाला हिसाब-किताब हमको जँचता नहीं। विवाह में जो कुछ भी चढ़े, उसमें कुछ तो पुजारियों का हो और कुछ गाँव में जो कुँवारी लड़कियाँ हैं उनके विवाह के लिये होना चाहिये। सीता विवाह में जो भी मिलता है उस पर नवविवाहिता का ही अधिकार होना चाहिये। पण्डित-पुरोहित को दो-तीन सौ रुपया दान-

दक्षिणा दे दिया तो दे दिया, नहीं तो उस पर किसी और का हक नहीं, साधु-महात्मा का भी नहीं। हमने तो सबसे साफ-साफ कह दिया है कि पेड़ा-वेड़ा नहीं लाना, सीता जी पेड़ा लेकर ससुराल जाएँगी क्या? फूल, तुलसी, बेलपत्ता, यह सब शिव जी और राम जी को चढ़ाओ। सीताजी को तो चाहिये सोना-चाँदी, अच्छी साड़ी, कपड़ा, चूड़ी और झुमका, और वही हम यहाँ की लड़कियों को देंगे। आखिर सबके घर में एक-दो लड़कियाँ तो होती ही हैं, हर साल यहाँ दो-तीन सौ लड़कियों की शादी तो होती है न? और जिसकी शादी हो चुकी है वह भी अगर आयेगी तो उसको भी हम देंगे। क्या फर्क पड़ता है। हर लड़की को हिन्दुस्तान की सबसे बढ़िया साड़ी मिलना चाहिये। उसे सोने का कम-से-कम एक कंगन या नाक की बाली या कान का झुमका तो मिलना ही चाहिये। लड़की की शादी कराओ तो पेड़ा या तुलसीपत्ता नहीं, सोना-चाँदी- जवाहरात देना चाहिए। चाहे अपनी लड़की हो, चाहे किसी की भी हो। तुम्हारी लड़की भी तो मेरी लड़की है, क्या फर्क पड़ता है। लड़की तो लड़की होती है। लड़की सबकी होती है, पत्नी सिर्फ एक की होती है। बस इतना ही फर्क हम जानते हैं।

यह रिवाज अब यहाँ शुरू करना है। इस रिवाज से क्या होगा? तुम्हारे यहाँ यह पूजा होगी तो दो-चार लड़कियों के लायक दहेज आयेगा, हम करेंगे तो कम-से-कम चार-पाँच सौ लड़कियों के लिये दहेज आएगा। उससे यह होगा कि हम लोग अपने समाज में लड़कियों की मान्यता बढ़ाएँगे। हमारे देश में लड़कियों की स्थिति सुधरनी चाहिये। जब तक लड़कियों की स्थिति नहीं सुधरेगी, यह देश कभी ऊँचा उठने वाला नहीं है। एक तरफ तो तुम लड़की को शक्ति कहते हो और दूसरी तरफ कह देते हो अबला। यह कहाँ तक ठीक है?

4 दिसम्बर को यहाँ सीता विवाह होगा और हम चाहते हैं कि लोग समझें कि सीता विवाह का क्या महत्त्व है। वैसे तो शिवजी का भी विवाह कर सकते हैं, मगर बारात में दो सर या एक टाँग वाले कहाँ से लाएँगे? रामजी की बारात आयेगी तो कोट-पतलून पहनने वाले लोग आयेंगे। मण्डप में पीछे दीवार पर शिव-पार्वती जी का चित्र बनाया है। इसका मतलब है कि साक्षी शिवजी रहेंगे। आखिर यह देश तो शंकर जी का है न, सब सम्पत्ति तो उन्हीं की है। इसलिये शिव-पार्वती जी को पीछे बैठाया है। शिव जी भी देखेंगे, वे भी बाराती हैं और पार्वती जी सखी बन जाएँगी। कन्यादान कौन करेगा,

उसका चुनाव भी हो गया है। कलकत्ता से पति-पत्नी को बुलाया है। एक बार तुम लोग ध्यान से देखना, फिर नकल करना। यह पवित्र चीज है। इस इलाके में एक बार जो यह पकड़ लिया, तो यह सीता-विवाह एक पवित्र उत्सव हो जायेगा। यह सब उत्सवों से भिन्न रहेगा। यहाँ बीड़ी-सिगरेट नहीं पीना, पान नहीं खाना, शराब नहीं पीना, माँस-मछली खाकर नहीं आना, लड़कियों से गन्दा मजाक नहीं करना। सब नियम बना देंगे। देखते-देखते यह पवित्र परम्परा बन जायेगी यहाँ की।

– *22 अक्टूबर, 1997*





अध्याय 12

जो रामचरितमानस तुम पढ़ते हो, वह रामायण ऐतिहासिक नहीं, आध्यात्मिक है। वैसे तो रामायण में बहुत-सी कहानियाँ हैं, लड़ाई के बीच में अहिरावण श्री राम और लक्ष्मण का अपहरण करके उन्हें पाताल लोक ले गया था, तब हनुमान जी उनको ले आये। एक-आध बार हनुमान जी भी मुश्किल में पड़े थे। दक्षिण भारत की जो कम्ब रामायण है, वह रामायण दूसरी ही है। वह ऐतिहासिक नहीं है, केवल कविता है। संस्कृत में बहुत-से रामायण हैं–आनन्द रामायण, आत्म रामायण, बिकट रामायण, अध्यात्म रामायण, अद्भुत रामायण। ऐसी-ऐसी रामायण है जहाँ सीता जी रावण की बेटी मानी जाती है। हमने फिल्म तक देखी है।

कम्ब रामायण दक्षिण-भारतीय रूपान्तरण जिसे कवि कम्बन ने लिखा है। उसमें तो रामचन्द्रजी जब मिथिला जाते हैं और सीता जी उनको देखती हैं तो वे बेहोश हो जाती हैं, ऐसा-ऐसा लिखा हुआ है। उसमें सीताजी के शरीर का बिलकुल काव्यात्मक विवरण है, जिसे तुलसीदासजी ने पूर्णत: उपेक्षित किया है। तुलसीदास जी तो साहित्य की मर्यादा के बाहर नहीं गए, पर कम्बन ने पूरा विवेचन किया है। 'प्रसन्नराघव' नाम से एक अन्य नाटक है, जिसमें श्रीराम और सीताजी का वाटिका में जो प्रसंग है, उसे बहुत अच्छी तरह से बताया है। फिर भवभूति का संस्कृत में 'उत्तर रामचरितम्' है, लव-कुश प्रसंग उसी में से लिया गया है। सीताजी का वनवास, वाल्मीकि के यहाँ रहना, लव-कुश का जन्म, लवणासुर का मारा जाना, फिर शत्रुघ्न का जातक कर्म में शामिल होना, रामचन्द्रजी का स्वर्गारोहण, यह सब उत्तर रामचरितम् में आता है।

दक्षिण भारत के एक विद्वान् ने 'आत्मरामायण' लिखा है जो पूरा का पूरा वेदांत पर आधारित है। राम परमात्मा है, सीता जीवात्मा है, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ मिलकर रावण के दस सर हैं, अविद्या आसुरी शक्ति है जो हर एक के अन्दर रहती है। सब इसी तरह से समझाया है। फिर बंगाली लोगों की रंगनाथ रामायण है, उसके अलावा महाराष्ट्र में भी अलग रामायण है। बर्मा और इन्डोनेशिया में बाली, जावा और सुमात्रा जैसे द्वीपों में रामजी की अलग-अलग कहानियाँ हैं। थाईलैंड में उसका नाम रामकीर्ति है। उसमें सीताजी और रामजी को भाई-बहन बताया है। लाऊस में भी यही है। थोड़ी-थोड़ी भिन्नता जरूर होती है। हर बार पढ़ने से नया आनन्द मिलता है।

रामजी का रंग गोरा नहीं, श्याम रंग था, नीले कमल की तरह काला, जैसे आसमान का रंग होता है। और उनकी आँखें लाल थीं। जैसे हमारी आँखें काली होती हैं, जर्मन लोगों की आँखें गुलाबी होती हैं, पंजाबियों की आँखें भूरी होती हैं, इटेलियन और स्पैनिश लोगों की आँखें बहुत ही काली होती हैं, सब की अलग-अलग होती हैं, उसी तरह श्री रामजी की आँखें लाल थीं।

रंग के आधार पर कृष्ण जी और राम जी एक जैसे ही थे न? लगता है कि उस समय लोग काले को ज्यादा सुन्दर मानते थे।

हाँ, श्री कृष्ण और श्री राम, दोनों श्याम रंग के थे, लेकिन कृष्ण ज्यादा काले थे। काले को तो आज भी सुन्दर मानते हैं। यूरोप में तो लड़कियाँ काले लड़कों से शादी करती हैं, अपने गोरे लड़कों से नहीं। यह तो मनुष्य की स्वाभाविक कमजोरी है। जो लोग काले हैं, वे गोरे लोगों को पसन्द करते हैं। जिनके पास पैसा कम है, वे अमीरों की तरह रहना चाहते हैं। जिनके पास पैसा बहुत है, वे गरीबों की तरह रहना चाहते हैं। यह तो मनुष्य का स्वभाव है।

सुन्दरता क्या चीज है, इसकी परिभाषा क्या है? गुलाब भी तो काला होता है, पर काले गुलाब को लोग बहुत सुन्दर मानते हैं। दक्षिण भारत में लोग काले होते हैं, मगर उनका सौन्दर्य और लावण्य आकर्षक लगता है। अधिकांश यूरोपियन लोग गोरे होते हैं पर उनका चेहरा फ्लैट होता है। सुन्दरता की परिभाषा देना बहुत मुश्किल है।

जब विश्व सुन्दरी की प्रतियोगिता होती है, उस समय उसको किस आधार पर चुना जाता है। लड़की सुन्दर हो, पर बेवकूफ हो तो? फिर वह विश्व सुन्दरी कैसी? सुन्दरता का मतलब उसे विद्वान् भी होना चाहिये, उसे ज्ञानी भी

होना चाहिये, उसके शरीर की लम्बाई, उसके हाथ, उसके चेहरे का अनुपात ठीक होना चाहिये। सिर बहुत बड़ा है या पैर बहुत छोटे हैं, यह सब देखा जाता है। सुन्दरता को अनुपात की दृष्टि से जाँचा जाता है। मकान बना रहे हैं, बहुत ऊँची छत बना दी तो अच्छा नहीं दिखेगा, या एक बहुत बड़ा हॉल बना दिया और उसकी छत सिर्फ दस फुट ऊँची है, तो खराब दिखेगा। हर चीज सही अनुपात में होनी चाहिये, तभी अच्छी दिखती है।

कहते हैं कि रावण के कान गुफा की तरह थे। उनके शरीर के बारे में बढ़-चढ़कर लिखा है। इसका मतलब कि उस समय लोग बहुत ऊँचे और बड़े होते होंगे।

राजस्थान के महाराणा प्रताप आज से करीब चार-पाँच सौ साल पहले पैदा हुए। उन्होंने अकबर के साथ लड़ाई लड़ी थी। हम चितौड़ में उनका म्यूज़ियम देखने गये थे। उनकी तलवार का जो मुठ्ठा था, वह हमारे हाथ में नहीं आ सकता। उस तलवार को पकड़ने के लिए हमारी हथेली तीन गुना बड़ी होनी चाहिए। मतलब उनकी हथेली हमारी हथेली से तीन गुना बड़ी रही होगी। तो अंदाज लगाओ कि उनकी अंगुलियाँ कितनी बड़ी होंगी। उनकी तलवार कम-से-कम सात फुट की थी। सोचो, तलवार पकड़ने वाले का घोड़ा कितना बड़ा रहा होगा। उनके सर पर जो हेलमेट रहती थी, वह इतनी बड़ी थी कि आज उसे हाथी के सर पर रखा जा सकता है। वह अभी भी है, तुम म्यूज़ियम में जाकर देख सकते हो। उनकी छाती पर जो कवच रहता था, वह इतना बड़ा और भारी है कि उसको हिलाया नहीं जा सकता।

जब ऐसा आदमी आज से चार सौ साल पहले पैदा हुआ, तो रावण के बारे में जो कहा है, उसे ऐसा ही समझो। सब आदमी ऐसे होते थे कि नहीं, यह नहीं मालूम। पहले आदमी कितने बड़े होते थे, यह कहना बड़ा मुश्किल है। किन्तु यह निश्चित है कि कुछ जातियाँ छोटी होती हैं और कुछ बड़ी। हिन्दुस्तान में उड़िया लोग छोटे होते हैं जबकि पंजाबी लोग ऊँचे कद के और हट्टे-कट्टे होते हैं। अफगानिस्तान में जाओ तो और मजबूत लोग मिलेंगे, पठान। कजाकिस्तान जाओ तो और लम्बे लोग मिलेंगे। रूस में जाओ तो फिर छोटे और मोटे लोग मिलेंगे। डेनमार्क में जाओ तो लम्बे आदमी मिलते हैं, सर ऊपर करके देखना पड़ता है उनको। जर्मनी और ऑस्ट्रेलिया में भी लम्बे-चौड़े लोग मिलते हैं। कहने का मतलब यह कि किसी जमाने में कोई जाति

ऐसी रही होगी, पर यह नहीं कहा जा सकता कि आदमी पहले बहुत लम्बा था, अब छोटा हो गया है। कोई-कोई जाति या व्यक्ति ऐसे होते हैं। अभी भी पाकिस्तान में एक आदमी है, वह नौ फुट लम्बा है। कोई-कोई ऐसा निकलता है। रावण का भी ऐसा ही रहा होगा। रामजी के लिये कहते हैं कि वे चौदह फुट लम्बे थे। खैर यह सब निश्चित रूप से कहना तो बहुत मुश्किल है।

आजकल जब ऐसा कोई निकल जाता है तो कहते हैं कि थाइरॉयड ग्रंथि के कारण है?

नहीं ऐसा नहीं है। आजकल आदमी पहले से ज्यादा आरामपसन्द हो गया है। तुम्हें यहाँ से देवघर जाना है तो कार या रिक्शे से जाते हो। पहले आदमी पैदल ही जाता था। यहाँ से भागलपुर तक पैदल ही जाता था। शौच के लिए पैदल जाता था, पानी के लिए पैदल जाता था। उसी के मुताबिक उनका शरीर था। अब आजकल शहरों में बगल में ही शौचालय है, लकड़ी तुमको लानी नहीं पड़ती, गैस जला लेते हो, मशीन से सारा काम होता है। तो मेहनत कम हो गई है और इससे बीमारियाँ बढ़ गई हैं। मेहनत कम होने से आदमी का रंग बदल जाता है, उसकी माँसपेशियों की संरचना ही बदल जाती है। जो लोग पहाड़ों पर चढ़ते-उतरते हैं, उनको दिल की बीमारी नहीं होती। जो लोग मेहनत करते हैं, उनको मधुमेह नहीं होता। जो लोग गाँव में रहते हैं, उनको उच्च रक्तचाप नहीं होता। शहर में रहने वाले लोगों को गाँव की बीमारी नहीं होती और गाँव में रहने वालों को शहर की बीमारी नहीं होती। यह सब प्राकृतिक है।

महाराणा प्रताप का शरीर बचपन से ही ऐसा रहा। मगर सभी लोग महाराणा प्रताप की तरह होते होंगे, यह नहीं माना जा सकता। कोई-कोई ऐसा निकलता है। आखिर सभी लोग न्यूटन या आइन्सटाइन की तरह बुद्धिमान् होते हैं क्या? कोई-कोई होता है।

हाल में टीवी पर एक विज्ञान का कार्यक्रम देखा था जिसमें बताया गया कि आदमी समय के साथ छोटा होता जायेगा और कलियुग के समाप्त होते-होते अँगूठे जितना रह जाएगा। गुलाब के पौधे पर भी सीढ़ी लगाकर चलना पड़ेगा।

तब तो गुलाब का पौधा भी इतना बड़ा नहीं होगा। जब आदमी छोटा होता जाएगा तो गुलाब का पौधा क्यों बड़ा रहेगा जी? उस वक्त जरूरत भी छोटे

गुलाब की ही पड़ेगी न। खैर इन सब चीजों पर सोचना छोड़ो, यह सब नहीं होने वाला।

यह जो मनुष्य का शरीर बड़ा या छोटा होता है, वह जेनेटिक्स के कारण होता है। जब एक जात का प्रभाव दूसरी जात पर पड़ता है, तब जेनेटिक संरचना बदलती है। गाय में देखो, देशी गाय विदेशी गाय से छोटी होती है। जब देशी गाय और जर्सी गाय का संकरण होगा तो गाय का आकार बड़ा हो जाएगा। तुमने ऑस्ट्रेलिया में गायों को देखा नहीं है। बाप रे! हाथी की तरह होती हैं। वहाँ जो साँड़ होता है, वह तो हिल ही नहीं सकता, इतना भारी बदन होता है उसका। वहाँ गाय के थन सीमेंट की बोरी की तरह होते हैं। हाथ से दूध दुहना सम्भव नहीं है वहाँ। 40 लीटर दूध कैसे दुहेगा एक आदमी?

वनस्पतियों में भी संकरण होता है। गेहूँ का, मकई का संकरण होता है, जिसे हाइब्रिड या संकर बीज कहते हैं। हर मकई के बीज की, हर गेहूँ के बीज की अपनी-अपनी जाति होती है। जाति का सम्बन्ध जीन्स से होता है, डी.एन.ए. से होता है। और इसको मिलाने को संकरण कहते हैं। जो संकर मकई होती है, उसकी पैदावार ज्यादा होती है, गेहूँ का मोटा दाना होता है। देशी गाय दो या तीन लीटर दूध देती है, जबकि संकरित गाय को देखो, तीस-तीस लीटर दूध देती है।

ऐसा संकरण मनुष्यों में नहीं है। मानव समाज हमेशा राजनीति के कारण अपनी ही जाति में शादी करता है। अपनी जाति में रहेंगे, हमारी संख्या बढ़ेगी, हम राज करेंगे, यह सब राजनीति है। इसलिये सबका शारीरिक और मानसिक स्तर गिरा हुआ है, सब छोटे-छोटे, पाँच फुट के हैं। स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता है। शादी हमेशा अपनी जाति के बाहर करनी चाहिये, और गोत्र में तो करना ही नहीं। तुम अगर जाति के बाहर शादी करोगे तो दो फायदे होंगे, एक तो तुम्हारा समाज बढ़ेगा, दूसरा सन्तानों की गुणवत्ता बढ़ेगी। बस यही मुख्य कारण है। जाति का अपना वैज्ञानिक आधार है मगर इसका वह स्वरूप नहीं जैसे हिन्दुस्तान में कहते हैं, इसे छूना नहीं यह अछूत है, इसके हाथ का छुआ मत खाओ। यह गलत है।

इस दुनिया में कोई भी चीज नहीं जिसकी जाति-प्रजाति नहीं होती। हर देश का धान अलग-अलग होता है। अंगूर की कितनी जातियाँ हैं, अमरूद की कितनी जातियाँ हैं, आम की कितनी जातियाँ हैं। प्रयोगशालाओं में गेहूँ के एक बीज से कोशिकाओं को निकालकर उन्हें अलग-अलग टेस्ट-

ट्यूब में रखकर उनका प्रजनन कराते हैं। इस विधि को अंग्रेजी में टिशू कल्चर कहते हैं, जिससे एक बीज से हजारों पौधे तैयार किये जा सकते हैं। आजकल यह बहुत बड़ा विज्ञान है। फिलीपिन्स में धान की खेती दुनिया में सबसे उत्तम होती है। उनके यहाँ धान रोपने का तरीका वही है क्यारी बनाकर, मगर दुनिया में जो भी वैज्ञानिक धान की जानकारी चाहता है, सबको मनीला, फिलीपिन्स भेजा जाता है।

हमारा हिन्दुस्तान कृषि के मामले में बहुत पीछे है। यहाँ जो भी खेती करते हो, वह प्रकृति पर आश्रित होकर करते हो। पानी का इन्तजाम नहीं है। तुम्हारे खेत में मिट्टी कैसी है, कभी परीक्षण तो नहीं कर सकते। किस मिट्टी में कैसी खाद पड़नी चाहिये, कैसी नहीं, इसकी जानकारी कम है। जैसे नागपुर में सन्तरा बहुत होता है, यहाँ नहीं होता, क्योंकि वहाँ की मिट्टी में चूना है, कैल्शियम बहुत है, यहाँ नहीं है। हर मिट्टी में एक गुण होता है, जो धान, गेहूँ, आम, सबको मिलता है। जो भी वनस्पति वहाँ उगती है, उसको उससे सहारा मिलता है। कहीं गोभी अच्छी होती है, तो कहीं टमाटर। नासिक की तरफ बहुत प्याज होता है, वहाँ से ट्रक का ट्रक निर्यात होता है। परवल सब बरियारपुर से आता है। बरियारपुर मुंगेर के बगल में है, वहाँ से पूरे हिन्दुस्तान में ट्रक भरकर जाते हैं। परवल और कहीं नहीं होता है। परवल का जो नाल है वह आसाम में तैयार होता है, मगर वहाँ परवल नहीं होता। नाल को लाकर बरियारपुर में लगाते हैं। जहाँ नाल बनता है, वहाँ परवल नहीं लगता।

कौन-सी सब्जी या अनाज के लिये कौन-सी जमीन उपयोगी है, यह काम तो हमारे वैज्ञानिकों ने किया नहीं है। फसल की बीमारी क्यों होती है? खाद की कमी से या खाद की अधिकता से। अब कोई बहुत अमीर घर का लड़का अगर यहाँ गाँव में रहेगा तो बीमार नहीं होगा क्या? वैसे ही अगर तुमने उच्चकोटि का बीज लगा दिया कहीं, पर तुम खाद दे नहीं सकते, तो वह मर जाएगा। बढ़िया जर्सी गाय तुमको दे दें, तो बीमार हो जायेगी, मर जायेगी, क्योंकि तुम उसको संभाल नहीं सकोगे। असली बात यह है।

हिन्दुस्तान में जितने लोग पढ़ते हैं न, केवल पैसा कमाने के लिये पढ़ते हैं। हिन्दुस्तानियों की आँख पैसे पर है, विद्या पर नहीं। बुरा नहीं मानना। विदेशियों की नजर पैसे पर नहीं है, उनकी नजर है विद्या पर, जानकारी पर, घूमने-फिरने, मौज उड़ाने पर। यहाँ के लोगों के मन में एक ही धुन सवार है,

पैसा कमाओ, और कमाओ। हमारे यहाँ जितने वैज्ञानिक और प्रोफेसर हैं, उनका क्या हाल है। एम.एस.सी. पढ़ ली, कृषि विभाग में चले गये, वहाँ उनको पाँच-दस हजार रुपये की नौकरी मिलती है, किताब पढ़कर सब लोग कर लेते हैं। भागलपुर में, पटना में उनके पास सुविधा क्या है? यहाँ सरकार के पास पैसा ही नहीं है।

बात शुरू हुई थी रावण और महाराणा प्रताप जैसे लोगों से। माना कि वे बहुत हट्टे-कट्टे, लम्बे-चौड़े थे, मगर सब लोग ऐसे ही थे, ऐसी बात नहीं है। सामान्य आदमी 5-6 फीट के अंदर ही रहा। हिन्दुस्तान को जीतने के लिये उत्तर पश्चिम से जो जातियाँ आयीं, मंगोलिया से, अफगानिस्तान से, तुर्किस्तान से, ईरान से, ये सब मुस्लिम जातियाँ थीं। इनमें सबसे तेज मुगल निकले, जो मंगोलिया से अफगानिस्तान होते हुए आए। बड़े कद्दावर थे वे लोग। हुमायूँ तो कमजोर था, बाबर बहुत कद्दावर था, अकबर भी बहुत लम्बा-चौड़ा था। करीब हजार साल पहले से हमला करते आये हैं। काश्मीर की तरफ, पंजाब की तरफ बराबर लड़ाइयाँ चलती रहती थीं। एक बार उन लोगों के हाथ तोप लग गयी तो फिर उनका पलड़ा भारी हो गया। हिन्दुस्तान के पास केवल तलवार और भाले थे, और ये लोग हाथियों पर बैठकर लड़ाई करते थे। हमलावर घोड़ों पर बैठकर आए, घोड़ों के आगे हाथी तो टिक नहीं सकता। ऊपर से हिन्दुस्तान के लोग धोती पहनकर लड़ते थे, और वे लोग चुस्त पजामा पहनकर लड़ते थे। अब जंग में धोती खुल जाए तो क्या करेगा आदमी? एक के बाद एक, सब राजा हारते गये, राजपूत लोग हार गये। हाँ, सिख लोगों ने जमकर उनसे लड़ाई की।

सिखों में गुरु गोविन्द सिंह थे, करीब तीन सौ साल पहले उन्होंने मुगलों से लोहा लिया था। वे लोग जमकर लड़े थे। पटना गुरु गोविन्द सिंह की जन्मभूमि है। लेकिन इस धर्म की शुरूआत पंजाब के एक महात्मा से हुई है, गुरु नानक। वे पंजाब के एक कायस्थ परिवार से थे। उनको बचपन से ही भगवान में बहुत लगन थी। बाद में वे अपने घर पर नहीं रहे, यहाँ से वहाँ घूमते रहे। उनके साथ उनके दो चेले रहते थे, बाला और मरदाना। उनको लेकर वे सब जगह जाते थे। सिख धर्म का एक ही लक्ष्य है, भगवद् भक्ति। भगवान का भजन गाओ, बस। बाकी जैसे तुमको रहना है रहो, व्यापार-धंधा करना है तो करो, बाल-बच्चे रखने है तो रखो, खेती करनी है तो करो, जो भी करना चाहो, करो, केवल भगवान का नाम लो। यही उनकी मुख्य शिक्षा है।

जिस समय गुरु नानक पैदा हुए, उस समय उसी तरह के और भी लोग पैदा हुए। वे भी यही बात कहते थे। मीरा भी यही कहती थीं, चैतन्य महाप्रभु भी यही कहते थे। भगवान का भजन करो, और किसी की जरूरत नहीं। भगवान में लीन रहो, भगवान के लिये ही सब कुछ करो। चाहे बाल-बच्चों में रहो, खेती-बाड़ी करो, जूते का काम करो, बढ़ई का काम करो, कुम्हार का काम करो, चमार का काम करो, लोहार का काम करो, कुछ भी करो, मगर भगवान को नहीं भूलना। जैसे माँ अपने बच्चे को कभी नहीं भूलती, पानी लेने बाहर जाएगी तो भी बच्चे का ही ख्याल करेगी कि कहीं गिर न जाय। ऐसे ही भगवान का बराबर ख्याल रखो।

सिख धर्म का आधार वैदिक धर्म ही है। वैदिक धर्म को आज राजनैतिक लोगों ने हिन्दू धर्म कहना शुरू कर दिया मगर हिन्दू तो जाति का नाम है। हमारा धर्म वैदिक है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद, ये चार वेद होते हैं। जैसे इस्लाम का आधार कुरान है, ईसाई धर्म का आधार बाइबिल है, वैसे ही हमारे धर्म का आधार ये वेद हैं। वेदों को समझाने के लिए पुराण हैं और पुराणों को समझाने के लिये महाभारत, रामायण, गीता आदि हैं। वेदों के अनुसार जो धर्म चलता है, उसे वैदिक धर्म कहते हैं। वेदों में मूर्ति पूजा अर्थात् साकार उपासना मानी जाती है। मगर इस्लाम या ईसाई धर्म में साकार उपासना नहीं है। वेदों में पुनर्जन्म को मानते हैं, चौरासी लाख योनियों का सिद्धान्त मानते हैं, लेकिन इस्लाम, यहूदी और ईसाई धर्म नहीं मानते। यह फर्क है। इस तरह से हमारे यहाँ और बहुत-सी बातें हैं जो वैदिक धर्म के अन्तर्गत आती हैं। इस वैदिक धर्म से फिर अलग-अलग सम्प्रदाय निकले–शैव, वैष्णव, शाक्त इत्यादि। बाकी सम्प्रदाय प्राय: लुप्त हो गये हैं, यही तीन रह गये हैं।

धर्म एक चीज होती है, जाति दूसरी। जैसे पाकिस्तान में जो मुसलमान हैं, उनका धर्म इस्लाम है मगर जाति हिन्दू है। उनकी जात वही है जो तुम्हारी है, बस वे मुसलमान बन गये हैं। हम लोगों के धर्म को वैदिक धर्म कहते हैं और जाति हमारी हिन्दू है। हिन्दू भी क्यों कहते हैं? यह हिन्दू शब्द निकला है सिन्धु से। हमारी सभ्यता का जन्म हुआ था सिन्धु घाटी में, उसी से हमें हिन्दू कहा जाता है। गुरु नानक हिन्दू ही थे।

मगर सदियों से हम लोगों के हिन्दू समाज में बहुत बड़ी गलती होती आयी है, जो अभी भी है। हमारी सबसे बड़ी कमजोरी है जाति प्रथा और इसी वजह से आज हम दुनिया में सबसे पीछे हैं। इसी वजह से हम लोगों ने सब की मार

खाई है। और आज भी हम सुधरे नहीं हैं। पिछड़ी जातियों को पहले तो बौद्ध धर्म वालों ने अपनी तरफ करने की कोशिश की, फिर मुसलमानों ने, फिर ईसाइयों ने और आजकल राजनैतिक पार्टियाँ अपनी तरफ करने की कोशिश कर रही हैं। इससे उन पिछड़ी जाति के लोगों को तो फायदा नहीं होगा, क्योंकि राजनैतिक किसी को फायदा नहीं देते, केवल अपनी जेब भरते हैं।

समाज की ऐसी परिस्थिति देखते हुए गुरु गोविंद सिंह ने कहा कि नहीं, हम सिख एक जात के हैं। सिख का मतलब होता है चेला या शिष्य। सिख शब्द शिष्य का अपभ्रंश है। वे सब शिष्य बने, उनको मंत्र दिया गया और गुरु गोविन्द सिंह ने उनको नियम बताए कि पाँच चीजें रखना–केश, कंघा, कच्छा, कड़ा और कृपाण। बालों को न काटो, दाढ़ी नहीं बनाओ, सर पर पगड़ी रखो, अन्दर कच्छा पहनो, हाथ में कड़ा होना चाहिये और साथ में एक कृपाण रहनी चाहिये। ये पाँच चीजें हर सिख को रखनी पड़ती हैं। सिखों के दस गुरु हुए, उसके बाद उन्होंने कहा कि आज से हम लोगों के गुरु रहेंगे गुरु ग्रंथ साहब। जिसमें सब गुरुओं के ज्ञान के पदों को इकट्ठा कर दिया और उन्हें राग में बाँध दिया, वही गुरु ग्रंथ साहब है। सिख लोग उसी को अपना गुरु मानते हैं। उनमें वैदिक ढंग से शादी होती है, चिता द्वारा अंत्येष्टि होती है। जबकि ईसाई और मुसलमान कब्र में डालते हैं। हम वैदिक धर्म वालों की अंत्येष्टि चिता में होती है, यह वैदिक धर्म का नियम है। चाहे सिख धर्म हो, वैष्णव धर्म हो, शैव धर्म हो या शाक्त धर्म, इन सबका आधार वैदिक धर्म है। हमारे धर्म का वास्तविक नाम वैदिक धर्म है। आजकल के राजनैतिक लोगों को यह सब जानकारी है नहीं, तो वे उसे हिन्दू धर्म कह देते हैं। पर यह बात समझ लो कि हम लोगों की जाति हिन्दू है, धर्म हमारा वैदिक है। पाकिस्तान के मुसलमान हमारी ही जाति के हैं, बंगाल के मुसलमान हमारी ही जाति के हैं, धर्म उनका कुछ भी रहे। असली बात यह है।

त्याग का सिद्धान्त

एक बात याद रखो कि कुछ भी तुम्हारा नहीं है। जब तुम दुनिया को अपना समझ कर चलते हो, सम्पत्ति या घर-परिवार को अपना समझ कर चलते हो, बेटा, बेटी, औरत, पति, घर, जमीन, जायदाद, सब अपना मानते हो तब तुम अपने को एक सीमा में बाँध देते हो। और जब तुम कहते हो कि यह सब मेरा नहीं है, पत्नी मेरी नहीं है, बेटा मेरा नहीं है, पैसा मेरा नहीं है, मेरे पास

आ गया, मैं रखता हूँ मगर मेरा नहीं है। जब मनुष्य अपनी सारी सम्पत्ति, ज्ञान और भावना को अमानत समझता है, तब उसका ख्याल भगवान पर जाता है। इस बात को याद रखो कि जब पानी बहकर तालाब में जाता है तो कुछ दिन के बाद वह सूख जाता है, सड़ जाता है, क्योंकि वह सीमित है। मगर जब नदी का पानी बहता है, तो बहते ही रहता है। न सूखता है, न सड़ता है।

हमने अपने जीवन में जो कुछ भी प्राप्त किया उसका अपने लिए उपयोग नहीं किया। अब मनुष्य शरीर है, तो रात को छत चाहिये, छत हो गयी। पहले कम उम्र थी तो दो बार खाते थे, अब उम्र ज्यादा है तो एक बार खाते हैं। इसके अलावा बाकी जितनी भी चीजें हैं, सब किसी दूसरे के लिए हैं। चाहे योग का प्रचार करना हो, चाहे अस्पताल बनाना हो, चाहे अनाथालय बनाना हो, चाहे कोई अन्य काम हो। हमने राजकोट के पास एक ट्रस्ट खोल दिया और कहा कि चलाओ इसको, क्या फर्क पड़ता है? ऑस्ट्रेलिया में फार्म हाउस ले लिया, मकान बना दिया, समिति बना दी, आश्रम खुल गये, हर आश्रम की अपनी सम्पत्ति है, प्रिंटिंग प्रेस है, गोशालाएँ हैं। मगर हमको उस सब से क्या मतलब?

कहने का तात्पर्य यह कि दुनिया में प्राप्ति का रहस्य है त्याग। तुम अगर छाया को पकड़ने चलो तो छाया आगे ही भागेगी और तुम पीछे रह जाओगे। क्यों? क्योंकि तुमने सूर्य को पीछे रखा है। जब प्रकाश पीछे रहता है तो छाया आगे रहती है, और जब सूर्य आगे रहता है तो छाया पीछे रहती है। तब तुम जहाँ-जहाँ जाओ, वह तुम्हारे पीछे भागेगी। तुम्हें कुछ करने की जरूरत नहीं है। पर सभी लोग छाया के पीछे-पीछे भाग रहे हैं, मेरा बेटा, मेरी बेटी, मेरी बीवी, मेरा घर। सब लोग अपने को लिमिटेड कम्पनी बना देते हैं और बेचारे उसी में फँसे रहते हैं। हजार कमाते हैं तो हजार खर्च हो जाता है, लाख कमाते हैं तो लाख खर्च हो जाता है, दस लाख कमाते हैं तो भी खर्च हो जाता है, कुछ बचता नहीं है। न लखपति का पैसा बचता है, न करोड़पति का। और हम तो दस-दस रुपये जोड़कर सेवा का काम करते गए।

हमारे गुरुजी कहते थे, 'देखो, अगर तुम्हें सरल रास्ता अपनाना है तो वह है छोड़ना। और कठिन रास्ता अपनाना है तो वह है जोड़ना। जोड़ने में बहुत मेहनत लगती है, छोड़ने में मेहनत नहीं पड़ती।' आखिर घर छोड़ने में कितनी मेहनत लगती है? झट से लंगोटी उठायी और चल दिये। जबकि जोड़ने में बहुत देर लगती है, आदमी बूढ़ा हो जाता है, दाँत टूट जाते हैं।

हमारे गुरुजी ने कहा कि तुमको सरल चीज चाहिये तो छोड़ो, और कठिन चीज चाहिये तो जोड़ो।

तब 1963 में हम त्र्यम्बकेश्वर गये। हमारे इष्टदेव त्र्यम्बकेश्वर महादेव हैं, नासिक के पास। 1963 में जब हमारा मुंगेर जाने का इरादा हुआ, तब पहले हम वहीं गए थे। हमने उनसे एक प्रार्थना की और एक वचन भी दिया। हमने कहा कि 20 साल योग का प्रचार करेंगे। आप हमारी पूरी मदद करो और उसके बाद हम सब छोड़कर आ जायेंगे। फिर हम उससे कोई मतलब नहीं रखेंगे। अब कोई बड़ा-सा भवन बनाए और भगवान से कहे कि बनाने में मदद करो, बाद में मैं छोड़ कर आऊँगा, तो तुम इसे पागलपन समझोगे न! फिर भवन बना ही क्यों रहे हो?

लेकिन हमने भगवान को ऐसा ही वचन दिया। 1963 में वचन दिया, 1983 में छोड़ दिया। पक्का बीस साल। हमें छोड़ने में कोई दिक्कत नहीं है, हम यह जगह भी दस मिनट में छोड़ सकते हैं। हमें अपनी उम्र का ख्याल नहीं है, हम इस उम्र में भी रात को दो-तीन बार नहाते हैं, एक बार खाकर जी सकते हैं, रात को 12 बजे उठ सकते हैं, नंगा रह सकते हैं। लेकिन जब तक हम यहाँ बैठे हैं तो आलसी की तरह नहीं बैठेंगे, कुछ-न-कुछ करेंगे जो दूसरों के काम आए। भगवान ने हमसे कहा है कि जब तक तुम ममता में नहीं पड़ोगे, मोहमाया में नहीं पड़ोगे तब तक तुम्हें कोई कुछ नहीं कर सकता। पर जिस दिन हम समझेंगे कि यह सम्पत्ति हमारी है, हम इसका मजा लें, उस दिन हम भी कमजोर पड़ जायेंगे, जैसे सब लोग कमजोर पड़ जाते हैं।

सामाजिक परिवर्तन

सबसे बड़ी चीज है कि लड़की के लिए तुमने क्या किया। समाज में जो तुम्हारी लड़की है वह हमारी भी तो है। कम-से-कम पाँच प्रतिशत तो मेरा भी अधिकार है तुम्हारी लड़की पर, पाँच प्रतिशत मेरा भी दायित्व है उसके लिए। समाज में हर एक व्यक्ति को यह महसूस करना चाहिये कि जो तुम्हारी लड़की है, वह तुम्हारी तो है ही, मगर उसके साथ हमारा भी सम्बन्ध है। गाँव की लड़की केवल घर की लड़की ही नहीं होती, बल्कि वह पूरे गाँव की होती है।

हम तुम्हें एक बात बतायें, आज से कई सौ साल पहले एक राजा थे। उनका नाम था राजा अग्रसेन। वे अग्रवालों के पूर्वज थे। उनका यह नियम था कि जब कभी कोई गरीब उनके पास मदद के लिए आता था तो वे सबसे कहते

थे कि सब एक-एक रुपया निकालो। पूरी रियासत से पैसा इकट्ठा करके उसको दे देते थे और कहते थे, जाओ व्यापार करो। उनकी प्रजा में सभी सुखी थे। प्रजा में से हर एक व्यक्ति ऐसा करे, तो अपनी जेब से कुछ निकालने की जरूरत नहीं है। मान लो हमारे गाँव में पचास घर हैं, अगर हर व्यक्ति मेरी लड़की को दस ग्राम सोना दे, तो जब तुम्हारे घर में लड़की की शादी होगी तो हम भी देंगे। तुमने हमको दिया, हमने तुमको दिया, तो सब सुखी। गलत बात कह रहा हूँ क्या? आखिर तुमने 10 ग्राम सोना हमारी लड़की को दिया, हमने लौटा दिया। समाज में तो लेन-देन चलता है न? तुम्हारी लड़की के लिये तुम रोओ, हमारी लड़की के लिए हम रोएँ, यह गलत चीज है। तो यह प्रथा हम यहाँ चलाना चाहते हैं। और पिछले दो सालों से हमने चलायी भी है। पिछले साल तो ढाई-तीन सौ लड़कियों को उपहार दिया। जिनकी शादी दस साल पहले हुई थी, हमने तो उनको भी दे दिया।

हमको सारा सामाजिक चिन्तन बदलना होगा। पिछड़ी जातियों को अपने पैरों पर खड़ा होने के लिये अपनी शिक्षा को बढ़ाना होगा। और कोई उपाय नहीं है। आज के जमाने में शिक्षा के अलावा कोई धन नहीं है। दरिद्र से दरिद्र आदमी भी अगर आज शिक्षित हो जाए तो क्या हर्ज है जी? आखिर ईश्वरचन्द्र विद्यासागर भी तो दरिद्र थे न? उनके घर में बत्ती नहीं थी, तो म्यूनिसिपल बत्ती के नीचे अध्ययन करते थे। लाल बहादुर शास्त्री और भीमराव अम्बेडकर का उदाहरण भी आपके सामने है। और ये जो अभी हमारे राष्ट्रपति महोदय हैं, के. आर. नारायणन, ये तो महागरीब आदमी थे। लेकिन आज बहुत ही सम्माननीय विद्वान् हैं। उन्होंने अपना जीवन खुद बनाया है।

पिछड़ी जाति के लोगों को पिछड़ा क्यों कहा जाय? आखिर हमारे यहाँ जो विद्वान् है, उसको ब्राह्मण कहा जाता है, जो लड़ सकता है उसको क्षत्रिय कहते हैं, जो बनिया का काम करता है उसको वैश्य कहते हैं और जो सब काम करता है, उसको शूद्र कहते हैं। शूद्र का मतलब कुछ गलत थोड़े ही होता है। शूद्र का मतलब कारखानों में काम करने वाले, खेतों में काम करने वाले, मजदूरी करने वाले, जिन्हें हम लोग श्रमिक कहते हैं। अगर तुम मुझे शूद्र कहते हो तो मैं हूँ। और हमारे यहाँ तो वेदों में कहा जाता है कि हर एक आदमी जब पैदा होता है, तो शूद्र ही होता है– *'जन्मना जायते शूद्रः।'* जन्म से तो सभी शूद्र ही पैदा होते हैं।

–23 अक्टूबर, 1997



अध्याय 13

मनुष्य की सबसे बड़ी समस्या उसका मन है। शरीर उसकी समस्या नहीं है। शरीर में जितनी बीमारियाँ होती हैं, चाहे रक्तचाप हो, पेचिश हो, सर्दी-खाँसी या बुखार हो, अस्सी प्रतिशत बीमारियों में मन का योगदान निश्चित रहता है। कुछ बीमारियों में तो सौ प्रतिशत रहता है। किसी का मन ऐसा है तो किसी का वैसा, पर यह समझ लो कि सबके साथ ऐसा ही होता है। तुम सिर्फ अपने ही बारे में सोचते-समझते हो, मगर यदि दूसरे से पूछोगे तो वह भी यही कहेगा। मेरे पास तो आज तक सब यही बोलने वाले आए हैं। मुझसे आज तक किसी ने नहीं कहा कि स्वामीजी मेरा मन ठीक है। सब यही कहते हैं कि स्वामीजी मन में न जाने क्या-क्या होता है। मन का स्वभाव चंचल है। जैसे जल और हवा का स्वभाव बहना है, आग का स्वभाव जलना है, चंद्रमा का स्वभाव शीतलता है, सूर्य का स्वभाव गर्मी है, वैसे ही मन का स्वभाव चंचलता है। अगर चंचलता नहीं होगी तो मन भी नहीं होगा। मन का निश्चल और शान्त हो जाना लगभग असम्भव है। मन का एकाग्र हो जाना महादुष्कर काम है। इसलिए कबीरदासजी कहते हैं – *मैं उन संतन का दास जिन्होंने मन मार लिया।*

जिन्होंने अपने मन को अपने वश में कर लिया वे भगवान हो जाते हैं। राम और कृष्ण वही हैं। मन को वश में करना ही योग का, भक्ति का, मनुष्य के जीवन का लक्ष्य माना जाता है। मगर यह इतना सरल नहीं है। इसलिए मन के बारे में ज्यादा मत सोचो। जितना ज्यादा तुम मन के बारे में सोचोगे, तुम्हें उतनी ज्यादा पीड़ा होगी। जो लोग अपने मन के स्वभाव, चालचलन और गतिविधियों के बारे में ज्यादा सोचते हैं, उनको पीड़ा अधिक होती है। इसलिए मन के बारे में कम सोचो।

मन के बारे में सोचने के लिए समय कम मिले, इसलिए भगवान ने कर्म बनाये। कर्म में मन बहिर्मुखी हो जाता है, बाहर चला जाता है। आटा लाना, रोटी बनानी, सब्जी लाना, कपड़ा धोना, बीमार हैं तो डाक्टर के पास जाना, इन सबसे मन बहिर्मुखी रहता है। जब मन बहिर्मुखी रहता है तब अच्छा लगता है। यद्यपि अन्तिम लक्ष्य मन को अंतर्मुखी करना ही है, मगर प्रारम्भिक अवस्था में अंतर्मुखी करने से अवसाद होने लगता है। अंतर्मुखी स्वभाव वाले को मन की हर गतिविधि से पीड़ा होती है। मन चंचल हो तो पीड़ा होती है, मन शान्त हो तो भी पीड़ा होती है कि मुझे तो कुछ समझ में नहीं आ रहा है। ऐसा लगता है कि कोई चिन्ता ही नहीं है। इसलिए बहिर्मुखी रहो, संसार में मन लगाओ, बाल-बच्चों में मन लगाओ, रसोईघर में मन लगाओ। अंतर्मुखता बढ़ाने वाले काम कम करो। हम लोग जब संन्यास लेते हैं तब बारह साल तक अंतर्मुखी न होने देने के लिए कर्मयोग कराया जाता है। कर्मयोग में मनुष्य अपनी इन्द्रियों और मन को बहिर्मुखी रखता है।

मन अकेला कुछ कर ही नहीं सकता। वह तो बिजली की शक्ति की तरह है। अगर बिजली है, मगर बल्ब या तार नहीं तो क्या करोगे? कुछ नहीं कर सकते। उसी तरह मन को अभिव्यक्त करने के लिए इन्द्रियाँ माध्यम हैं। अभी तुम जो देख रहे हो, वास्तव में कौन देख रहा है? मन देख रहा है। तुम सुन रहे हो तो कौन सुन रहा है? मन सुन रहा है। कौन खा रहा है, कौन सो रहा है, कौन बैठा है, कौन खड़ा है, कौन दौड़ता है? केवल मन। पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पाँच कर्मेन्द्रियों से मन बाहर झाँकता है। इन्द्रियाँ अपने आप में जड़ हैं। टेलीफोन थोड़े ही बात करता है, बात तो आदमी करता है। टेपरिकॉर्डर का क्या फायदा जब तक टेप नहीं भरोगे? इसलिए इन्द्रियों को मन का उपकरण मानते हैं। इन इन्द्रियों को व्यस्त रखने के लिए इनको कर्मयोग में लगाना पड़ता है।

वेदों में लिखा है – *'ॐ भद्रं कर्णेभि: शृणुयाम देवा:, भद्रं पश्येमाक्ष-भिर्यजत्रा:'*। रोज तो तुम लोग यह मंत्र पढ़ते हो कि मेरी आँख अच्छा देखे, कान अच्छा सुनें, इन्द्रियाँ अच्छी तरह से कर्मयोग करें। कर्मयोग क्या है? मन लगाकर शारीरिक काम करना, चाहे खुर्पी चलाओ, फावड़ा चलाओ, कुदाल चलाओ, चाकू से सब्जी काटो, सुई से कपड़ा सिलो, सफाई करो, झाड़ू लगाओ, मकान को साफ रखो, स्नान करो और यदि कोई काम न हो, तो दूसरे के घर जाकर उसके लिए कुछ करो, गुरु की सेवा करो। इसे कहते हैं कर्मयोग।

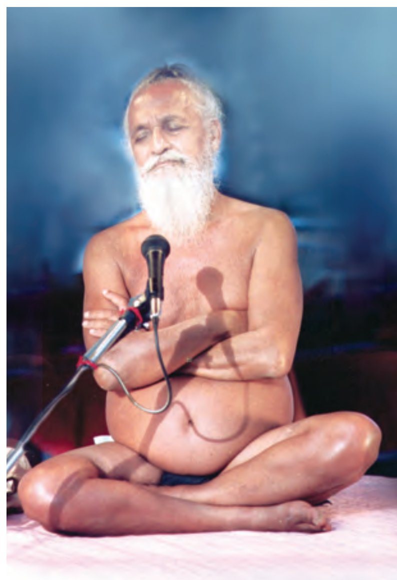
गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को शुरू-शुरू में कर्म योग ही बताया, ज्ञान योग तो बाद में बताया। ज्ञानयोग, भक्तियोग और राजयोग, ये सब तो अंतिम अध्यायों में आते हैं और संन्यास तो अठारहवें अध्याय में आता है। पहला अध्याय है विषाद योग और दूसरा है सांख्य योग। विषाद योग किसे कहते हैं? जब तक मन में विषाद नहीं आएगा, तब तक तुम्हारे अंदर मन को संभालने की इच्छा भी कैसे आएगी? अगर तुम्हें विषाद नहीं होता तो तुम मन के बारे में सोचते क्या? मन को सम्भालने की कोशिश आदमी तब करता है जब उसे विषाद होता है। विषाद नहीं होगा तो तुम्हें मन का ख्याल ही नहीं आएगा। मनुष्य अपने मन को नियंत्रित करने की चेष्टा कब करता है? जब मन उसे बहुत तंग करता है। जब मन बहुत तंग करता है, तभी तो मन को नियंत्रित करने का मन करता है न! इसलिए योग शुरू होता है विषाद से। गीता का पहला अध्याय विषाद योग है, हम लोगों के जीवन का भी पहला अध्याय विषाद योग है।

विषाद दो तरह का होता है, एक कम और दूसरा अधिक। मौसम में देखते हो न, कहते हैं हवा का दबाव कम है या ज्यादा है। जैसे हवा में कम और ज्यादा दबाव होता है, वैसे ही मन में भी कम और ज्यादा दबाव होता है। दबाव कब आता है? बच्चे का दबाव, काम का दबाव, दु:ख का दबाव, वासना का दबाव, गुस्से का दबाव, लड़की की शादी नहीं हो रही है, उसका दबाव, पैसा नहीं है और लड़का रोज पैसा माँगता है, उसका दबाव। वायु में दबाव होता है तो बरसात होती है, वैसे ही जब दिमाग में दबाव आता है, तब मन में कई प्रकार के विचार आते हैं। जो चीज अच्छी लगती है, उससे दबाव नहीं होता, बल्कि उसमें मजा आता है।

मन के अंदर कम और ज्यादा विषाद के क्या लक्षण हैं?

जिस समय मन में गर्मी आती है, जब आदमी बहुत गुस्सा करता है, बदले की भावना, प्रतिहिंसा की भावना, 'मरने दो उसको', 'जान से मार देंगे', ऐसे विचार आने से मन के अन्दर जो दबाव होता है, उसे ही अधिक दबाव कहते हैं। प्राय: दबाव कम ही रहता है, लेकिन अगर अधिक दबाव ज्यादा देर तक टिके तो आदमी पागल हो जा सकता है। दिमाग के अन्दर करोड़ों नाड़ियाँ हैं, जिनमें विद्युत प्रवाह होता है। उसका भी करेंट और वोल्टेज होता है, जिसे डॉक्टर और वैज्ञानिक इलेक्ट्रो-एनसिफेलोग्राम (ई.ई.जी.) यंत्र से नापते हैं। यह यंत्र बता देगा कि तुम्हारे मस्तिष्क में उस समय क्या

तरंग है। तुम्हारे मस्तिष्क में विषाद है कि नहीं, तुम्हारा दिमाग गर्म है या ठण्ढा। मान लो तुम बहाना करके लेटे रहो कि तुम सोये हुए हो, मगर हम एनसिफेलोग्राम लगा कर बता देंगे कि तुम सोये हुए नहीं हो, क्योंकि सोते समय दिमागी बिजली का वोल्टेज दूसरा होता है। जिस समय आदमी ध्यान में बैठता है, उस समय बिजली की क्रिया दूसरी होती है, और जब आदमी बड़ी चिन्ता या परेशानी में रहता है, तब उसके अन्दर बिजली का व्यवहार दूसरा रहता है। साधारण सोचने में,



चिन्ता करने में, कम सोचने में और नहीं सोचने में, इन चारों में दिमाग का वोल्टेज अलग-अलग रहता है।

यह मन कोई छोटी-मोटी शक्ति नहीं, संसार की सबसे बड़ी शक्ति है। जितने बड़े-बड़े चमत्कार ऋषि-मुनियों ने दुनिया में किए हैं, वह कोई जादू-टोना नहीं, सब मन की शक्ति का कमाल है। जादू-टोना कुछ नहीं होता। जितने भी देवी-देवता हैं, सब मन के रूप हैं। अब मुश्किल यह है कि इस मन को रोको, तो आदमी पागल हो जाता है और मन को जबरदस्ती विषय-विलास में भेजो तो भी आदमी पागल हो जाता है। शादी कराओ, गृहस्थी बसाओ, तो पागल हो जाता है। उसे बद्रीनाथ भेजकर रातभर पद्मासन में बैठा दो, तो भी पागल हो जाता है। इसे रोको तो पागल, छोड़ो तो पागल। क्या करें? लड़के को रोज पीटें तो भी वह बिगड़ जाता है और यदि स्वतंत्र छोड़ दें तो भी बिगड़ जाता है। यही मन का हाल है। कबीरदास जी ने लिखा भी है –

मन! तोहे केहि विध कर समझाऊँ।
घोड़ा होय तो लगाम लगाऊँ, ऊपर जीन कसाऊँ।
होय सवार तेरे पर बैठूँ, चाबुक देके चलाऊँ ॥
हाथी होय तो जंजीर गढ़ाऊँ, चारों पैर बँधाऊँ।
होय महावत तेरे पर बैठूँ, अंकुश लेके चलाऊँ॥

मन मैं तुमको कैसे समझाऊँ? मेरी समझ में तो आता नहीं है। घोड़ा होते तो लगाम लगा देता, पर तुम घोड़ा नहीं हो। हाथी होते तो जंजीर से बाँध कर रखता। हे भगवान! अब तो तुम ही इस मन से बचाओ। यह मेरे समझाने से नहीं समझता। शायद कबीरदास जी को भी यही समस्या रही होगी जो तुम लोगों को है। अगर समस्या नहीं रहती तो पद क्यों लिखते!

आखिर मन है क्या? ऋषि-मुनि कहते हैं कि मन परमात्मा की प्रचण्ड शक्ति है। एक उदाहरण से समझाते हैं। मान लो एक बड़ा कमरा है, जिसमें दो हजार वॉट का बल्ब जल रहा है। कमरा चारों तरफ से बिलकुल बन्द है, लेकिन एक जगह दरवाजे में दरार पड़ी हुई है और उस दरार में से वह तेज रोशनी थोड़ी-सी चमक कर बाहर दिखाई दे रही है। बस यही मन है। भगवान की प्रचण्ड शक्ति, जो इन्द्रियों के दरवाजे की दरार से तुमको प्राप्त हो रही है, वही मन है। ईश्वर ने ही मन को प्रकाशित किया है। खोपड़ी के माध्यम से जो तुम्हें अनुभव होती है, बस यही भगवान की शक्ति है। हाँ, यह शक्ति सम्पूर्ण नहीं, छोटे-से छेद से जो दिखाई देती है।

किसी के पास भी मन की इस समस्या का इलाज नहीं है। हमने इतना कह दिया, लेकिन कोई इलाज तो नहीं बता सके न। थोड़ा विषाद तो सबको होता है। समस्या तो यह है कि तुम लोग इतना पढ़-लिख गए हो, इतना जान गए हो कि यह अपने में एक समस्या बन गई है।

सबसे अच्छी चीज है कि घर-गृहस्थी में मन लगाओ। संसार में धन-दौलत, पति-पत्नी, बाल-बच्चे, घर-गृहस्थी जैसी चीजों में मन लगाना चाहिए, अंतर्मुखी नहीं रहना चाहिए। आदमी को एक उम्र के बाद ही अंतर्मुखी होना चाहिए। हमारा तो बचपन से ही वैराग्य में बड़ा मन लगता था। जब हम स्वामी शिवानन्द जी के पास आए, तब हमारा रुझान उसी तरफ था। लेकिन सन् 1947 में स्वामीजी ने हमसे कहा कि कम-से-कम चालीस साल ठहरो। अभी कुछ मत करो, जो मंत्र दिया है, केवल उसकी पाँच माला जप करो। इसके अलावा बस आश्रम का काम करो, भवन बनाओ, टाईपिंग करो, योग सिखाओ, गीता पढ़ो, रामायण पढ़ो, उपनिषद् पढ़ो। तुम सब कुछ करो, मगर गम्भीर साधना मत करो। चालीस साल रुको, उसके बाद तुम अपना जम सकते हो, उसके पहले नहीं।

इसलिए चालीस साल तक हम केवल गुरुजी का दिया हुआ मंत्र जपते थे। हम तो मन्दिर तक नहीं जाते थे। बस शाम को सात बजे सो जाते थे और

रात को बारह बजे उठते थे। नहा-धोकर अपने हाथ से अपने लिए चाय बनाते थे और टाइप-राईटर पर बैठ जाते थे। फिर एकाउंट्स देखते थे, लेख देखते थे, अनुवाद करते थे, पत्र-व्यवहार देखते थे, बैंक का काम देखते थे। साढ़े तीन बजे तक सब काम हो जाता था। उसके बाद फिर उठना, मिलना-जुलना, आश्रम की व्यवस्था देखना, बाहर जाना, यह सब करते थे। पर अब दूसरी चीजें करते हैं। अब तो हम चिट्ठी-पत्री भी नहीं देखते। कलम छुए हमें बरसों हो गए। जब भी मन लगता है, हम अपने भगवान का नाम जपते हैं, जैसा गुरुजी ने कहा है। इसके सिवा और कुछ काम नहीं करते। मेरे कहने का मतलब यही है कि मनुष्य को ऐसा जीवन बिताना चाहिए कि उसका मन कहीं-न-कहीं टिक कर रहे। मन को खाली नहीं रखना चाहिए क्योंकि खाली दिमाग शैतान का घर होता है।

सुख-दुःख और संतोष

हिन्दुस्तान के गरीब लोग हमेशा पैसे के लिये परिश्रम और संघर्ष करते हैं। धन-सम्पत्ति के अभाव में वे दु:खी हैं। यूरोप और अमेरिका के लोगों को पैसा, नौकरी, बीवी, घर, सब आराम से मिलता है, तो भी वे दु:खी हैं। जिसके पास नहीं है वह भी दु:खी है, जिसके पास है वह भी दु:खी है। यहाँ शादी नहीं होती, तो दु:खी हैं, वहाँ तो शादी बायें हाथ का खेल है, तो भी दु:खी हैं।

आखिर सुख का रहस्य क्या है? सुख गरीबी में है या अमीरी में? लोग कहते हैं कि संतोष में सुख है, मगर संतोष की परिभाषा क्या है? क्या संतोष केवल 'चलेगा' कहने से होता है, या मन में कोई एक केन्द्र होता है जिसे संतोष कहते हैं? साधु-महात्माओं में भी संतोष नहीं दिखता, बड़े-बड़े विद्वानों में भी संतोष नहीं है।

यह भी देखा गया है कि जिन जातियों में असंतोष है, उन जातियों ने बहुत उन्नति की है। जो सामाजिक, राजनैतिक या चिकित्सा व्यवस्था से संतुष्ट नहीं हैं, उन्होंने उन्नति की है, और जिन्हें संतोष हो गया, उनकी उन्नति समाप्त हो गई। संसार में पिछले दो-तीन सौ सालों में जितने भी बड़े-बड़े आविष्कार हुए हैं, उनसे यही देखने को मिलता है। यहाँ केवल वैज्ञानिक आविष्कारों की ही नहीं बल्कि मानव अधिकारों की बात भी हो रही है। स्त्रियों, कैदियों और वेश्याओं के अधिकारों की बात हो रही है। रेलवे स्टेशन पर जो अनाथ बच्चे घूमते रहते हैं, उनके अधिकारों की बात हो रही है। किसी कुँआरी लड़की

को बच्चा हो गया, उसने उस बच्चे को फेंक दिया, उस उपेक्षित शिशु के अधिकारों की बात हो रही है।

संतोष में सुख है पर उन्नति नहीं है, असंतोष में दु:ख है लेकिन उन्नति है। कितनी उन्नति की है उन लोगों ने। अंतरिक्ष में सैटेलाइट जाता है, उस सैटेलाइट में एक-एक साल तक लोग रहते हैं। उनके लिये पीने का पानी भी यहीं से जाता है। अभी हाल में अमेरिका ने कैसीनी नाम का सैटेलाइट छोड़ा है, जो सात-साढ़े सात साल में शनिग्रह पर पहुँचेगा। वहाँ जाकर वह गुब्बारे से मशीन उतारेगा, वह मशीन चित्र लेगी और फिर उन चित्रों को यहाँ भेजेगा। अभी कुछ दिन पहले मंगलग्रह पर पाथफाईंडर नाम का विमान उतारा गया। यह सब मनुष्य ने ही तो किया है न? इसे कमाल नहीं कहोगे क्या?

मनुष्य हमेशा से ज्ञान की प्राप्ति चाहता है, चाहे वह ज्ञान ईश्वर का हो या ईश्वर की सृष्टि का। महात्मा लोग ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करने के लिये तप करते हैं और वैज्ञानिक लोग ईश्वर की सृष्टि की जानकारी के लिये तप करते हैं। दो ही तो चीजें हैं, एक ईश्वर, दूसरी ईश्वर की सृष्टि। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपनी किताब 'सत्यार्थ प्रकाश' में लिखा है कि वेदों में तीन सत्य बताये गये हैं, ईश्वर, जीव और जगत्। जगत् तो जड़ है, मगर यह जो जीव है वह जगत् को भी देखता है और ईश्वर को भी। जब जीव ईश्वर की तरफ देखता है, ईश्वर को जानने की कोशिश करता है और ईश्वर के बारे में चिंतन करता है तब उसे आध्यात्मिक कहते हैं। वही जीव जब जगत् को जानने की कोशिश करता है और जगत् के बारे में चिंतन करता है तब उसे वैज्ञानिक कहते हैं।

वैज्ञानिक ईश्वर का चिन्तन नहीं करते। कहते हैं बाप रे बाप, उसका चिन्तन तो बहुत मुश्किल है। वह तो दिखता ही नहीं है। जिसे तुम जानना चाहते हो उसका कोई रूप, कोई नाम, कोई गुण, कुछ स्वभाव तो होना चाहिये। तुम तो कहते हो कि उसका कोई रूप नहीं, कोई रंग नहीं, देश और काल के परे है वह, तब फिर चिन्तन किसका करें? हाँ, जगत् दिखता है, यहाँ हवा है, आग है, पत्थर है, पानी है, चलो इसी का चिंतन करें। वैज्ञानिक भौतिकवादी दार्शनिक होता है, भौतिकता का दार्शनिक।

मनुष्य का स्वभाव चार प्रकार का होता है। कुछ लोग गत्यात्मक होते हैं, कुछ संवेदनशील होते हैं, कुछ रहस्यवादी होते हैं, और कुछ लोग बुद्धिजीवी होते हैं। स्वामी विवेकानन्द जी बहुत गत्यात्मक और क्रियाशील आदमी थे,

उनका मन काम करने में लगता था। जो संवेदनशील या भावुक होते हैं, वे चित्रकला, नृत्यकला, संगीत, साहित्य, नाटक, भक्ति और भजन आदि में रुचि रखते हैं। वे भावना प्रधान होते हैं, कर्म प्रधान नहीं। तीसरी होती है रहस्यमयी प्रवृत्ति, ऐसे लोग जिज्ञासा प्रधान होते हैं। वे हमेशा यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, समाधि, साधु-महात्माओं, जंगलों, तीर्थों, आदि का चिंतन करते हैं। और बहुत-से लोग बुद्धिजीवी होते हैं, वे कुछ नहीं करते, केवल खोपड़ी से सोचते हैं कि ईश्वर क्या है? उन्हें पता कुछ नहीं है, वे बुद्धि से ही जगत्, जीव, ईश्वर, पुनर्जन्म, लोक-परलोक की परिभाषा और व्याख्या करने की कोशिश करते हैं। उनके पास अनुभव कुछ नहीं होता। सब का अपना-अपना स्वभाव होता है।

बच्चे को कौन-सा कैरियर चुनना चाहिये?

उसे खुद सोचने दो। तुम माली हो और बच्चा फूल की कलम। तुम कौन-सा फूल उगाना चाहते हो? जो कलम है, वही फूल उगेगा। गुलाब की कलम रही तो गुलाब। जैसा संस्कार होगा, वह वैसा ही बनेगा। बुरा नहीं मानना, पर हिन्दुस्तान में हम लोगों की सबसे खराब आदत यही है कि हम अपने बच्चों को अपनी इच्छा के अनुसार अपने साँचे में ढालना चाहते हैं, और इसी कारण हमारे बच्चे कुछ नया नहीं कर पाते। अरे, उसका जीवन है, उसे अपने आप सोचने दो।

क्या छोटी उम्र में बुद्धि इतनी परिपक्व होती है?

बुद्धि से इसका कोई मतलब नहीं। गुलाब तो शुरू से ही गुलाब होता है। गेहूँ तो बीज में ही गेहूँ रहता है, क्या रोपने पर वह धान बन जाएगा? नहीं, गेहूँ का पौधा ही बनेगा। अगर बीज अच्छा होगा तो थोड़ा बढ़िया बनेगा। इसी तरह वह बच्चा भी तुम्हारे डी.एन.ए. से बना जरूर है, मगर जहाँ तक कुछ बनने का सवाल है, बच्चे को अपना भविष्य खुद सोचने दो। यह काम न माँ का है, न बाप का। बाप का काम है पैसा कमाकर बीवी को दे और बीवी का काम है कि दस-बारह साल तक बच्चे को खिलाए-पिलाए और उसे कुछ अच्छे संस्कार और आदतें सिखाए।

माता-पिता बच्चों को कुछ नहीं बना सकते। हमने बदमाश घरों में भी अच्छे बच्चों को देखा है, और अच्छे सन्तों के घरों में बदमाश बच्चे देखे हैं।

अरे, अगर हम माँ-बाप के साथ रहते तो क्या बनते? थानेदार ही तो बनते। माँ-बाप का काम सिर्फ कपड़ा-लत्ता जैसी भौतिक सुविधाएँ देना है। जितने भी देश आज दुनिया पर राज कर रहे हैं वे सब को यही संदेश दे रहे हैं। वहाँ के बच्चे चौदह-पन्द्रह साल की उम्र में अपने पैरों पर खड़े हो जाते हैं। उन्हें कह दिया जाता है कि बेटा हमने बहुत दिनों तक तुम्हारी देखभाल कर ली, अब तुम अलग रहने की कोशिश करो, बुढ़ापे में हमें भी एकांत में रहने दो। यहाँ तो तुम बुढ़ापे तक साथ-साथ रहते हो, बुढ़ापे तक परेशान रहते हो। इसलिये ऐसी संस्कृति लाओ कि कुछ दिन बच्चों पर मेहनत करो फिर आराम करो। जब बच्चा चौदह-पन्द्रह साल का हो जाता है, तब वह बेटा नहीं रहता, मित्र हो जाता है–

लालयेत् पंचवर्षाणि दशवर्षाणि ताडयेत् ।
प्राप्ते तु षोडशवर्षे पुत्र मित्रमिवाचरेत् ॥

पर सामान्यतया माता-पिता बच्चों के साथ कैसे रहते हैं? अधिकारी की तरह। यह सब इसलिये बता रहा हूँ कि हम लोग अपनी प्राचीन संस्कृति की ये सब बातें भूल गये हैं, और मैंने उन आधुनिक संस्कृतियों को भी देखा है, जहाँ लड़के तो छोड़ो, लड़कियाँ हिम्मत वाली हैं। तुम्हें मालूम है न कि अफगानिस्तान में टैंकों और हवाई जहाजों से भयंकर गृहयुद्ध चल रहा है? जानते हो वहाँ रिपोर्टर कौन हैं? लड़कियाँ। वहाँ लड़कियाँ युद्धक्षेत्र से रिपोर्ट भेजती हैं। बोसनिया लड़ाई में एक महिला रिपोर्टर थी, उसे गोली लग गई। उसे इलाज के लिए तुरन्त लंदन पहुँचाया गया, वह इलाज करवाकर फिर वापस आ गई! वहाँ लड़कियों में इतनी हिम्मत है, इतनी योग्यता है, तो तुम जरा वहाँ के लड़कों के बारे में सोचो। ऐसी जात दुनिया पर राज करती है। जब तक तुम्हारे बेटा-बेटी हिन्दुस्तान को शाहंशाही नहीं दिलाएँगे उनका लेक्चरर, डॉक्टर, प्रोफेसर, अधिकारी, मंत्री आदि बनने का कोई फायदा नहीं। अधिकारी बनेगा तो क्या होगा, दस-बीस हजार कमाएगा। पैसा कमाना कौन-सी बड़ी बात है। मनुष्य जीवन केवल पैसे के लिये तो नहीं है। दो रोटी तो भगवान जान, अजान, जहान, सब को देते हैं।

जान को देत, अजान को देत, जहान को देत, तुम्हें वही दैहें ।
काहे को सोच करे मन मूरख, जिन चोंच दिये वही चून भी दैहें ॥

जिसने मुँह दिया है, वह खाना भी देगा। इसलिए आदमी को सिर्फ पैसे के लिये काम नहीं करना चाहिये, सिर्फ पैसे के लिये विद्यार्जन नहीं करना चाहिये, बल्कि इस जीवन में कुछ बनना चाहिये।

उसके लिये तरीका क्या है? अमेरिका और यूरोप में क्या होता है कि लड़का पहले मैट्रिक तक पढ़ता है, उसके बाद वह कहीं पर छोटी-मोटी नौकरी कर लेता है। यह जरूरी नहीं कि वह नौकरी किसी अच्छे दफ्तर या पोस्ट ऑफिस में हो। लड़के का बाप डॉक्टर हो सकता है, माँ व्याख्याता हो सकती है और बेटा मुर्गीखाने में मुर्गी की बीट साफ करता है। यह बात हिन्दुस्तान के बड़े घरों के लोगों की समझ में नहीं आ सकती। मैट्रिक के बाद एक-दो साल तक वे ऐसा करते हैं। पैसा अच्छा मिल जाता है। दो-चार लड़के-लड़की लोग साथ में रहते हैं, अपना खाना बनाते हैं, खाते-पीते हैं, दो-तीन साल के बाद वे घूमने जाते हैं। चीन की दीवार देखेंगे या समुद्र में जो नगर है, वेनिस, उसे देखने जाएँगे। दो-तीन साल घूमने के बाद वे वापस आते हैं और कोई एक विषय लेकर विश्वविद्यालय जाते हैं। वहाँ के विश्वविद्यालय यहाँ की तरह नहीं हैं। तुम चिड़िया के बारे में जानना चाहते हो, तितली के बारे में जानना चाहते हो या फिर लोमड़ी के बारे में जानना चाहते हो तो वही विषय लेकर विश्वविद्यालय में जाते हो। वहाँ विद्या का प्रयोजन अर्थ नहीं है। वहाँ विद्या ज्ञान के लिये पायी जाती है, जानकारी के लिये पायी जाती है।

हिन्दुस्तान में विद्या का प्रयोजन सिर्फ पैसा रह गया है। यहाँ कोई जानकारी के लिये विद्या प्राप्त नहीं करता। केवल प्रमाण-पत्र मिल जाय, नौकरी लग जाय, बस। यह हालत आप पढ़े-लिखे लोगों को बदलनी होगी। आप लोगों को बच्चों के बारे में चिन्ता करने की बिल्कुल जरूरत नहीं है। आजकल के बच्चे बड़े तेज होते हैं और ये लोग अपनी अलग संस्कृति बना रहे हैं। इनके विचार अलग हैं, आदर्श अलग हैं, पर डर के मारे तुम्हारे सामने प्रकट नहीं करते। शादी, धर्म, ईश्वर, सब चीजों के बारे में इनके अपने विचार हैं, पर बोल नहीं सकते और जब तक बोलने का समय आता है तब तक इन्हें शादी में फँसा देते हैं।

आजकल तो प्रेम-विवाह का रिवाज चल रहा है। बच्चे कहते हैं कि यह जीवन तो हमारा है, हम अपनी पसन्द से शादी करेंगे, तुम्हारी

पसन्द से क्यों करेंगे। मैं तो समर्थन करती हूँ। कहती हूँ, तुम जो चाहो वही करो।

तुम समर्थन करो या न करो, हिन्दुस्तान में जो जमाना बदल रहा है, उसमें कई सामाजिक मान्यतायें बदलनी होंगी। उसमें एक मान्यता यह भी है कि प्रेम-विवाह हो या सामाजिक विवाह। आने वाले जमाने में बच्चे यह प्रश्न करेंगे कि शादी तो मेरी हो रही है, तुम्हारी थोड़े ही हो रही है, फिर तुम्हें कौन-सी चिन्ता लगी हुई है। यह एक प्रश्न है और दूसरा प्रश्न है, विवाह के पूर्व शारीरिक सम्बन्धों का। आजकल सब चीजों में स्वतंत्रता है, लड़के-लड़कियाँ खुलकर पूर्व-वैवाहिक सम्बन्धों पर बातचीत करते हैं। एक और प्रश्नचिह्न है अविवाहित माँ का। आज के समाज में अविवाहित गर्भवती लड़कियों के सामने गर्भपात के अलावा कोई चारा नहीं। लेकिन गर्भपात लड़की के स्वास्थ्य के लिये अच्छी चीज नहीं है। उससे ट्यूमर हो सकता है, कैंसर हो सकता है, गर्भाशय की आन्तरिक बीमारियाँ हो सकती हैं। इसे कैसे रोका जाए? या तो तुम गर्भपात कराओ, या फिर अविवाहिता माँ की स्थिति को स्वीकार करो।

यह तो सिर्फ शादी के बारे में हुआ। ऐसी बहुत-सी चीजें हैं जिनके बारे में बच्चों के अपने विचार हैं। कपड़े के बारे में इनकी अपनी राय है, भोजन के बारे में इनकी अपनी राय है। समाज को समय के साथ बदलना चाहिये। हिन्दुस्तान में आज हम कई शताब्दियों में एक साथ रह रहे हैं। दिल्ली-बम्बई में इक्कीसवीं शताब्दी आ गई है और यहाँ रिखिया में सत्रहवीं शताब्दी चल रही है। अपने चारों ओर विस्तृत समाज को देखो और थोड़ा चिन्तन करो। तुम ही अकेले दुनिया में नहीं हो। एक सरल-से गणित से यह बात तुम्हारी समझ में आ जाएगी।

दुनिया की आबादी कितनी है? 5 अरब। उस पाँच अरब में से हिन्दुस्तान में हैं कुल 90 करोड़। 90 करोड़ में से 12 करोड़ मुसलमान हैं, तो बचे 78 करोड़। उसमें से 2 करोड़ ईसाई हैं, तो बचे 76 करोड़। उसमें भी हिन्दुस्तान भर में 20 करोड़ आदिवासी हैं, तो बचे 56 करोड़। 56 करोड़ में से तुम शूद्र जाति को निकाल दो, तो बचते हैं केवल 20 करोड़। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, ये सब मिलकर अल्पसंख्यकों में आते हैं। तुम सब अल्पसंख्यकों में हो। जिन्हें तुम शूद्र कहते हो, धोबी, कुम्हार, चमार, मेहतर कहते हो, जो दलित वर्ग है, हिन्दुस्तान में इनकी संख्या 50 प्रतिशत है। अगर आज वे राजनीति में एक हो जाएँ, तो तुम्हें पछाड़कर रख देंगे।

यही लोग कर्मचारी हैं, यही मिल में काम करने वाले, खेत में काम करने वाले, मजदूरी करने वाले लोग हैं। सिर्फ तुम 20-25 करोड़ लोग जात-पात मानते हो और लड़कियों को हथकड़ी लगाकर, फँसाकर रखते हो। दुनिया में कहीं जात-पात नहीं है। मुसलमान जात-पात नहीं मानते, ईसाई जात-पात नहीं मानते, यहूदी जात-पात नहीं मानते, पारसी जात-पात नहीं मानते, चीनी जात-पात नहीं मानते, जापानी जात-पात नहीं मानते, रूसी जात-पात नहीं मानते लेकिन तुम लोग कहते हो कि तुम्हारी जात-पात की प्रथा वेदों में लिखी है। कहीं नहीं लिखा है, सब झूठ है। वेदों में ऐसा कहीं नहीं लिखा है। यह उसके घर का खाना नहीं खाता, वह इसके घर का खाना नहीं खाता। यह उसके घर में शादी नहीं करता, वह इसके घर में शादी नहीं करता। ये सब गलत बातें हैं। जब तुम सारी दुनिया को देखोगे तब तुम्हें पता चलेगा कि असली सत्य क्या है।

हर मनुष्य को अपने भविष्य का चुनाव खुद करना है। माता-पिता तो माता-पिता रहेंगे ही, आखिर किसी पेड़ से तो तुम्हारी कलम निकली ही है, वह तो हमेशा माना जायेगा। मगर बच्चे को अपना भविष्य खुद सम्भालना पड़ता है और इसके लिये चिन्तन करना चाहिये। अगर तुम्हारी विज्ञान में रुचि नहीं है तो कोई बात नहीं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने तो विज्ञान नहीं पढ़ा, पर नोबेल पुरस्कार मार ले गये। अरुंधती राय तो वैज्ञानिक नहीं है, मगर बुकर पुरस्कार मार ले गई। ऐसे बहुत-से लोग हैं जो साहित्य, संगीत या कला के क्षेत्र में बढ़िया काम कर रहे हैं। तुम आज किसी भी क्षेत्र में आगे बढ़ सकते हो।

संन्यास का क्षेत्र अभी भी सीमित है। संन्यास को लोगों ने बहुत सीमित रखा है। जिस सम्प्रदाय में बहुत ज्यादा कानून होते हैं, वह सम्प्रदाय अधिक उन्नति नहीं करता। कानून में लचीलापन होना चाहिये। जिस समाज में ज्यादा कायदे-कानून होते हैं, उस समाज को हर कदम पर बाधाओं का सामना करना पड़ता है। एक-आध हम जैसे निकल गये तो निकल गये, बाकी तो बीच में ही खत्म हो जाते हैं। यह इतना आसान मार्ग नहीं है। संन्यास क्षेत्र में तो बहुत सम्भावनाएँ हैं, मगर इस क्षेत्र के कुछ नियम हैं, कुछ प्रतिबंध हैं, जिन्हें सब लोग बरदाश्त नहीं करेंगे। मान लो किसी ने संन्यास ले लिया और कुछ सालों के बाद उसे शराब पीने की इच्छा हुई, या माँस खाने की इच्छा हुई, तो वह क्या करेगा? इस चीज को न तो हिन्दू स्वीकार करेंगे, न कैथोलिक स्वीकार करेंगे।

हो सकता है आगे जाकर, बीस-पचीस साल बाद यह सम्भव हो सके। इसलिए मैंने एक परम्परा को जन्म दिया है, जिसमें विवाहित व्यक्ति भी संन्यासी की तरह रह सकें, दो विवाहित संन्यासी साथ रहकर अपना काम करें। स्वामी नित्यबोधानन्द यहाँ बीस साल संन्यास में रहा। उसकी शादी हो चुकी थी, पर वह शादी उसने तोड़ दी थी। युवावस्था में वह हिन्दुस्तान आया, मेरे पास रहा। धनबाद आश्रम में रहता था, मेरी गाड़ी भी चलाता था। उसके बाद वह वापस ऑस्ट्रेलिया चला गया। वहाँ भी वह स्वामी नित्यबोधानन्द ही रहा, उसने वहाँ योगाश्रम शुरू किया। वहाँ एक संन्यासिनी थी, स्वामी दीपावली। उसकी भी पहली शादी टूट गयी थी। स्वामी नित्यबोधानन्द ने उसके साथ शादी कर ली। अब दोनों साथ में रहते हैं, उनकी एक लड़की है धर्मक्षेत्र। वह भी अब संन्यासिनी है, यहीं रहती है। अब समाज इसे स्वीकार करे तब बात है। पढ़े-लिखे लोगों से ही कुछ सम्भावना है। नहीं तो आम लोग बोलते हैं, 'अरे कैसा साधु है, औरत के साथ रहता है।' पहले तो कोई नहीं बोलता था कि वशिष्ठ जी कैसे अरुन्धती के साथ रहते हैं, अगस्त्य जी लोपामुद्रा के साथ कैसे रहते हैं। कोई बोलता था क्या? ऋषि विश्वामित्र और मेनका का सम्बन्ध तो सब जानते हैं, मगर कोई कुछ कहता है क्या? नहीं, क्योंकि हमारी संस्कृति ऋषियों की संस्कृति है।

ईसाई धर्म में इस मुद्दे पर बहुत झंझट हुआ था। इतिहास तो तुम शायद जानते ही हो, कैथोलिक पादरी शादी नहीं कर सकते थे, मार्टिन लूथर ने हंगामा मचाया था। तब ईसाई धर्म में दो सम्प्रदाय बन गए, कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट। कैथोलिक पादरी शादी नहीं कर सकते हैं, शादी करने पर उनको धर्म से बाहर निकाल दिया जाता है, बातचीत बंद कर दी जाती है, उन्हें कब्र भी नहीं मिलती। जबकि प्रोटेस्टेन्ट पादरी लोग शादी करके रहते हैं, उनके बाल-बच्चे होते हैं, उपदेश वगैरह देते रहते हैं।

वैवाहिक जीवन किसी भी व्यक्ति के अध्यात्म को नष्ट नहीं कर सकता, यह तो सब मानते हैं, तो फिर जिसको विवाह करना हो, वह विवाह क्यों नहीं करेगा? सब के लिये ब्रह्मचर्य सम्भव नहीं है। पर समाज उसके लिये तैयार नहीं है। हमारा समाज अभी इतना परिपक्व नहीं हुआ है। कम-से-कम बीस-पचीस साल और लगेंगे। शराब को गाली तो सब देते हैं पर जूना अखाड़ा में जाकर सब लोग पीते हैं। जूना अखाड़ा के लोग ब्रान्डी पीते हैं, और लोग देते भी हैं।

तो शराब पीने में क्या हर्ज है?

तुम्हारे व्यक्तिगत विचार और समाज के विचार अलग-अलग होते हैं। व्यक्ति की मान्यता और समाज की मान्यता, ये दो अलग-अलग चीजें हैं। समाज की मान्यताएँ सामाजिक मूल्यों पर चलती हैं और वे सामाजिक मूल्य कई हजार सालों से चले आ रहे हैं। बीच में बौद्ध और जैन लोगों ने उन्हें तोड़ दिया, नहीं तो हमारे वैदिक धर्म में ऋषि-मुनि अपनी पत्नी के साथ रहते थे। अरे, जब भगवान ने शादी की है तो ऋषि-मुनि क्यों नहीं करेंगे जी? रामजी ने विवाह किया कि नहीं? कृष्णजी ने किया कि नहीं? और शिवजी ने तो दो शादियाँ कीं।

मगर समाज में शराब को बुरा क्यों मानते हैं?

वास्तव में शराब पीने से आदमी के शरीर को नुकसान पहुँचता है। किसी भी हालत में शराब शरीर के लिये अच्छी चीज नहीं है। हिन्दुस्तान में शराब पीते हैं तो मर जाते हैं, टीबी हो जाता है, क्योंकि भोजन तो कुछ मिलता नहीं, सूखा चावल खाते हैं। भोजन तो भरपेट मिलता नहीं, और शराब पीते हैं बोतल भर। तो आमाशय में पित्त बढ़ जाता है, लीवर खराब हो जाता है, सिरोसिस हो जाता है। इसीलिये हमारे पूर्वजों ने मदिरापान के लिए मना किया।

वैसे ऋग्वेद में सोमरस पर पूरे का पूरा अध्याय है, सोम स्तुति। ऋग्वेद का सबसे सुन्दर अध्याय भी शायद वही है। साहित्य की दृष्टि से वह बड़ा ही सुन्दर है। यह सोमरस क्या था? सोमरस एक लता होती थी, जिसका यह लक्षण है कि शुक्ल पक्ष में पूर्णिमा को उसके सब पत्ते निकल आते हैं और अमावस्या को उसके सब पत्ते गिर जाते हैं। लोग उन पत्तों को तोड़ लेते थे और घड़े में डाल देते थे। फिर उसे बन्द करके जमीन के अन्दर डाल देते थे। पन्द्रह दिन के बाद निकालते थे, तब तक वह सड़ जाता था, फिर उसे उबालकर उसमें से मदिरा निकाली जाती थी। फिर उसे डिस्टिल करके पूजा के समय पिया जाता था। उसी को वे अग्नि को चढ़ाते थे। मगर केवल ऋत्विज, अध्वर्यू, ब्रह्मा और होता - ये चार प्रकार के ब्राह्मण जो चार वेदों के प्रतिनिधि होते हैं, उसको पी सकते थे। ब्राह्मणों के अलावा और कोई नहीं पीता था। उस वक्त क्षत्रियों को भी पीना मना था। मगर क्षत्रिय धीरे-धीरे राजनैतिक शक्ति में आ गए। जिसके हाथ में राजनैतिक शक्ति है, उसके हाथ में सारी शक्तियाँ हैं। तो उन्होंने भी पीना शुरू कर दिया। जब क्षत्रिय

शराब पीने लगेगा तो क्या होगा? एक तो स्वभाव से वैसे ही हिंसक, ऊपर से मदिरापान। समाज की हालत खराब हो गई। तब जाकर नियम बने। वैश्यों ने कहा, ना बाबा ना, इसको छूना पाप है। तब से बनियों में, चाहे अग्रवाल हो, मोदी हो, चाहे कोई भी हो, शराब पीना मना कर दिया। शराब पियेगा तो पैसा क्या कमायेगा?

लेकिन आज के समाज में कोई किसी को पीते हुए देखता है तो उसे मना करता है या उससे नफरत करता है। यह नहीं होना चाहिये न?

यह तो दुनिया की रीत है। एक आदमी दूसरे को बोलता है कि तू तो जुआरी है, जबकि वह खुद जुआरी है। एक चोर दूसरे चोर को चोर कहकर गाली देता है। ऐसे ही शराबी दूसरे शराबियों को गाली देता है। यह तो मनुष्य का स्वभाव है। इसमें कोई विशेष बात नहीं। दूसरे की निन्दा करना मनुष्य के लिये सबसे सरल है। उसमें कुछ नहीं है। पर दूसरों की तारीफ करना बहुत मुश्किल है, अपने अहंकार पर नियंत्रण करना पड़ता है।

मांसाहार के बारे में आपकी क्या राय है?

शाकाहार और मांसाहार का सम्बन्ध शरीर और स्वभाव, दोनों से है। माँस का असर शरीर और स्वभाव, दोनों पर पड़ता है। लेकिन तुम्हारी आध्यात्मिक उन्नति पर उसका अच्छा या बुरा, कोई असर नहीं पड़ता। जिन्दगी भर तुम दूसरों को लूटकर फल खाते रहो या तुम माँस खाओ और गरीबों की सेवा करो, क्या अच्छा है बोलो? सत्कर्म करने वाला ही श्रेष्ठ है, सत्यवचन बोलने वाला ही श्रेष्ठ है, सद्विचार करने वाला ही श्रेष्ठ है, चाहे वह मांसाहारी ही क्यों न हो। कुत्ता मांसाहारी है पर वह कितना स्वामी भक्त होता है, यह अच्छा गुण नहीं है क्या?

इसलिये इन चीजों में भ्रमित नहीं होना चाहिये। हम यह नहीं कहते कि माँस खाओ या मत खाओ, क्योंकि इन सब चीजों के बारे में बहुत सावधानी से सोचना चाहिये। हिन्दुस्तान बहुत गर्म देश है, यहाँ लापरवाही करोगे तो नुकसान उठाओगे। यहाँ सावधानी नहीं की जाती इसलिए यहाँ माँस में बहुत जल्दी कीटाणु पैदा हो जाते हैं। जो मांसाहारी देश हैं, वहाँ जब पशुओं को कसाईघर में ले जाते हैं, उस वक्त हर जानवर को एंटिबायोटिक का

इंजेक्शन दे देते हैं, जिसकी वजह से वह माँस काफी देर तक जैसे का तैसा रहता है। फिर वे देश इतने ठण्ढे हैं कि वहाँ तो दूध तक नहीं फटता। वहाँ दूध नहीं उबाला जाता, छह-छह महीने तक दूध ताजा रहता है। ठण्ढ की वजह से वहाँ माँस में कोई दोष या विकार नहीं आता। इस देश में लोग कैसे काटते हैं, कैसे रखते हैं, मक्खियाँ पड़ती रहती हैं, शुद्धता है नहीं, इसलिए यह स्वास्थ्यकर नहीं है।

दूसरी चीज यह है कि जिस जानवर को काटा जाता है, उसे कौन-सी बीमारी है, यह जानना जरूरी है। वैसे तो बीमारी सब्जी और अन्न में भी होती है मगर वह ऐसी नहीं होती कि मनुष्य के स्वास्थ्य को प्रभावित करे। मगर माँस में जो रोग होता है वह मनुष्य को प्रभावित करता है। हमने तो देखा है, संथाल लोगों से पूछा है। जब कभी पाठा मर जाता है तो ये लोग उसे दस रुपये में खरीद कर खाते हैं। सब बीमार रहते हैं, सबको रोग है।

तो मांसाहारी भोजन से रोग की सम्भावनाएँ अधिक होती हैं। इससे दिल की बीमारी, उच्च रक्तचाप और अवसाद जैसी कई बीमारियाँ हो सकती हैं। वैज्ञानिक लोग कहते हैं कि शाकाहार में खतरा नहीं है, पर मांसाहार में बहुत खतरा है। लेकिन अध्यात्म से इसका कोई मतलब नहीं है। वह ज्ञान का मार्ग है, मोक्ष का मार्ग है, उसे इसके साथ मत जोड़ो। माँस खाना या न खाना सामाजिक वस्तु है। इसे लौकिक दृष्टि से देखो। अच्छा है तो खाओ, खराब है तो छोड़ दो। वही दृष्टि शराब के प्रति होनी चाहिये, वही दृष्टि ब्रह्मचर्य के प्रति होनी चाहिये। लौकिक चीज को लौकिक दृष्टि से देखो। अध्यात्म दृष्टि से केवल एक ही चीज देखो। क्या तुम भगवान को उतना ही प्यार करते हो जितना अपने पति या बच्चे को करते हो?

कामिहि नारि पिआरि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥

भगवान की याद केवल इसी तरह करनी चाहिये। तब माँस खाओ, न खाओ, प्याज खाओ, न खाओ, लहसुन खाओ, न खाओ, शादी करो या ब्रह्मचारी बनो, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। यह लौकिक चीज है। इसको उसके साथ मत जोड़ो। भक्ति को स्वतंत्र रखो, एकदम स्वतंत्र। उसको जात-पात, शादी-ब्याह या खान-पान के साथ मत जोड़ो। भक्ति धर्म से ऊपर है, भक्ति लोकाचार से ऊपर है, भक्ति संस्कृति से ऊपर है, भक्ति स्त्री-पुरुष के

सम्बन्धों से ऊपर है। भक्ति तो हृदय की बात है। भक्ति एक चमार में, एक कसाई में, एक वेश्या में भी हो सकती है।

एक कहानी आती है जिसमें किसी शहर की मुख्य सड़क के इस पार एक महात्मा रहते थे और सड़क के उस पार एक नाचने वाली वेश्या का घर था। महात्मा के आश्रम में खूब कीर्तन-भजन होता था। नाचने वाली सुबह चार बजे नहा-धोकर, तैयार होकर भजन सुनने के लिए अपनी खिड़की पर आ जाती थी। उसे भजन-कीर्तन बहुत अच्छा लगता था। उस तरफ से महात्मा दिनभर उसे गाली देते रहते थे, यह औरत बदजात है, बहुत खराब है वगैरह। मरने के बाद जब दोनों भगवान के पास गये तो सारी स्थिति बदल गयी। वह पास हो गई और महात्मा फेल हो गये।

भक्ति में दृष्टि का बहुत महत्त्व है। भक्त की दृष्टि केवल ईश्वराभिमुख रहती है, लोकाभिमुख नहीं रहती। तुमने किसी चमार से बात कर ली, किसी मेहतर को छू लिया, किसी मियाँ जी से बात कर ली, यह सब लोकाभिमुख दृष्टि है। भक्ति खोपड़ी या बुद्धि का विषय नहीं है, केवल दिल का विषय है। दिल से ही श्रद्धा और विश्वास उपजते हैं। अब तुम्हें कैसे मालूम कि तुम्हारा बाप वास्तव में तुम्हारा बाप है। बस मान लेते हो न? इसे ही कहते हैं श्रद्धा और विश्वास। जिसे साबित नहीं किया जा सकता, मगर जो है। श्रद्धा स्वाभाविक होती है, विश्वास स्वाभाविक होता है। जब बच्चे छोटे होते हैं, मासूम होते हैं, तब उनमें श्रद्धा और विश्वास रहता है। जो कहो मान लेते हैं।

स्वामीजी, अपने इष्ट का ज्ञान कैसे होता है?

इष्ट की जानकारी सहज रूप से होती है, अपने आप होती है। मीराबाई को अपना इष्ट ढूँढना नहीं पड़ा। जब वे बहुत छोटी बच्ची थीं, तब एक साधु महाराज उनके पिताजी के महल में आए, उनके यहाँ ठहरे। उनके पास श्रीकृष्ण की मूर्ति थी, वह मीरा को सहज ही स्वीकार हो गई, उनको दूसरा भाव आया ही नहीं। 'मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरा न कोई।' अब वे रामजी की तरफ क्यों नहीं गईं या शिवजी के पीछे क्यों नहीं गईं?

पहले यह जान लो कि इष्ट का मतलब क्या होता है। यह संस्कृत शब्द है, जिसका अर्थ है 'इच्छित'। जिस वस्तु की हमने मन में इच्छा की, वह इष्ट वस्तु है। उसी तरह से इच्छित व्यक्ति, इष्ट व्यक्ति है और इच्छित देवता, इष्ट देवता। जिसे तुम चाहते हो, वही तुम्हारा इष्ट है। अब तुम क्या चाहते हो,

यह तुम्हें मालूम होना चाहिए, कोई दूसरा क्या जानेगा? अगर तुम कई चीजें चाहते हो, राम जी को भी चाहते हो, कृष्ण जी को भी चाहते हो, देवी जी को भी चाहते हो, तो इष्ट का निर्धारण करने में कठिनाई होती है। यह समस्या हमको भी आयी थी। बचपन से तो हम सहज रूप से श्रीराम को इष्ट मानते थे, मगर जिस सम्प्रदाय में हमने प्रवेश किया और जिसे स्वीकार किया, वह शैव सम्प्रदाय था। संन्यासी तो शैव होते हैं। बचपन से ही हमारे इष्ट थे श्रीराम, और हम चले गए शैव सम्प्रदाय में और शैव सम्प्रदाय में जाने पर हमें मंत्र भी कौन-सा मिला? शिवजी का! अब हमारे इष्ट कौन हुए?

हमने सोचा, 'इष्ट तो हम श्रीराम को ही रखेंगे, मगर हमारा इष्ट मंत्र पंचाक्षरी रहेगा।' तो हमारे इष्ट मंत्र और इष्ट देव अलग-अलग हैं। हमें इसमें नुकसान नहीं, फायदा ही है। यहाँ इष्ट देव का मतलब उस देवता से है जिसके द्वारा तुम परमात्मा के पास पहुँचने का प्रयत्न कर रहे हो। इष्ट देव वह सीढ़ी है जिसके द्वारा तुम छत पर पहुँचने की कोशिश कर रहे हो, वह रास्ता है जिसके द्वारा तुम अपने लक्ष्य तक पहुँचने का प्रयास कर रहे हो। लेकिन वह रास्ता कौन-सा हो, वह हर एक को अपने लिए सोचना पड़ता है। गुरु केवल मंत्र देता है, वह इष्ट नहीं बताता। गुरु यह नहीं कहेगा कि तुम शिवजी को पूजो या रामजी को पूजो या देवीजी को पूजो। नहीं, वह केवल मंत्र देता है। वह मंत्र 'ॐ नमः शिवाय', 'श्रीराम', 'नमो नारायण', 'ह्रीं क्रीं', कुछ भी हो सकता है।

इष्ट मंत्र नाम है और इष्ट देवता रूप। रूप और नाम, ये ईश्वर की दो उपाधियाँ हैं। इष्ट देवता को चुनने के लिए रूप जरूरी है। तुम्हें कौन-सा रूप पसन्द है, उसके साथ तुम्हारा क्या सम्बन्ध है? मीराबाई का पति-पत्नी का सम्बन्ध या हनुमान जी का मालिक-नौकर का सम्बन्ध या यशोदा जी का माँ-पुत्र का सम्बन्ध या राधा-कृष्ण का सखी-सखा का सम्बन्ध? ये केवल उदाहरण दे रहा हूँ। सम्बन्ध देखना पड़ता है। इष्ट मंत्र और देवता एक भी हो सकते हैं और अलग भी।

ईश्वर दो नहीं होते। हाँ, ईश्वर के जो रूप तुमने चुने हैं, वे दो हो सकते हैं। तुमने एक धारण किया, हमने दूसरा धारण किया, किसी ने तीसरा धारण किया, यह हो सकता है। हमारे मन-मस्तिष्क में ईश्वर की अलग-अलग छवियाँ हो सकती हैं। जिस तरह सूर्य का प्रकाश लाल काँच से लाल, नीले काँच से नीला, पीले काँच से पीला, हरे काँच से हरा और सफेद काँच से

सफेद दिखता है, पर सूर्य वास्तव में तो ऐसा नहीं है, उसी तरह हर एक के मन में भगवान के रूप की कोई-न-कोई छाया पड़ी है – *जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत तिन देखी तैसी।*

भगवान ने जब-जब अवतार लिया, किसी-न-किसी रूप में लिया। भगवान ने जब-जब किसी को दर्शन दिया, किसी-न-किसी रूप में दिया। जब-जब किसी ऋषि ने कोई स्तुति लिखी, तो भगवान के किसी विशेष रूप की लिखी। किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि ईश्वर अनेक हैं। दूध से तुमने रबड़ी बनाई, हमने पेड़ा बनाया, उन्होंने रसगुल्ला बनाया, किसी ने कुछ बनाया, किसी ने कुछ, पर दूध तो अलग नहीं है। हाँ, दूध के रूपान्तर अनेक हैं। जो कपड़े तुम पहनते हो, वे सब आखिर कपास से ही तो निकले हैं। कपास का कुर्ता बन गया, पैंट बन गई, साड़ी बन गई या चादर बन गई, मगर कपास तो एक है, उसके रूपान्तर भले ही अनेक हैं।

इसी तरह ईश्वर अनेक नहीं है। राम और शिव, दोनों एक ही हैं। राम का ध्यान करना और 'ॐ नमः शिवाय' मंत्र जपना, इसमें परस्पर कोई विरोधाभास नहीं है। कथा प्रसंग में भले ही विरोधाभास हो सकता है, शिवजी रहते हैं कैलाश में, तो रामजी रहते हैं अयोध्या या साकेत धाम में। मगर जहाँ सत्य वस्तु का चिन्तन है, वहाँ इस प्रकार का भ्रम नहीं होना चाहिए। हमने श्रीराम को इसलिए माना कि हम जिस कुल में पैदा हुए, वह रामजी का कुल था। हम इक्ष्वाकु कुल में पैदा हुए थे, इसलिए हमारे घर में रामजी की पूजा होती थी। वैसे शिवजी की भी पूजा होती थी और कुमाऊँ के लोग तो देवी की पूजा भी करते हैं। अल्मोड़ा, गढ़वाल, नैनीताल, सब जगह सौ प्रतिशत देवी के उपासक होते हैं। पूरा उत्तराखण्ड देवी की पूजा करता है, कहते हैं वहाँ देवी का अवतार हुआ है।

परन्तु हम क्षत्रिय कुल, इक्ष्वाकु कुल में पैदा हुए, इसलिए बचपन से ही शारंगधर श्रीराम अच्छे लगे, जम गए। वे धनुष-बाण रखने वाले थे, वीरता और शौर्य के प्रतीक थे, मर्यादा और सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति थे, सबके लिए शील और सदाचार के उदाहरण थे। किन्तु हम आ गए शिवजी के सम्प्रदाय में। शिवजी भी अच्छे लग गए और बाद में हमको पता चला कि अरे, ये दोनों तो दोस्त हैं, एक-दूसरे के प्रशंसक हैं। शिवजी रामजी की स्तुति करते हैं और रामजी शिवजी से प्रार्थना करते हैं। तब तो झंझट ही खत्म! तुम भी हमारे, वे भी हमारे!

इस साल सीताजी का जो विवाह हो रहा है, उसके लिए हमने कहा कि पीछे मण्डप में शिव और पार्वती का चित्र बनाओ। ‘अरे! वैष्णव विवाह में शैव कैसे आ गए’ लोग तो यही सोचते हैं न। लेकिन सीता-राम विवाह में शिवजी का आना बहुत जरूरी है। और शिवजी ने रामजी से कहा भी था कि जब तुम्हारा विवाह होगा, हम जरूर आयेंगे। यह बात पुराणों में लिखी है कि वे रामजी के विवाह में आये थे।

मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि इष्ट देव और मंत्र के झमेले में ज्यादा मत पड़ो। भगवान का जो भी रूप रुचिकर लगे उसे अपना लो। जो भी मिठाई तुम्हें अच्छी लगे खा लो। आखिर दूध ही तो है दोनों में, कोई फर्क नहीं पड़ता। यदि रामजी का मंत्र जपते हो और रामजी की ही पूजा करते हो तो भी ठीक है, लेकिन यह कोई जरूरी नहीं कि रूप की ही उपासना की जाए। केवल नाम की उपासना भी हो सकती है। रामचरितमानस में तो इस बात पर जोर देकर कहा गया है कि केवल राम-नाम से काम चल जाएगा, भले ही पूजा रामजी की करो या शिवजी की।

– 24 अक्टूबर, 1997





अध्याय 14

भारतीय सभ्यता के पाँच आधार हैं, सिन्धु घाटी की सभ्यता, गंगा घाटी की सभ्यता, नर्मदा घाटी की सभ्यता, कावेरी डेल्टा की सभ्यता और ब्रह्मपुत्र घाटी की सभ्यता। यह जो आज तुम हिन्दुस्तान में देखते हो, कत्थक से भरतनाट्यम् तक, काश्मीर से कन्याकुमारी तक की संस्कृति में इन पाँच का संयोग है। पहली तो है सिन्धु घाटी की सभ्यता, जिसने व्यापार दिया, राजनीति दी, अर्थात् क्रियाशील संस्कृति दी। वही सिन्धु है, जिससे हिन्दू शब्द आया है। दूसरी गंगा घाटी की सभ्यता है, जिसने वेद दिये, उपनिषद् दिये, आध्यात्मिक साहित्य दिये। सब ऋषि-मुनि वहीं पैदा हुए, और कहीं पैदा नहीं हुए। आज भी किसी को संन्यास लेना होगा तो रामेश्वरम् नहीं जायेगा, हरिद्वार ही जायेगा। मद्रास के आदमी को भी यदि संन्यास लेना होगा तो उत्तराखण्ड में ही जायेगा। तीर्थ करने जाओगे तो उत्तराखण्ड ही जाओगे न? यह गंगा घाटी की सभ्यता है। नर्मदा घाटी की सभ्यता ने टोना-टोटका, जादू-तंत्र इत्यादि को जन्म दिया। कावेरी डेल्टा की सभ्यता ने नृत्य-संगीत, कला-शिल्प, जिसे संस्कृति कहते हो, उसे जन्म दिया है। हमारे यहाँ इन पाँच संस्कृतियों का योग है।

सबसे प्रमुख सभ्यता है सिन्धु घाटी की, जिसने राजनीति, व्यवसाय, लड़ाई, युद्ध विद्या दी। इसलिये हम हिन्दू माने जाते हैं। हिन्दू हमारी जाति है। मुसलमान भी यहाँ जाति से हिन्दू हैं, भले ही धर्म से इस्लामी हैं। ईसाई भी यहाँ जाति से हिन्दू हैं। आखिर पाकिस्तान के लोगों की जाति क्या है? कुछ अलग है क्या? क्या वे मंगोल हैं? क्या वे हूण हैं? नहीं, वे हिन्दू जाति के हैं, केवल उनका धर्म दूसरा है।

जाति किसे कहते हैं और धर्म किसे, इसकी व्याख्या अच्छे से समझ लो। जाति उसको कहते हैं जहाँ से जीव पैदा होता है। आजकल अंग्रेजी भाषा में उसे कहते हैं जीन्स या डी.एन.ए। जीन एक प्रकार का जैविक तत्त्व है, वही जाति का आधार होता है। जीन्स के अलग-अलग वर्गीकरण हैं, वैज्ञानिकों ने आजकल अरबों जीन्स का पता लगा लिया है। मनुष्य के शरीर में एक प्रकार का जैविक तत्त्व होता है, वही उसकी ज्ञाति है। ज्ञाति माने पहचान, इसी से जाति शब्द बन गया है। मनुष्य की पहचान क्या है? बड़ी दाढ़ी-मूँछ है, लम्बा है, चौड़ा है, यह मनुष्य की पहचान हुई न? उसी तरह से मनुष्य की जीन्स के आधार पर अलग-अलग पहचान होती है। इस बात को वैज्ञानिकों ने बहुत अच्छी तरह से समझाया है। इन सब अलग-अलग जातियों को अंग्रेजी में रेस कहते हैं, हिन्दी में इसे नस्ल भी कहते हैं।

विश्व में सबसे ज्यादा साधु-सन्त हमारे देश में हैं, फिर भी हमारा देश पिछड़ा हुआ क्यों है?

पहली बात तो यह है कि हमारा देश पिछड़ा हुआ नहीं है। किसी भी देश के पिछड़ेपन या आधुनिकता का मापदण्ड क्या है? मान लो मैं एक झोपड़ी में रहता हूँ पर मेरा स्वास्थ्य बहुत अच्छा है, मेरा रहन-सहन बहुत अच्छा है, लोगों के साथ मेरा व्यवहार भी बहुत अच्छा है, मैं चोरी नहीं करता, जुआ नहीं खेलता और अन्य कोई बुरा काम भी नहीं करता। तो क्या मुझे पिछड़ा हुआ माना जाएगा? मेरे पास शौचालय नहीं है, मेरे पास अपनी रसोई भी नहीं है, दो पत्थर रखकर अपना खाना बना लेता हूँ। क्या लोग बोलेंगे कि यह तो बहुत गरीब और पिछड़ा हुआ दिखता है। एक अन्य आदमी है, जिसके पास अच्छा बंगला है, गाड़ी है, सेटेलाइट टेलीफोन है, फैक्स है, मगर वह हमेशा बीमार रहता है, उसे हृदय की बीमारी है, मधुमेह है। वह रोज बीवी के साथ लड़ता है, उसका बेटा घर से भाग गया है। वह जुआ खेलता है, चोरी करता है, किसी तरह भी पैसा कमा लेता है, कचहरी में जाकर झूठ भी बोल देता है, उसके पास दो-चार बन्दूकें भी रहती हैं। क्या वह बहुत आधुनिक और सुसभ्य है?

मानव समाज में सभ्य और असभ्य, आधुनिक और पिछड़ा, इसकी व्याख्या मनुष्य की भावना के अनुसार होती है। जो अच्छा कपड़ा पहनते हैं, टाई वगैरह लगाते हैं, वे सभ्य हैं, और जो फटा कपड़ा पहनते हैं, वे गँवार

हैं–यह व्याख्या तुम्हारी व्यक्तिगत व्याख्या है। आज भी हिन्दुस्तान में यूरोप की अपेक्षा कम अपराध होते हैं। जितनी हत्याएँ लॉस एंजिलीस में एक दिन में होती हैं, उतनी सारे हिन्दुस्तान में सालभर में भी नहीं होतीं। वहाँ तो लोग जगह-जगह लड़ाइयाँ कराते हैं, टैंक और बम की एक देश से दूसरे देश में तस्करी करते हैं, अपने अस्त्र-शस्त्र बेचते हैं। क्या तुम उनको आधुनिक और सभ्य कहोगे? दुनिया में जहाँ-जहाँ भी लड़ाइयाँ हो रही हैं, भयंकर गृहयुद्ध हो रहे हैं, वहाँ जिन हथियारों का इस्तेमाल हो रहा है, वे हथियार कहाँ से आ रहे हैं? हमारे यहाँ से तो नहीं जा रहे हैं। ये हथियार उनके यहाँ से आते हैं, और उन हथियारों को बेचने के लिये उनको लड़ाइयाँ करवानी पड़ती हैं।

ज्यादा पैसा बनाने के लिये इन लोगों ने एक तरीका निकाला है और वह है खोटी अर्थव्यवस्था, जिसे अंग्रेजी में फॉल्स इकॉनमी कहते हैं। फॉल्स इकॉनमी, शेयर बाजार, यह सब जुआ है। उसी के बल पर ये लोग अपना डॉलर और पौंड महंगा बनाते जाते हैं। फिर कहते हैं कि तुम्हारे देश में पैसा नहीं है, हमारे देश में है।

हम लोग पिछड़े हुए नहीं हैं। बल्कि वे लोग आध्यात्मिक चिन्तन में पिछड़े हुए हैं। सबसे पहले हिन्दुस्तान के लोगों को पता चला कि परमात्मा क्या है। जन्म के बाद आदमी फिर पैदा होता है या नहीं? भाई-बहन की शादी हो सकती है या नहीं? सबसे पहले हम लोगों को ही पता चला कि एक ही परिवार में शादी हो सकती है या नहीं। और अगर नहीं तो क्यों नहीं हो सकती। यह तो बहुत पुराना देश है। जो लोग विज्ञान पर शोध कर रहे हैं, उन्हें वहाँ जाने से खुशी तो जरूर होगी, मगर एक बात याद रख लो, भस्मासुर ने शिवजी से जो वरदान पाया था, उसी वरदान से उसने अपने आप को जलाया। भस्मासुर को किसी ने नहीं मारा, बल्कि उसी वरदान से उसने स्वयं को भस्म किया। ये रासायनिक अस्त्र-शस्त्र, यह खोटी अर्थव्यवस्था, जिसके द्वारा आज ये सारे संसार को दबाए बैठे हैं, यही इनकी मृत्यु का कारण बनने वाली है, यह बात तुम अपनी डायरी में लिख लेना।

सिर्फ आज नहीं, हर युग में ऐसा हुआ है। मिस्र, यूनान और रोम का विशाल साम्राज्य ऐसे ही गया है। और तुम जो तथाकथित पिछड़े देश के हो, जीवित रह जाओगे। दाल-रोटी तो खाओगे, मजा तो उड़ाओगे, ज्यादा नहीं तो थोड़ा बहुत ही सही। अरे, हवाई जहाज न सही, पर बैलगाड़ी में तो चलोगे ही न? एक दिन यह पाश्चात्य सभ्यता अपने ही बनाए हुए शस्त्र से

मरेगी, अपनी ही बनाई हुई खोटी अर्थव्यवस्था का शिकार बनेगी। यह जो अर्थव्यवस्था चल रही है न, जिसमें शेयर बाजार वगैरह शामिल हैं, यह सब खोटी अर्थव्यवस्था है, झूठी है। वे लोग दुनिया को उल्लू बना रहे हैं। यहाँ के जानकार लोग कुछ बोलते नहीं हैं, क्योंकि वे भी जुआरी हैं, और एक जुआरी दूसरे जुआरी को कैसे गाली देगा। लेकिन हम जुआरी नहीं हैं, इसलिए हम बोल देते हैं। हम तो साफ-साफ कहते हैं, क्योंकि हमें किसी का डर नहीं है।

अब दूसरी बात। जिस देश में, जिस समाज में परिवार नाम की कोई चीज नहीं है, वह समाज कैसे बनेगा जी? समाजशास्त्र यही कहता है कि व्यक्ति परिवार की इकाई है और परिवार समाज की इकाई। तुम चार-पाँच लोग मिलकर परिवार कहलाते हो, और फिर दो-तीन-चार परिवार मिलकर समाज की इकाई बनते हैं। तुम बिखरी हुई इकाइयों से परिवार की कल्पना कैसे कर सकते हो? और जहाँ परिवार ही नहीं है, वहाँ समाज कैसे बन सकता है? तुम परिवार के बिना समाज की कल्पना कैसे कर सकते हो?

असली बात यही है। अगर कल हमारे घर में सब मर जाएँ तो हम आधुनिक हैं या पिछड़े, यह सवाल ही नहीं उठेगा। पाश्चात्य देशों में जिस विज्ञान ने उन्नति की है, उसे कहते हैं प्रायौगिक विज्ञान और यह विज्ञान इस देश को मालूम था। प्राचीन पुस्तकों में इसका विषद वर्णन है। अणु जिसे अंग्रेजी में एटम कहते हैं, उसका हमें ज्ञान था। यह कणाद मुनि द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त है, जिसे वैशेषिक दर्शन भी कहते हैं। वैशेषिक दर्शन अणुओं अर्थात् सूक्ष्म कणों का विज्ञान है, और जिसने 'कण' का यह सिद्धान्त दिया, उस ऋषि का नाम पड़ा कणाद। आज यूरोप ने कण सिद्धान्त दिया है, जिसे तुम स्कूल-कॉलेज में पढ़ते हो, मगर वैशेषिक दर्शन में कण का सिद्धान्त भारत में आज से कई हजार वर्ष पहले ही लिख दिया गया था। उन्होंने कण पदार्थ को अणु, परमाणु और त्रिशरेणु में विभक्त किया था।

यह विज्ञान हमारे ऋषि-मुनियों को मालूम था, लेकिन वे यह भी जानते थे कि जिस दिन यह विद्या मनुष्य के प्रायौगिक विज्ञान में आ जाएगी उस दिन संसार चौपट हो जाएगा। लोग बन्दूकें निकालने लगेंगे, गोली मारने लगेंगे, रासायनिक युद्ध होने लगेंगे। और वही सब आज हो रहा है। इसलिए इस विद्या को यहाँ दबाया गया है। विमान विद्या, रॉकेट विद्या, यह सब भारतीय लोगों को मालूम थी। हमने उनपर ग्रंथ पढ़े हैं। और केवल हिन्दुस्तान में ही नहीं, हम तो जर्मनी के रॉकेट फाउन्डेशन में जाकर भी किताब पढ़े हैं। हम बहुत

पढ़े-लिखे आदमी हैं, पर यह बात हम अभिमानवश नहीं कह रहे। ऐसा कोई भी विज्ञान नहीं है जिस पर हम तर्क-वितर्क नहीं कर सकते। हम अर्थव्यवस्था पर बहस कर सकते हैं, वित्तशास्त्र पर बहस कर सकते हैं। हमने बहुत पढ़ा है, हमारा सारा जीवन अध्ययन में बीता है। जगह-जगह के पुस्तकालयों में जाकर पढ़ा है और जो पैसा लोगों से मिलता था, उसे हमने केवल पढ़ने में खर्च किया है, अपने ऊपर खर्च नहीं किया। रॉकेट फाउन्डेशन में जाकर हमने भरद्वाज संहिता पढ़ी थी। भरद्वाज ऋषि विमान विद्या के ज्ञाता थे, किसी बड़ी चीज को कैसे ऊपर उठाया जा सकता है। लेकिन हमारे ऋषि-मुनियों ने इस विद्या को गुप्त रखा। इसे प्रायौगिक नहीं होने दिया, क्योंकि विज्ञान के पीछे जो पिशाच बैठा हुआ है, वह एक दिन जरूर गड़बड़ करेगा। तमोगुणी मनुष्य बन्दूक से अच्छा काम नहीं करेंगे, वे केवल गोली चलायेंगे। इसलिए ऋषि-मुनियों ने कहा कि जब तक मनुष्य पूरी तरह से सतोगुणी न हो जाएँ, उनको यह विद्या नहीं देनी चाहिए।

विज्ञान दो प्रकार का होता है, आध्यात्मिक विज्ञान और पदार्थ विज्ञान। आध्यात्मिक विज्ञान में हम इन्द्रिय, मन, आत्मा, महत्, अहंकार, अव्यक्त, इन सब विषयों को समझते हैं। इसी विज्ञान में हम लोगों ने प्रयोग और अनुसंधान किया जबकि पाश्चात्य लोग पदार्थ विज्ञान में गये, उन्होंने पदार्थ को विभक्त किया। सवाल उठता है कि पदार्थ कहते किसको हैं? पदार्थ की व्याख्या क्या है? देश और काल जब अलग रहते हैं, तब इन्हें पदार्थ कहते हैं। मेज, कुर्सी आदि सब पदार्थ हैं। ये देश और काल के प्रतीक हैं। जैसे बिजली में पॉज़िटिव और नेगेटिव होते हैं, वैसे देश और काल दो विपरीत ध्रुव हैं। एक वृत्त की कल्पना करो, जिसके एक छोर पर देश है और दूसरे पर काल, बिल्कुल विपरीत। जब देश और काल एक-दूसरे की तरफ आते हैं, तब दोनों एक बिन्दु पर मिलते हैं। जब दोनों एक बिन्दु पर मिलते हैं, तब बहुत बड़ा विस्फोट होता है, जिसे आत्म विस्फोट कहते हैं। उसी को ज्ञान कहते हैं, उसी को साक्षात्कार कहते हैं। चाहो तो और कोई नाम भी दे सकते हो। प्रकृति और पुरुष, धनात्मक और ऋणात्मक, स्त्री और पुरुष, ये देश और काल के प्रतीक हैं। जब तक अलग हैं, सृष्टि नहीं होती। जब दोनों मिलते हैं, तब सृष्टि होती है।

यह बात सच है कि पश्चिम के लोगों ने बहुत अच्छी-अच्छी मशीनें बनाई हैं। यहाँ से एक घण्टे में भागलपुर पहुँच सकते हो, दो घण्टे में पटना पहुँच

सकते हो, चार घण्टे में दिल्ली पहुँच सकते हो। यहाँ-वहाँ, कहीं भी पहुँच सकते हो। यह सब हम मानते हैं और उसका फायदा भी हम लोग उठा रहे हैं। पर केवल यही मनुष्य के विकास का लक्षण नहीं है। मनुष्य का असली विकास उसके जीवन का विकास है। एक तरफ अच्छा पर गरीब आदमी है और दूसरी तरफ बदमाश और अमीर आदमी, तुम किसे सभ्य कहोगे? यहाँ के साधु-महात्माओं और वहाँ के साधु-महात्माओं में बहुत बड़ा अन्तर है। हम लोगों के यहाँ साधु-महात्मा राजनीति से दूर रहते हैं। दो-चार घुस गये, बात दूसरी है, पर राजा हमारा फायदा नहीं उठा सकता, राजनैतिक पार्टियाँ हमारा फायदा नहीं उठा सकतीं। न हमारे पैसे का फायदा उठा सकती हैं, न हमारे भक्तों-अनुयायियों का। लेकिन उन लोगों के यहाँ साधु-महात्माओं ने राजाओं की मदद की। पहले उनके पादरी जाते थे, और फिर उनकी पलटन जाती थी। सब को ईसाई बनाते जाते थे। पर अब ईसाई धर्म नहीं रहा। अगर कोई कहे कि ईसाई धर्म नाम की कोई चीज है, कोई आन्दोलन है, तो ऐसा नहीं है। वह आज केवल एक संस्था के रूप में रह गया है। क्यों? क्योंकि जब धर्म का विवाह राजनीति से होता है, तब धर्म को नुकसान होता है, अंत में उसका नाश भी हो जाता है। बौद्ध धर्म ने यहाँ राजनीति से हाथ मिलाया, इसलिए बौद्ध धर्म का विनाश हुआ। आज के जमाने में इस्लाम ने राजनीति से हाथ मिलाया है, इसलिए उसका भविष्य उज्ज्वल नहीं दिखता। और जिस दिन तुम लोगों का धर्म राजनीति को फायदा पहुँचाएगा, उस दिन उसका भी विनाश हो जायेगा।

क्या सुकरात या प्लेटो जैसे पाश्चात्य जगत् के महान् लोग साधु-महात्मा नहीं थे?

नहीं, सुकरात और प्लेटो साधु नहीं थे। वे दार्शनिक या विचारक की श्रेणी में आते हैं। किसी चीज को बुद्धि से जानना या समझना और किसी चीज को अनुभव से जानना, ये दोनों अलग-अलग चीजें हैं। मान लो तुमने कभी रसगुल्ला नहीं खाया, मगर उसके बारे में खूब पढ़ा है, खूब सुना है। जबकि हमने रसगुल्ला खाया है, भले ही उसके बारे में पढ़ा नहीं है। रसगुल्ले के बारे में कौन बेहतर जानता है? अनुभव और ज्ञान, ये दोनों अलग वस्तुएँ होती हैं। अनुभव का मतलब होता है अपरोक्षानुभूति। यहाँ जितने भी साधु-महात्मा हुए हैं, उन्हें ब्रह्मज्ञान की अपरोक्षानुभूति हुई है। सुकरात और प्लेटो विचारक थे,

उनका दिमाग बहुत अच्छा था। उन्होंने सब चीजों को सोच-सोच कर बताया। मगर जिस वस्तु के बारे में वे बोल रहे थे, उन्हें उस वस्तु की अनुभूति नहीं हुई थी। सुकरात ने कहा स्वयं को जानो, उसने 'स्व' की व्याख्या की, मगर उसने स्व को देखा नहीं था।

उसने तो लोक-कल्याण के लिए हँसते-हँसते जहर पीया था न?

वह उसने लोक-कल्याण के लिए नहीं, अहंमन्यता के कारण किया था। कितने ही बड़े-बड़े वैज्ञानिकों ने चर्च के सामने अपना गला कटवा दिया। उन्होंने लोक-कल्याण के लिये नहीं, सिर्फ अपने अहं के लिए जीवन-त्याग किया। हम लोग उसे नहीं मानते।

तुलसीदास जी ने जब रामचरितमानस की रचना की, तो उन्होंने भी लिखा कि स्वान्तःसुखाय रच रहा हूँ। क्या यह भी अहंमन्यता का उदाहरण नहीं?

नहीं, तुलसीदास जी की तुलना नहीं कर सकते, क्योंकि उन्होंने रामचरितमानस लिखी ही नहीं। उनसे रामचरितमानस लिखवाई गई है। रामचरितमानस काव्य नहीं, श्रुति है। वेद काव्य नहीं है, साहित्य नहीं है, श्रुति है। अगर हमने तुमसे कहा कि लिखो और तुमने लिख दिया, तो तुमने लेख लिखा जरूर है, मगर लिखवाने वाला मैं हूँ। उसी तरह रामचरितमानस तुलसीदास जी से लिखवाई गई है। रामचरितमानस जैसा ग्रन्थ हमने तो भाई दूसरा नहीं देखा। हमने कोई भी पुस्तक नहीं छोड़ी है। बाइबिल को कई बार पढ़ लिया, कुरान भी पढ़ ली, प्लेटो भी पढ़ लिया, सब तरह का दार्शनिक और आध्यात्मिक साहित्य पढ़ लिया। मगर रामचरितमानस पढ़कर ऐसा आनंद आता है, जैसा किसी बच्चे को अपनी माँ की गोद में जाने पर होता है। पति-पत्नी को एक-दूसरे के आलिंगन में जो आनन्द आता है या रेगिस्तान की गर्मी में भटकते हुए किसी थके-मांदे व्यक्ति को ठण्ढे वातानुकूलित कमरे में जो आनन्द आता है, वही आनन्द रामचरितमानस पढ़ने से आता है। इसे समझने की जरूरत नहीं है। हम इस विवाद के लिये तैयार नहीं हैं कि तुलसीदास जी ने यह पुस्तक क्यों लिखी।

तुलसीदास जी का अपना एक विलक्षण जीवन था। पैदा होते ही उनकी माँ मर गयी, कुछ समय बाद उनकी परवरिश करने वाली दाई भी मर गयी। उन्हें कोई देखने वाला नहीं था, जैसे सियालदाह स्टेशन में छोकरे लोग भटकते हैं,

वैसे ही वे यहाँ-वहाँ भटकते रहते थे। फिर किसी साधु ने उन्हें अपनी संरक्षण में रख लिया। जो माँ के गर्भ से निकलते ही राम का उच्चारण करे, ऐसा व्यक्ति भगवान की विभूति होता है। तुलसीदास जी तो संस्कृत के बड़े विद्वान् थे, वे संस्कृत में लिखते थे। शाम को कविता लिखते और सवेरे गायब हो जाती, क्योंकि भगवान चाहते थे कि वे संस्कृत की बजाय अपनी भाषा में लिखें ताकि सब पढ़ सकें। स्वामी विवेकानन्द जी ने बंगाली में क्यों नहीं लिखा? कौन पढ़ता? स्वामी शिवानन्द जी ने तमिल में क्यों नहीं लिखा? कौन पढ़ता। समझ गये न? ऐसे ही हमने हिन्दी में नहीं, अंग्रेजी में लिखा, तो आज सब पढ़ रहे हैं। युग की जो भाषा होती है, भगवान उसी भाषा में लिखवाते हैं।

महर्षि अरविन्द ग्रीक, लैटिन, बंगाली, संस्कृत, सब जानते थे, लेकिन उनसे किस भाषा में लिखवाया? अंग्रेजी में, ताकि तुम पढ़े-लिखे लोग पढ़ सको, सवाल-जवाब कर सको, अपनी विद्या का प्रचार-प्रसार कर सको। अगर बंगाली में लिखते तो क्या होता? इसी तरह भगवान ने तुलसीदास जी से कहा कि संस्कृत में लिखकर क्या करेगा? तब उन्होंने हिन्दी में लिखवाया, और वह भी ऐसी हिन्दी जो गाँवों में चलती थी। हिन्दी भाषा से अधिक प्रबल है हिन्दी की बोलियाँ, जिन्हें अंग्रेजी में डायलेक्ट कहते हैं। ब्रजभाषा, मैथिली, अवधी, भोजपुरी, अंगिका, बुंदेलखण्डी आदि हिन्दी की बोलियाँ हैं, जो हिन्दी भाषा से अधिक व्यापक हैं। इसलिये रामचरितमानस इतना व्यापक और लोकप्रिय बना है।

सुकरात, प्लेटो, वगैरह के बारे में मेरी अच्छी राय है। वे बुद्धिमान् थे, विद्वान् थे, मगर उन्हें सन्तों की कोटि में नहीं रख सकते। सन्त-महात्मा की कोटि में वे आते हैं जिन्हें अतीत, अज्ञात और अव्यक्त तत्त्व का अनुभव होता है। जो आँखों से परे है, जो साधारण विचारों और अनुभवों से परे है, जिसे तुम देख नहीं सकते, जिसे तुम सुन नहीं सकते, जिसे तुम छू नहीं सकते, उसका एक अनुभव होता है, जो एक विशेष अवस्था में होता है, और वह बहुत देर तक नहीं होता। बिजली की तरह होता है। इसे ब्रह्म अनुभव, ईश्वर का दर्शन या निर्विकल्प समाधि भी कहते हैं। यह एक-दो घण्टे के लिए नहीं होता, पलक झपकते ही आता और जाता है। यह वही अनुभव होता है जो काकभुशुण्डी को रामजी के उदर में हुआ, जो यशोदा को श्रीकृष्ण के मुख में हुआ। युद्धक्षेत्र में रथ पर बैठे हुए अर्जुन को कृष्ण भगवान ने कल्पों और युगों का अनुभव कराया, पर अर्जुन को लगा कि चुटकी मारी और हो गया।

जिसे ऐसा अनुभव होता है, उसे कहते हैं सन्त। बाकी हम सब लोग ज्ञानी हैं, बुद्धिजीवी हैं, पर सन्त नहीं हैं। इसी निमेष मात्र अनुभव के लिये हमारे ऋषि-मुनि लाखों साल से प्रयत्न कर रहे हैं। कई मिट गये, किसी को हुआ, बहुतों को नहीं हुआ।

रहा सवाल पिछड़ेपन और गरीबी का, तो हाँ हिन्दुस्तान में गरीब हैं, मगर तुम यह नहीं कह सकते कि अमेरिका या इंग्लैंड में गरीब नहीं हैं। वहाँ भी गरीब हैं। अगर उनका हफ्ता बन्द कर दिया जाय तो वहाँ भी यही हालत होगी जो यहाँ है। यहाँ तो फिर भी खेत-खलिहान से रूखा-सूखा मिल जाता है, पर इंग्लैंड में तो खेत भी नहीं हैं। और ऐसी बात नहीं है कि भूकम्प और तूफान जैसी प्राकृतिक विपदाएँ सिर्फ हिन्दुस्तान में ही आती हैं। ये सारी दुनिया में आती हैं। यूरोप, अमेरिका और जापान में तूफान आते हैं, भूकम्प आते हैं, सड़कें और घर टूट जाते हैं। ऐसा नहीं कि केवल यहाँ होता है।

हम लोग भौतिक दृष्टि से भी पीछे नहीं हैं। भौतिक दृष्टि में केवल आटा-दाल नहीं आता। हमारे यहाँ शादी की व्यवस्था विज्ञान सम्मत है, जो आधुनिक अनुवांशिक विज्ञान से मेल खाती है। हम लोगों के यहाँ शाकाहार पद्धति है। कुछ लोग माँस खा लेते हैं मगर भारतीय सभ्यता को मूलतः शाकाहारी ही मानेंगे। यह विश्वविख्यात तथ्य है कि आरोग्य के लिये शाकाहार सर्वश्रेष्ठ पद्धति है। सब कहते हैं कि अगर तुमको बीमार नहीं पड़ना है, तो माँस मत खाओ। माँस खाने वाले लोग भी यही कहते हैं। बड़े-बड़े पहलवान और मुक्केबाज भी शाकाहारी हैं। मोहम्मद अली शाकाहारी हैं। उन्होंने अपनी जीवनी में लिखा है, वे अण्डा तक नहीं खाते। जहाँ तक सम्बन्धों की बात है, माता-पिता, भाई-बहन, इत्यादि के सम्बन्धों की जो वैज्ञानिकता यहाँ है, वह वहाँ नहीं है। जितनी शुद्ध हवा हिन्दुस्तान पीता है, वे लोग वहाँ उतनी ही अशुद्ध हवा पीते हैं। भारत के लोगों का सबसे बड़ा सौभाग्य यह है कि आम भारतीय को शुद्ध हवा मिलती है। मैं दिल्ली, कलकत्ता या धनबाद वालों की बात नहीं कर रहा हूँ, मैं तो गाँव वालों की बात कर रहा हूँ, सत्तर प्रतिशत हिन्दुस्तान की बात कह रहा हूँ। उन्हें शुद्ध हवा मिलती है न? यूरोप में कहीं भी चले जाओ, तुम्हें शुद्ध हवा नहीं मिलने वाली।

एक ही बात है कि वहाँ भौतिक सुख-सुविधा अधिक है। परम्पराएँ और क्रिया-कलाप तो हिन्दुस्तान में ही ऊँचे हैं, उन्होंने केवल एक चीज दी है, वह है सुख-सुविधा। बायें मुड़ो तो स्नानघर, दायें मुड़ो तो रसोईघर, थोड़ा-सा

नीचे उतरो तो गाड़ी, टेलीफोन उठाओ तो हजारों मील दूर बात कर लो। इस तरह की और भी कई सुविधाएँ दी हैं, पर उसका परिणाम? पच्चीस-तीस साल पहले तुम्हें शौच के लिये आधा मील दूर जाना ही पड़ता था, स्नान करने के लिये आधा मील जाना ही पड़ता था, अपना माल अपने कंधे पर उठा कर लाना ही पड़ता था। उसका परिणाम क्या होता था? तुम्हारी खून बहाने वाली नलियाँ इतनी संकीर्ण नहीं होती थीं, उसमें वसा नहीं जमने पाता था। अब यदि सच में तुलना करो तो स्वास्थ्य बड़ी चीज है या सुविधा?

एक मेमसाब दिनभर में क्या करती है? मन नहीं लगता तो मनोरंजन के लिए उपन्यास पढ़ती है, बारह बजे से पाँच बजे तक टी.वी. पर कार्यक्रम देखती है। कोई काम ही नहीं है। गैस है, जल्दी से रोटी बन गई, बस। खाली मन, भूत का बसेरा। इनके मन में हमेशा तमोगुणी और रजोगुणी विचार आते रहते हैं। अशुभ और अमंगल के विचार आते रहते हैं। सुन्दर पति या पत्नी होते हुए भी घर में सुख नहीं मिलता। गलत बोल रहा हूँ तो टोक दीजिये मुझको। अरे, इतनी अच्छी पत्नी मिली है, फिर भी रोज नोंक-झोंक! अच्छा बेटा मिला है, अच्छी बेटी मिली है, फिर भी संतोष नहीं है, क्योंकि तुम्हारा मन खाली है और खाली मन में केवल भूत ही रहता है, बुरे विचार रहते हैं, कुछ और नहीं रहता। खाली मन में साधु-महात्मा नहीं रहते। अगर मेमसाब को सवेरे से शाम तक गाय का गोबर उठाना पड़ता, चूल्हा-चौका करना पड़ता, बर्तन-भाण्डे मांजने पड़ते, कपड़े धोने पड़ते, थकावट होती, तो कुछ बात बनती। आजकल तो ये लोग थकते ही नहीं हैं। जब देखो तब बढ़िया कलफ लगी हुई साफ-सुथरी साड़ी पहने रहते हैं, क्या-क्या साबुन लगाते हैं। मेरे पास कितने प्रकार के साबुन-शैम्पू आते हैं, मैं कहता हूँ, नहीं, मेरे लिये तो नीम का साबुन ही ठीक है। हम बेवकूफ थोड़े ही हैं कि एक तो इन साबुनों पर पैसा खर्च करें, फिर इनसे बीमारी भी लाएँ। मूर्ख हैं वे लोग जो इनपर पैसा भी खर्च करते हैं, और फिर एलर्जी भी पाते हैं। हमारे बगीचे में नीम के पेड़ हैं। उसके पत्ते ले लेते हैं, उबाल लेते हैं और हफ्ते में एक बार नहा लेते हैं।

इस आधुनिक भौतिकवाद के अंधे प्रशंसक मत बनो, आलोचक बनो। अगर तुम वर्त्तमान सभ्यता के आलोचक नहीं बनोगे, तो आगे की सभ्यता को नहीं सुधार सकोगे। आलोचना से ही सुधार का जन्म होता है। किसी भी संस्कृति, सभ्यता और राजनैतिक व्यवस्था की आलोचना से ही उसकी उन्नति निश्चित है, पर यह आलोचना स्वस्थ होनी चाहिए।

लेकिन यहाँ की व्यवस्था में ऐसा नुक्स है कि रेलगाड़ी या बस के लिये इंतजार करने में बहुत समय नष्ट होता है, जिससे कई काम नहीं हो पाते। तो ऐसी हालत में क्या किया जाय?

तुम जिस व्यवस्था की कल्पना कर रहे हो, वह कल्पना यूरोप में आज 300 सालों में आई है। और हम उसे 25-50 साल में लाना चाहते हैं। वह आयेगी, हम एक शुभ और सुधरे हुए भारत की कल्पना करते हैं, और उसके प्रति हम आशावादी भी हैं। हम यह भी जानते हैं कि इमारत बनती है तो बहुत धूल उड़ती है। जब यूरोप में औद्योगिक क्रांति हुई थी तब वहाँ भी यही सब कुछ हो रहा था। अव्यवस्था, मार-पीट, हत्या, युद्ध, बलात्कार, चोरी-डकैती, आदि सब होता था। इस पर कहानियाँ लिखी गई हैं, फिल्में बनी हैं। हम लोग एक सभ्यता से दूसरी सभ्यता में संक्रमण के एक दौर से गुजर रहे हैं, इसलिए यह सब तो होगा ही। और इसमें हर एक को अपनी-अपनी समस्याओं को देखते हुए समाधान निकालना होगा।

औद्योगिक क्रांति के बाद पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने ईश्वर को नकारा, मगर यह देखो कि उन्होंने ईश्वर की किस कल्पना को नकारा? वह वेदों का ईश्वर नहीं था, बल्कि वह बाइबिल का ईश्वर था। वह न्यू टेस्टामेन्ट का ईश्वर था, वह ईश्वर जिसकी व्याख्या और प्रचार ईसा मसीह ने किया था, वह ईश्वर जिस पर चर्च ने एकाधिकार किया था। वह एक ऐसा ईश्वर था, जिसके बारे में वे लोग कहते आये थे कि ईश्वर यही है, यही है, यही है। उन्होंने वेदों के ईश्वर को नहीं नकारा, क्योंकि वेदों का ईश्वर 'यही है' नहीं है, बल्कि 'यह भी है'। यह भी है और वह भी है। जहाँ तक आत्मा की बात है, सृष्टि के परम तत्त्व की बात है, उस पर तो न्यूटन, आइंस्टाइन, एडिंगटन और मैक्स प्लैंक जैसे बड़े-बड़े वैज्ञानिकों ने अपने विचार प्रकट किये हैं। सब लोगों ने निरपेक्ष सत्ता के बारे में, जिसे अंग्रेजी में एबसोल्यूट कहते हैं, अपने-अपने विचार प्रकट किये हैं, और वे विचार वेदों की विचारधारा के समीप हैं। जब अमेरिका में सबसे पहले अणु बम का परीक्षण हुआ था, उस समय ओपनहाइमर नाम का वैज्ञानिक दूर अपने कक्ष में बैठकर विस्फोट का पर्यावेक्षण कर रहा था। जिस समय अणु बम का विस्फोट हुआ, उसके मुँह से गीता का एक श्लोक निकला–

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः॥

अर्थात् यदि आकाश में हजार-हजार सूर्य एक साथ जग जाएँ तो भी शायद उनका प्रकाश परमात्मा के विश्वरूप जैसा न हो। उसने यह श्लोक विस्फोट के समय अपनी डायरी में लिखा है। इतने बड़े परमाणु वैज्ञानिक को गीता का यह श्लोक वहाँ क्यों याद आ गया? उसने बाइबिल से कुछ क्यों नहीं लिखा? क्योंकि गीता या वेदों का जो विज्ञान है, वह अनुभव का विज्ञान है। यह किसी सम्प्रदाय विशेष का विज्ञान नहीं, अनुभव का विज्ञान है। इसलिये हम इसे वैदिक धर्म कहते हैं, वेद से निकला हुआ धर्म। वेद का मतलब ही होता है ज्ञान, जानना।

कहते हैं जर्रे-जर्रे में खुदा है, कण-कण में भगवान है। तो जो लोग सगुण ब्रह्म में विश्वास करते हैं, क्या वे चप्पल-जूता-झाड़ू जैसी चीजों को भी देवी-देवता मान सकते हैं?

हाँ, हमने तो अपने गुरुजी की चप्पल रखी है। झाड़ू भी रख सकते हैं। भगवान निराकार है, यह कह तो दिया बड़े आराम से, मगर उसका अनुभव कैसे करोगे? क्या सोचोगे, क्या देखोगे, किसकी पूजा करोगे? निराकार भगवान को जब यह समस्या पता चली कि ये लोग निराकार-निराकार कहते तो हैं, पर कुछ कर नहीं पा रहे हैं, इन्हें बहुत मुश्किल हो रही है, तब भगवान को बहुत दया आई। उन्होंने भगवती से कहा कि यह तो बड़ी समस्या हो गयी, ये लोग तो केवल भगवान-भगवान बोलते जा रहे हैं, मगर इनकी खोपड़ी में तो कुछ आ ही नहीं रहा है। देवी ने कहा, 'देखो ऐसा करते हैं कि हम-तुम दोनों वहाँ जाकर लोगों के लिए थोड़ा वीडियो-कैसेट बना आते हैं।' वे दोनों उतर गये रूप बदल कर। भगवान बने राम और भगवती बनीं सीता, एक बने कृष्ण और दूसरी बनीं राधा, एक बने शिव और दूसरी बनीं गिरिजा।

केसव के कमला ह्वै बैठी, शिव के भवन भवानी।
माया महा ठगिनी हम जानी।।

दोनों आ गये, नाटक किया, अच्छे से लीला की, ताकि तुम लोगों को उपयुक्त लगे। आखिर जो भी फिल्म बनाओ वह दर्शकों को उपयुक्त लगनी चाहिये न? कृष्ण आये, उन्होंने उस जमाने के मुताबिक भूमिका अदा की। राम ने अपने समय के मुताबिक काम किया। आप लोगों ने देखा कि हाँ, यह व्यक्ति बहुत अच्छा है, अवतारी पुरुष है। उसी भगवान का चिन्तन करते-

करते, रामजी, सीताजी या शिवजी की पूजा करते-करते मन धीरे-धीरे साफ होने लगा, शुद्ध होने लगा, शून्य होने लगा, स्पष्ट होने लगा। जब अंदर का आईना साफ होने लगा, तब निराकार दिखाई देने लगा। आखिर निराकार को देखने के लिये भी आँखें चाहिये। मगर वे आँखें तो तुम्हारे पास हैं ही नहीं, किसी के पास नहीं हैं। तुमने कह दिया कि पानी में कीटाणु हैं, मगर कहाँ हैं, मुझे दिखाई नहीं दिये। पहले सूक्ष्मदर्शी लाना पड़ेगा, उससे देखना होगा। जिस तरह से सूक्ष्मदर्शी द्वारा कीटाणु-जीवाणु दिखाई देते हैं, उसी तरह से निराकार ईश्वर के अनुभव के लिये ज्ञान चक्षु की आवश्यकता है।

गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिअ दृग दोष बिभंजन॥

तुलसीदास जी कहते हैं कि हर एक आदमी को मोतियाबिंद है, दृष्टि दोष है, इसलिए तुमको कुछ दिखाई तो देगा नहीं। और तुमने बोल दिया कि कुछ है ही नहीं। पहले मोतियाबिंद को निकालो। वह कैसे निकलेगा? सबसे पहले है गुरु और गुरु से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण है, गुरुपद रज माने गुरु के पैरों की धूल। उससे आँखों का दोष ठीक हो जाता है, जिससे फिर निराकार प्रभु को भी देखा जा सकता है।

हमारे यहाँ मार्कण्डेय, दत्तात्रेय, सनक, सनन्दन, सनत कुमार और शुकदेव जैसे अनेक ऋषि-मुनियों का वर्णन आता है, जिनके पास यह ज्ञान दृष्टि थी। शुकदेव तो ब्रह्मर्षि थे, व्यासदेव जी के बेटे थे, पाँच साल की उम्र में ही घर छोड़कर चले गये थे, कपड़े तक नहीं पहने थे। ऐसे थे शुकदेव जी, एकदम निराकार ब्रह्म का अनुभव करने वाले। पर उन्होंने लोगों को क्या सिखाया? कृष्ण भक्ति। श्रीमद् भागवत तो शुकदेव ने सुनाया है न? सवाल उठता है कि जब तुम्हें निर्गुण विज्ञान की डिग्री मिल चुकी है, जब तुम निर्गुण विज्ञान के प्रोफेसर हो तब फिर यह सगुण विज्ञान क्यों सिखा रहे हो?

तुम तो पी.एच.डी. कर चुके हो, लेकिन अगर तुम्हें सातवीं कक्षा के विद्यार्थी को पढ़ाना पड़े तो उसके स्तर से सिखाना शुरू करोगे न? सिखाने वाले को अपने ज्ञान के मुताबिक नहीं बल्कि विद्यार्थी की योग्यता के अनुसार सिखाना पड़ता है। हाँ, शुकदेव तो ब्रह्मज्ञानी थे, उन्हें ब्रह्मज्ञान की डिग्री प्राप्त थी, पर उन्होंने लोगों को कृष्ण भक्ति सिखाई। जो आदमी अक्ल का लंगड़ा है, वह कृष्ण भक्ति के अलावा क्या सीख सकता है? तेरी माँ नहीं, तेरा बाप नहीं, तेरी पत्नी नहीं, तेरा बेटा नहीं, तेरा जन्म नहीं, तेरी जात



नहीं, यह सिखायेंगे क्या? जो जिसके योग्य है, उसे वही सिखाया जाता है। सगुण उपासना निर्गुण परमात्मा को पाने का सूत्र है, धागा है, जिसे पकड़कर धीर-धीरे आगे बढ़ना पड़ता है।

तुलसीदास जी ने तो स्पष्ट रूप से कहा है कि निराकार की जयमाला लेकर क्यों बैठे हो, केवल साकार में रहो। उन्होंने तो यह भी कह दिया कि निराकार बहुत सहज है, सुलभ है, क्योंकि उसमें पूछना ही क्या? दुर्लभ तो साकार है। जैसे ही तुम साकार की बात कहते हो, लोग सौ-सौ बातें पूछते हैं, जबकि निराकार के बारे में कहने से सब चुप हो जाते हैं। निराकार तो एकदम सहज है। दुष्कर तो साकार है, क्योंकि साकार को समझना मुश्किल है, इस पर विश्वास करना मुश्किल है। शिवजी की धर्मपत्नी को रामजी के अवतार होने पर सन्देह उत्पन्न हो गया था। बताओ, जब सती जी को सन्देह हो गया, तब तुम और हम किस खेत की मूली हैं! शिवजी के समझाने पर भी वह रामजी की परीक्षा के लिए गईं। शंका सबको होती है, इसलिये साकार महाकठिन है। जो भी हो, उपासना साकार से ही शुरू हो और साकार की उपासना करते समय एक बात का ख्याल रखना चाहिये, श्रद्धा और विश्वास।

कई लोग देवीजी, शिवजी, रामजी, सबकी पूजा करते हैं। यह ठीक है क्या?

क्या फर्क पड़ता है? किसी दिन रसगुल्ला खा लेना, किसी दिन पेड़ा खा लेना, किसी दिन चमचम खा लेना, किसी दिन दही खा लेना, किसी दिन

खीर खा लेना, किसी दिन कुछ न हो तो दूध ही पी लेना। बात तो एक ही है। राम कहो या रहीम कहो, सोप कहो या साबुन कहो, पानी कहो या वॉटर कहो, मतलब तो एक ही चीज से है, उसमें कोई फर्क नहीं है।

हमारा भी यही सिद्धान्त है। हम वैदिक धर्म को मानने वाले हैं। हमारे इष्ट देव भी हैं, और इष्ट मंत्र भी। हम इस बात को मानते हैं कि ईश्वर के जितने भी रूप हैं, वे सब एक ही तत्त्व की अलग-अलग व्यक्तिगत अभिव्यक्तियाँ हैं। ईश्वर सब रूपों में हमें अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। समय-समय पर भगवान भक्तों के लिये जन्म लेते हैं, ताकि भक्त लोग उनकी लीला का श्रवण करें, उन्हें याद करें। यह सन्देह कभी मन में आना ही नहीं चाहिये कि देवी-देवता अनेक क्यों होते हैं। ऐसा कभी मत सोचना कि बल्ब अनेक हैं तो इसका मतलब बिजली भी अनेक तरह की हैं, राष्ट्र अनेक हैं तो पृथ्वी भी अनेक है। नहीं, आकाश एक है, पृथ्वी एक है, ब्रह्माण्ड एक है और ईश्वर एक है। मगर यह एकता अनेकों की सम्पूर्णता को कहते हैं। यह 'एक' केवल एक नहीं, अनेकों का एक है। अनंतता ही अंतिम एकता है।

पुरुष-प्रकृति, शिव-शक्ति, स्त्री-पुरुष, पॉज़िटिव-नेगेटिव, ये दो तत्त्व हैं या नहीं?

हाँ, जरूर दो हैं। हम भी दो हैं। दायें पुरुष, बायें प्रकृति। तुम भी दो हो, सब दो हैं। वेदों में तो तीन लिखा है। वेद कहते हैं, ईश्वर, जीव और जगत्। एक ईश्वर, दूसरा जगत्, जो उसने बनाया है, और तीसरा जीव, जो दोनों का अनुभव करता है। यह त्रैतवाद है, और यही हमको दिखता है। जगत् का मतलब है सृष्टि, जो दिखती भी है, और नहीं भी दिखती। जितनी दिखती है, उतनी ही ठीक है हम लोगों के लिये। हम जीव हैं जो ईश्वर का भी अनुभव करते हैं और जगत् का भी। बहुत-से जीव जगत् की तरफ जाते हैं, कुछ ईश्वर या आत्मा की तरफ जाते हैं।

यह भावना कि ईश्वर एक है तो देवी का कोई स्थान नहीं, या देवी श्रेष्ठ है तो ईश्वर का कोई स्थान नहीं, सही नहीं है। इस बात को हमेशा याद रखो कि श्रीमद् देवीभागवत में लिखा हुआ है कि आद्या शक्ति मूलशक्ति है। उसी से ब्रह्मा, विष्णु और महेश का जन्म हुआ है। इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञान शक्ति, देवी की ये तीन शक्तियाँ मानी जाती हैं। मगर इसका मतलब

यह नहीं कि देवी एक, दो या तीन हैं। तुम्हारे अन्दर बुद्धि है कि नहीं? यह तुम्हारे अन्दर एक शक्ति है। तुम पहलवान हो तो वह भी तुम्हारी एक शक्ति है। शक्ति ईश्वर से अभिन्न है, और साथ ही यह ईश्वर से भिन्न भी मानी जाती है। इसको द्वैत भी मान सकते हो और अद्वैत भी। यह एक भी है और अनेक भी। कोई फर्क नहीं पड़ता।

लगभग पचास वर्ष पहले वैज्ञानिकों द्वारा अणुओं-परमाणुओं पर प्रयोग किया गया। इस प्रयोग का निष्कर्ष यह निकला कि अणु पूरे सौरमण्डल का एक लघु प्रतीक होता है। जैसे सौरमण्डल में ग्रह-उपग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं, वैसे ही अणु में इलेक्ट्रान न्यूक्लियस के चारों तरफ घूमते हैं। देखा जाए तो बृहत् ब्रह्माण्ड और सूक्ष्म ब्रह्माण्ड में कोई अंतर नहीं है। अंतर सिर्फ इतना है कि सूक्ष्म ब्रह्माण्ड अचिन्त्य है, आँखों से दिखाई नहीं देता, जबकि बृहत् ब्रह्माण्ड को हम देख सकते हैं, अनुभव कर सकते हैं, हजारों-लाखों किलोमीटर के पैमाने पर माप भी सकते हैं।

इस सिद्धान्त को कहते हैं–*यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे*। सूर्य-चन्द्रमा, तारे, उसके परे आकाश गंगा, उसके परे लाखों-करोड़ों सूर्य, इन सबको कहते हैं ब्रह्माण्ड, माने बड़ी दुनिया। पिण्ड का मतलब छोटी दुनिया। मनुष्य के शरीर या किसी कीट-पतंग के शरीर या पत्थर या वनस्पति के किसी कण को तुम वैज्ञानिक ढंग से देखो। तुम देखोगे कि जो वहाँ हो रहा है, वह यहाँ भी हो रहा है।

हम लोगों के यहाँ विराट् और हिरण्यगर्भ, ये दो शब्द आते हैं। विराट् उसे कहते हैं जो दिख सके, और हिरण्यगर्भ वह है जो दिखाई नहीं देता। सारी सृष्टि को हमारे ऋषि-मुनियों ने विराट और हिरण्यगर्भ, इन दो रूपों में देखा। विराट् स्थूल है, हिरण्यगर्भ सूक्ष्म। वह सारी सृष्टि जो इंद्रियों द्वारा अनुभव की जा सके, उसे विराट् कहते हैं, और वह रचना जिसे इंद्रियों द्वारा अनुभव न किया जा सके, वह हिरण्यगर्भ कहलाती है।

इन चीजों की जानकारी होनी चाहिये, क्योंकि मनुष्य का जन्म केवल भोग के लिये नहीं, ज्ञान के लिये हुआ है। भोग भी योग के लिए होना चाहिये। अगर तुम भोग भोगते हो, अगर तुम्हारा अच्छा घर है, अच्छी बीवी है, अच्छे बच्चे हैं, अच्छे माता-पिता हैं, रुपया-पैसा है, मोटरकार है, तो उसका प्रयोजन ज्ञान होना चाहिये, मौज नहीं।

–25 अक्टूबर, 1997



अध्याय 15

'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' मंत्र श्री कृष्णजी का है या भगवान नारायण का? कहीं-कहीं यह मंत्र श्री नारायण जी की फोटो के नीचे लिखा रहता है।

इस बात को हमेशा याद रखो कि परमात्मा अकर्ता हैं, वे कुछ करते नहीं हैं। जब वे प्रकृति का आश्रय लेकर अवतार लेते हैं, तब वे सब कुछ कर सकते हैं। परमात्मा में सब शक्तियाँ हैं, पर क्रिया नहीं है। कारतूस में शक्ति है, मगर क्रिया के बिना उसका कोई मतलब नहीं है। पेट्रोल में सब शक्ति है, मगर वह जमीन के अन्दर निष्क्रिय रहता है। क्रिया के लिये उस चीज को किसी दूसरी चीज के साथ जोड़ना पड़ता है। पेट्रोल को गाड़ी की चाबी के साथ जोड़ते हैं तो एकदम बिजली पैदा हो जाती है। कारतूस को हथौड़े के साथ जोड़ दो, तो मारने की शक्ति पैदा हो जाती है।

इसी तरह आदिपुरुष परमात्मा समस्त जगत् में व्याप्त हैं पर कर्ता नहीं हैं। प्रकृति के साथ मिलकर फिर वे कुछ करते हैं। और जैसे ही वे प्रकृति से मिलते हैं, वैसे ही वे ईश्वर हो जाते हैं। ईश्वर या भगवान शब्द जो होता है, वह परमात्मा के प्रकृति से मिलने के बाद प्रयुक्त होता है। जैसे लड़की शादी के बाद औरत बन जाती है और बच्चे के बाद माँ, वैसे ही परमात्मा जब प्रकृति के साथ मिलते हैं तो उन्हें भगवान कहते हैं। भग का मतलब होता है ऐश्वर्य। छः प्रकार के ऐश्वर्य वाला भगवान होता है। ईश्वर वह है जो शासन करता है। जैसे-जैसे प्रकृति उसमें प्रकट होती जाती है, वैसे-वैसे वह बहुत सक्रिय होता जाता है। जैसे श्री राम या श्री कृष्ण थे, वे क्रियाशील थे, उन्होंने बहुत कुछ किया, जो उन्होंने निर्गुण रूप में नहीं किया।

परमात्मा को अगर कुछ करना होता है तो उनको अवतार धारण करना पड़ता है। बिना अवतार धारण किये वे कुछ नहीं कर सकते। परमात्मा ने प्रकृति के साथ मिलने के बाद सृष्टि की रचना की। सृष्टि की रचना, पालन और संहार करने की शक्ति उनमें है, मगर सुप्त है, बीज रूप में है। जैसे गेहूँ का बीज जब तक धरती से नहीं मिलेगा, तब तक उगेगा नहीं, पड़ा ही रहेगा तुम्हारे गोदाम में, वैसे ही परमात्मा निर्गुण और निराकर है, उसमें सब शक्तियाँ हैं, मगर उनको सक्रिय करने के लिये उसे प्रकृति के साथ मिलना पड़ता है। और इस प्रकृति को हम लोग महामाया, भगवती और देवी जैसे नामों से पुकारते हैं।

अब यह जो मंत्र है, यह है भगवान श्रीकृष्ण का, क्योंकि 'भगवते' शब्द प्रयुक्त हुआ है। भग अर्थात् ऐश्वर्य, ऐश्वर्य माने ताकत। छः प्रकार के ऐश्वर्य से जो सम्पन्न हुए, वे भगवान हैं–

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ।
वैराग्यस्य मोक्षस्य षण्णां भग इतींगता: ॥

परमात्मा को जब कुछ करना होता है तो उनको प्रकृति के साथ जुड़ना पड़ता है, बन्धन में आना पड़ता है। तब वे अवतार के रूप में किसी माँ के पेट से पैदा होते हैं, बड़े होते हैं, फिर वे क्रिया करते हैं, और उसे खत्म कर फिर वापस अपने में लीन हो जाते हैं। बस इतना ही मतलब है।

माया के वश में होकर गरुड़ श्री राम को नहीं पहचान सके। नारद को माया ने वश में कर लिया, और फिर उन्होंने विष्णु को श्राप दिया। उस समय माया भगवान से अलग थी क्या?

यहाँ माया मन की एक स्थिति का नाम है। जैसे कि कोई बेईमान आदमी किसी भले आदमी के पास आया और बोला कि मेरे घर में बहुत गरीबी है, कुछ मदद करो। भले आदमी ने उसको चार-पाँच सौ रुपये दे दिये। जब उसकी पत्नी को पता चला तो उसने कहा कि तुम अन्धे थे क्या, दिखाई नहीं दिया कि वह बेईमान है? अब वह भलमानस अन्धा तो नहीं था। यहाँ अन्धे का मतलब जो सच को, वास्तविकता को नहीं देख सकता। उसी तरह से माया का मतलब लगाना है। जो सच है, वह व्यक्ति की समझ में नहीं आ रहा है। सड़क पर साँप है नहीं, रस्सी है, पर रात में पैर से लग गई, तो

साँप-साँप चिल्लाया, क्योंकि उसे साँप का भ्रम हो गया। माया एक प्रकार का भ्रम होता है।

गरुड़ का यह जो प्रसंग है रामचरितमानस में, यह सबके लिये है, गरुड़ का तो बहाना है। दुनिया में अनेकों सम्प्रदायों के हजारों लोग हमेशा राम जी और अन्य अवतारों पर हमला करते हैं, आलोचना करते हैं। जब वे भगवान थे, तो फिर औरत के पीछे क्यों भागे? भगवान को शादी करने की क्या जरूरत है? जब वे भगवान थे, सर्वशक्तिमान् थे तो उनको मेघनाद की शक्ति कैसे लगी?

इस आलोचना का जवाब देने के लिये रामचरितमानस में यह प्रसंग काकभुशुण्डी रामायण से लिया है। काकभुशुण्डी रामायण नाम से एक अलग रामायण है, जिससे यह प्रसंग लिया गया है। गरुड़,भगवान का वाहन था, उनके बहुत नजदीक रहता था। जब उसको भ्रम हो सकता है, तब तुम्हारी और हमारी क्या गिनती! नारद बहुत बड़े मुनि थे, त्रिकालज्ञानी थे, सन्तपुरुष थे, काम को भी उन्होंने जीत लिया था। जब उनको भी भ्रम हो सकता है, तब हमारी-तुम्हारी क्या बिसात।

बहुत-से लोग सोचते हैं कि योगी खाना क्यों खाता है, उसको क्या जरूरत है? भगवान किसी माँ के पेट से क्यों आते हैं, वे सीधे क्यों नहीं आते? उनको माँ की आवश्यकता ही क्या है? ऐसी आलोचना बहुत-से लोग करते हैं। समाज के पढ़े-लिखे लोग, आर्य समाज के लोग, ईसाई मत के लोग, इस्लाम मत के लोग, बहुत-से लोग राम अवतार की या कृष्ण अवतार की या दूसरे किसी अवतार की आलोचना करते हैं। अब इन लोगों के पास अपनी खोपड़ी तो है नहीं और न ही ईश्वर-परमात्मा के बारे में ज्यादा सोचते हैं। चौबीस घण्टे तो पैसे के बारे में सोचते हैं, बीवी-बच्चों के बारे में सोचते हैं, बेईमानी-ईमानदारी के बारे में सोचते हैं, मगर परमात्मा के बारे में तो कोई सोचता ही नहीं कि परमात्मा क्या वस्तु है, उसे अवतार क्यों लेना पड़ता है। कभी सोचते ही नहीं, पर कह देते हैं कि भगवान के पास अगर इतनी शक्ति है तो रावण को मारने के लिये पैदा ही क्यों होना पड़ा, वहीं से रावण को क्यों नहीं मार दिया। अब इसका जवाब कौन दे उनको? जवाब उनको दिया जाये, जिनके पास कुछ समझ हो।

मान लो तुम्हारे पास दस कारतूस हैं, और तुम्हारा किसी के साथ झगड़ा हो गया। तुम हमारे पास आए कि स्वामीजी हमको बचाइये। अब लोग कहेंगे

कि तुम्हारे पास जब कारतूस थे ही तो स्वामीजी के पास क्यों गये? इसलिए कि तुम्हारे पास बन्दूक नहीं थी। परमात्मा में शक्ति है पर क्रिया नहीं है, यह बात याद रखो। क्रिया के लिये उसे प्रकृति का आश्रय लेकर अवतार धारण करना पड़ता है। शिव बनना पड़ता है या ब्रह्मा बनना पड़ता है, कभी कुछ तो कभी कुछ बनना पड़ता है। सीधी-सी बात है। तुमको उदाहरण दे ही दिया है गेहूँ के बीज का। गेहूँ में शक्ति है, क्रिया नहीं। गेहूँ के बीज को गेहूँ का पौधा बनने के लिये पृथ्वी का आश्रय लेना पड़ेगा। वही बात परमात्मा पर लागू होती है।

शास्त्रों में यही चीज समझाई गई है कि परमात्मा अकर्ता है, निर्गुण है, सबके ऊपर है, नाम-रूप के परे है, जीव-जीव में रहता है, पत्थर में रहता है, सन्त में रहता है, बदमाश में रहता है, कोई जगह ऐसी नहीं जहाँ वह नहीं है। मगर गेहूँ की तरह जब तक वह जमीन में नहीं आयेगा, प्रकृति के सम्पर्क में नहीं आयेगा तो क्रिया कैसे करेगा।

प्रकृति की तीन शक्तियाँ होती हैं–क्रियाशक्ति, इच्छाशक्ति और ज्ञानशक्ति। जब तक इच्छा नहीं होगी तब तक क्रिया नहीं होगी, और जब तक तुमको ज्ञान नहीं होगा तब तक ये दोनों नहीं होंगी। पहले तुमको ज्ञान हुआ, फिर तुमने इच्छा की, तब तुममें क्रिया हुई। क्रिया, इच्छा, और ज्ञान, ये देवी के रूप हैं, इसलिये इन्हें शक्ति कहा है–दुर्गा, लक्ष्मी और सरस्वती। नवरात्रि में तीन-तीन दिन इनकी पूजा करते हैं। जब परमात्मा इन तीनों के सम्पर्क में आता है, तब जगत् की उत्पत्ति होती है, तारे बनते हैं, सूर्य बनता है, पंच तत्त्व बनते हैं, तीन गुण बनते हैं, जीव बनते हैं, योनियाँ बनती हैं, जन्म-मृत्यु, ये सब बनते हैं। किन्तु तब भी परमात्मा सम्पूर्ण क्रियावान् नहीं रहता। उसको सम्पूर्ण क्रियावान् बनने के लिये अवतार लेना पड़ता है, माँ के गर्भ में आना पड़ता है, हमारी-तुम्हारी तरह शिशु बनना पड़ता है, विवाह करना पड़ता है, सुख-दुःख में रहना पड़ता है।

इसे ही लीला कहा जाता है। लीला माने अभिनय। इसलिये रामलीला या कृष्णलीला शब्द का प्रयोग करते हैं। यह सब लीला है। उसमें सुख-दुःख लाना पड़ता है। राम जी का जो जीवन है, वह हम लोगों के लिये कितना अच्छा आदर्श है? थोड़ी देर के लिये मान लो कि राम जी ईश्वर नहीं भी हैं, मनुष्य ही हैं, मर्यादा पुरुषोत्तम ही हैं, तो भी उन्होंने हमारे सामने कितना बढ़िया आदर्श रखा है। पिताजी के एक बार कहने से घर छोड़ दिया। उन्होंने

यह भी नहीं सोचा कि मुझे क्या तकलीफ होगी। सौतेली माँ को एक भी टेढ़ा शब्द नहीं बोला। भरत के आग्रह करने के बाद भी, भरत की निष्कपटता के बावजूद भी उन्होंने राज्य स्वीकार नहीं किया। ये मर्यादाएँ हैं। अवतार के रूप में भी उन्होंने मर्यादाओं का पालन किया।

जैसे महात्मा गाँधी हमारे युग में आये, वे भी अवतारी पुरुष थे। हम उनके साथ रहे हैं। उन्होंने इस युग की मर्यादाएँ देखीं, इस युग की परिस्थितियाँ देखीं, हिन्दुस्तान की गरीबी देखी, हिन्दुस्तान का छुआ-छूत देखा, हिन्दुस्तान की शक्तिहीनता देखी और अंग्रेजों की प्रबल शक्ति को देखा। वह शक्ति जो जर्मनी से लड़ सकती थी, हिटलर से लड़ सकती थी। उन्होंने आजादी के लिये शस्त्र का निषेध किया। वे समझदार थे, उन्होंने सोचा कि यह देश जो जर्मनी से लड़ सकता है, उसके सामने हम क्या करेंगे। यहाँ न तो बन्दूक-बारूद बनता है, न ही लोगों को बन्दूक चलाना आता है। केवल लाठी चलाना आता है। वहाँ तो हर बच्चा बन्दूक चलाना जानता है, रेडियो-वायरलेस चलाना जानता है, गाड़ी चलाना जानता है। तब उन्होंने अहिंसा का आन्दोलन शुरू किया।

कहने का मतलब यह कि परमात्मा की शक्ति हर युग में जो लीला करती है वह युग के अनुसार करती है। राम का समय मर्यादा का था, कृष्ण का समय दूसरा था, गाँधी जी का समय अलग था। भगवान के बारे में बहुत-से लोगों के मन में सन्देह ऐसी ही छोटी-छोटी चीजों को लेकर होते हैं। और उस सन्देह का निराकरण श्रीरामचरितमानस में कई जगह किया गया है। सबसे पहले सन्देह हुआ था सती जी को। उन्होंने कहा, 'ये भगवान हैं! अरे, ये तो औरत के पीछे रो रहे हैं!' रावण को सन्देह नहीं था। वह दो मन में था। उसने सोचा, अगर ये भगवान के अवतार हैं, तब तो इनके हाथों मरना ही अच्छा रहेगा, यह सम्मान का विषय है। और यदि भगवान नहीं हैं, तब तो जमकर लड़ेंगे। उसके ये दो विचार थे। गरुड़ को सन्देह हो गया, 'ये नारायण के अवतार कैसे हो सकते हैं? इनको लगे नाग बाण का निराकरण करने के लिये मुझे बुलाया गया, ये कैसे भगवान हैं?' हनुमान जी को सन्देह नहीं था, शबरी को सन्देह नहीं था, उनमें स्पष्ट रूप से श्रद्धा थी।

सुग्रीव को थोड़ा सन्देह हुआ था न? उसने हनुमान से कहा नहीं था कि रामजी को बालि की शक्ति के बारे में बता देना चाहिये?

हाँ, सुग्रीव को भी थोड़ा सन्देह हुआ था। भगवान के बारे में विश्वास एक तरफ है और सन्देह दूसरी तरफ है। सन्देह किया जाता है, जबकि विश्वास किया नहीं जाता, हो जाता है। विश्वास एक सहज चीज है।

स्वामीजी, पैगम्बर मूसा के बारे में कहा जाता है कि जब वे सब यहूदियों को ले जा रहे थे, तो बीच में समुद्र था। उन्होंने आज्ञा देकर बीच समुद्र में रास्ता बनाया और जब सब समुद्र पार कर गये तब फिर समुद्र वैसा का वैसा हो गया। तो श्रीराम ने भी समुद्र को आज्ञा देकर रास्ता क्यों नहीं बनाया?

मूसा साहिब, जिन्हें अंग्रेजी में मोसेस कहते हैं, यहूदी मत के गुरु थे। वे यहूदी मत के संस्थापक नहीं थे, यहूदी मत उनसे पुराना था। यहूदी लोग काश्मीर के रहने वाले थे। काश्मीर में पहले समुद्र था, जिसको नीलांचल समुद्र कहते थे। उसके नाम पर पुराण भी है–'नीलांचल पुराण।' वैज्ञानिक और इतिहासकार भी इस बात को मानते हैं कि हिमालय के स्थान पर किसी समय समुद्र था। वह हिमालय बन कर उठा। यह सच बात है, इसके प्रमाण मिलते हैं। जब समुद्र उठा, वह एक-दो दिन में तो नहीं उठा होगा। कई हजार साल तक गड़बड़ होती रही होगी, तूफान उठते रहे होंगे, भूकम्प आए होंगे, बहुत कुछ होता रहा होगा। उस समय वे वहाँ से भागे और भागकर ईराक गये। उसके बाद वे पहुँचे इज़राइल। उनके दल के मुखिया को भगवान ने यह जगह बतायी थी, इसलिए वे लोग वहाँ गये।

धर्म के मामले में यहूदी बहुत कट्टर जाति है। जैसे हमारे वैदिक धर्म में किसी के धर्म को बदलते नहीं, वैसे ही इनमें कोई यहूदी नहीं बन सकता। उनमें धर्म परिवर्तन नहीं हो सकता। हम लोगों की तरह ही पूजा-पाठ करते हैं। बहुत प्रतिभाशाली लोग हैं। प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन यहूदी था, आइंस्टाइन यहूदी था, साम्यवादी विचारधारा का प्रचार करने वाला कार्ल मार्क्स यहूदी था, विश्वविख्यात वायलिन वादक मेनुहिन यहूदी हुआ। और हमारे वैदिक धर्म को विदेशों में ले जाने वाले प्राय: सभी यहूदी हैं। हरे राम, हरे कृष्ण वाले प्राय: सब यहूदी हैं। यह बात शायद तुम लोगों को मालूम नहीं। तुम लोग गोरा आदमी देखते हो तो समझते हो अमरीकी होगा। मगर नहीं, वे सब यहूदी हैं।

जब अमरीका और वियतनाम में युद्ध चल रहा था तो अमरीका में कानून बना कि 18 साल के ऊपर हर एक व्यक्ति को सैनिक शिक्षा लेनी होगी।

अमरीका में यहूदी बड़ी संख्या में रहते हैं। उन्होंने सोचा, हम इस बेकार की लड़ाई में क्यों जायेंगे? वैसे प्राय: सभी अमरीकी वियतनाम की लड़ाई के खिलाफ थे। मगर वहाँ कानून बन गया कि तुम्हें 18 साल के बाद सेना में जाना अनिवार्य है। पर उस कानून में एक अनुच्छेद है जिसमें लिखा है कि यदि कोई व्यक्ति किसी ऐसे सम्प्रदाय का अनुयायी हो जो मरने-मारने की अनुमति नहीं देता तो उसे नहीं लिया जाय। बहुत-से यहूदियों ने तुरन्त हरे कृष्ण मिशन को अपना लिया। हमारे योग आन्दोलन में भी बहुत-से लोग इसीलिये आये। सब लड़ाई से बच गये।

बहुत प्रभावशाली जाति है यह। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान जर्मनी में इन्हें लाखों नहीं, करोड़ों की संख्या में मारा गया। तुम लोगों को शायद यह सब पता नहीं। इसको इतिहास हॉलोकॉस्ट कहता है, महाविनाश। ये यहूदी लोग मारवाड़ियों की तरह सम्पन्न होते हैं, बहुत अच्छे व्यापारी होते हैं। इनकी खोपड़ी व्यापार में बहुत तेज है। ये लोग किसी की नौकरी-चाकरी नहीं करते। इनका सारा सोना, चांदी, पैसा स्विट्जरलैंड में जमा था। अभी तो संयुक्त राष्ट्र संघ में इसका बहुत बड़ा मुद्दा उठा है कि इनकी सम्पत्ति का स्विट्जरलैंड क्या करेगा? बैंक एकाऊँट खोलना पड़ेगा, सब उनके वारिसों को देना पड़ेगा। अरबों की सम्पत्ति है।

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान जर्मन लोग यहूदियों को घर से निकालते थे, रेलगाड़ी से कॉन्सन्ट्रेशन कैम्प भेजते थे, वहाँ एक कमरे में बन्द कर देते थे और जहरीली गैस छोड़ देते थे। सब मर जाते थे। ऑस्ट्रिया में जिस जगह पर उन्हें मारा गया, उसका नाम है ऑश्विट्ज़। हम उसे देखकर आये हैं। उस युद्ध में यहूदी करोड़ों की संख्या में मारे गये हैं। उनके जूते, कपड़े वगैरह सब नाज़ी लोग ले लेते थे, अपनी सेना को दे देते थे। इस पर बहुत-सी पुस्तकें लिखी गई हैं, बहुत-सी फिल्में बनी हैं। मनुष्य मनुष्य के साथ महा-अत्याचार कर सकता है, यह हमने अपनी आँखों से देखा है।

इन्हीं यहूदियों का चार हजार साल पहले एक पैगम्बर पैदा हुआ था, जिसका नाम था मूसा। उस समय इज़राइल के यहूदियों को मिस्त्र वालों ने गुलाम बनाया था। ये लोग सीधे-सादे लोग हैं, जैसे यहाँ गाँव के लोग होते हैं। पिटाई खाते हैं, चुप रहते हैं। उस समय मिस्त्र के राजा को स्वप्न आया कि यहूदियों का सरताज, उनका उद्धारक पैदा हो चुका है। ज्योतिषियों ने भी बोला कि हाँ, सच बात है। तब यह निर्णय हुआ कि जितने भी बच्चे पिछले

एक हफ्ते में जन्मे हैं, सबको मार डाला जाए। तब मूसा की माँ ने अपने बच्चे को कम्बल से लिपटाकर, एक पिटारी में डालकर बहा दिया। ऐसा कई लोगों ने किया होगा, तो उसने भी किया। इत्तेफाक से वह पिटारी बहते-बहते ऐसी जगह पहुँची, जहाँ मिस्र के महाराजा की भांजी स्नान कर रही थी। उसको वह बच्चा बड़ा प्यारा लगा। उसने उस बच्चे को उठा लिया और अपने साथ ले आयी।

वह यहूदी बच्चा मिस्र के राजमहलों में पलने लगा। किसी को पता ही नहीं चला। वह बड़ा हुआ और मिस्र का वारिस बनने वाला था। राजा की बहन के साथ उसकी शादी होने वाली थी। तब एक गलती हो गई। यहूदी लोग एक विशेष प्रकार का कम्बल रखते हैं, जो उनकी पहचान मानी जाती है। उसी कम्बल में लपेटकर मूसा की माँ ने उसे बहा दिया था। वह कम्बल किसी दासी को उसके कमरे में कहीं पड़ा हुआ मिल गया। किसी प्रकार से राजमहल में खबर फैल गयी कि यह यहूदी का बच्चा है। उसके बाद उसे देश से निकाल दिया गया, उसे मिस्र छोड़ना पड़ा। वह अरब देश आया। वहाँ उसने दो औरतों से शादी की। फिर वहाँ उसने जादू-टोना, यंत्र-मंत्र, योगविद्या, तंत्रविद्या, सब सीखी। सब सीखकर वह फिर मिस्र लौटा। वहाँ आकर उसने कहा कि मेरे सारे यहूदी भाई-बहनों को गुलामी से मुक्त करो। मिस्रवालों ने कहा, नहीं करेंगे। तब उसने सारे मिस्र में अपनी मंत्र शक्ति से महामारी फैला दी। इतिहास कहता है कि मिस्र एक बहुत विशाल साम्राज्य था। जबरदस्त, जैसे आज अमरीका है। मूसा ने उसे रातों-रात खत्म कर दिया। राजा मर गया, उसका दूसरा पुत्र जो महाबदमाश, घमण्डी और उद्दण्ड था, उसे अंत में मजबूर होकर मूसा की बात माननी पड़ी। मूसा सब यहूदियों को लेकर मिस्र देश से निकले। रास्ते में 'लाल समुद्र' पड़ता है। अब लाल समुद्र कैसे पार करें? कहते हैं कि मूसा ने अपनी छड़ी हिलाई और लाल समुद्र से कहा कि तुम रास्ता बनाओ। सारे यहूदी उस पार हो गये और अरब देश में आ गये।

तुमने प्रश्न किया था कि राम जी ने ऐसा क्यों नहीं किया? राम जी तो समुद्र को सुखाना चाहते ही थे, उन्होंने कहा था– *लछिमन बान सरासन आनू, सोषौं बारिधि बिसिख कृसानू।* तब समुद्र ने उनसे कहा, 'भगवान, आप प्रकृति के नियमों का उल्लंघन क्यों कर रहे हैं? सब जगह मर्यादा होती है, सब जगह नियम होते हैं, और नियम आपने ही बनाये हैं, हमने नहीं। नियम का उल्लंघन

किये बिना काम चल जाय तो?' राम जी ने पूछा कि रास्ता क्या है? तब समुद्र ने कहा कि नल और नील सेतु बनाएँगे–

नाथ नील नल कपि द्वौ भाई। लरिकाईं रिषि आसिष पाई ॥
तिन्ह कें परस किएँ गिरि भारे। तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे ॥

यह घटना कितनी पुरानी है?

राम जी कब पैदा हुए, रामायण कब लिखी गई, यह कहना बहुत कठिन है। अब गाँधी जी पिछली शताब्दी में पैदा हुए। उनकी कथा दो सौ साल बाद भी लिख सकते हो और दो हजार साल बाद भी। साहित्य और व्यक्ति में समय अलग-अलग हो सकता है। वाल्मीकि रामायण के बारे में कहा जाता है कि वह रामजी के समय में लिखी गई। पर यह इतिहास के रूप में नहीं, पौराणिक दंतकथा के रूप में मानी जाती है। जहाँ तक इतिहास की तारीख निश्चित करने का सवाल है, हिन्दुस्तान के लोग इन तारीखों को स्पष्ट रूप से लिखते नहीं थे। कुछ दूसरे ढंग से लिखते थे। अब जैसे महाभारत युद्ध में जिस दिन जयद्रथ मारा गया, उस दिन संध्या के समय सूर्य ग्रहण था। तो उस दिन अमावस्या रही होगी, पक्की बात है। अब यह कब हुआ? महाभारत जिस दिन शुरू हुआ, उस दिन मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी थी। गीता जिस दिन सुनाई गई। उसको हम लोग गीता जयंती भी कहते हैं। और शुक्ल एकादशी के 18-19 दिन के बाद अमावस्या आती है। ये सब चीजें बहुत क्लिष्ट हैं। हम लोग के यहाँ रामायण, महाभारत या पुराणों में जितनी भी तारीखें हैं, ये इतनी क्लिष्ट हैं कि सामान्य आदमी नहीं समझ सकता। कहीं पर नक्षत्रों का प्रसंग है तो कहीं पर ग्रहण का संदर्भ है। ऐसे-ऐसे प्रसंग दिये गये हैं जो समझ में ही नहीं आते।

कहते हैं कि राम जी ने ग्यारह हजार साल राज किया। यह समझ में नहीं आता कि वे इतने बरस कैसे जिये होंगे?

यह समझने की बात है। पहले के समय में और आज भी राज परम्परा में जो राजा होता है, उसका नाम वही होता है, जो उसके पूर्वजों का था, जैसे जॉर्ज पाँचवाँ या निकोलस द्वितीय। हम लोगों के यहाँ जगद्‌गुरुओं को आज भी शंकराचार्य कहते हैं, उनका संन्यास दीक्षित नाम नहीं बोलते। कोई पूछे, कौन आया है भाई, तो यही कहते हैं, पुरी के शंकराचार्य आये हैं। पहले के जमाने

में प्रथा थी कि उत्तराधिकारी भी उसी नाम से जाने जाते थे। तो हो सकता है श्रीराम के वंशजों ने ग्यारह हजार साल तक राज किया हो, इसमें क्या हर्ज है। अब जो लेखक होता है, उसके लिखने की एक विधि होती है, एक सीमा होती है। साहित्य की एक सीमा होती है, और फिर उसे पढ़ने वाले की भी एक सीमा होती है।

हमने पढ़ा है कि हमारी चेतना में स्त्री और पुरुष का दोहरा व्यक्तित्व रहता है; जिसका प्रतिशत ज्यादा होता है, वह ज्यादा अभिव्यक्त होता है।

यह सही बात है। चिकित्सा विज्ञान, गुह्य विज्ञान और धर्म, सभी इस बात को मानते हैं कि मनुष्य का बायाँ भाग स्त्री शरीर का प्रतिनिधित्व करता है और दायाँ भाग पुरुष का। माने आधा गर्म और आधा ठण्ढा। मस्तिष्क के भी दो भाग माने जाते हैं और योग में तो बिल्कुल स्पष्ट कहते हैं कि यह इडा है, वह पिंगला है, यह गंगा है, वह यमुना है, यह अनुकम्पी तंत्रिका तंत्र है और वह परानुकम्पी। शैव मत में भी कहते हैं, आधा गोरा, आधा काला, इधर पार्वती, उधर शिव, अर्धनारीश्वर।

यह बात तो बिल्कुल सही है कि मनुष्य के शरीर और चेतना में दोनों मिले हुए हैं, जैसे चने के बीज में दो दल मिले होते हैं। इसी वजह से कभी किसी स्त्री में देखोगे कि उसका स्वभाव पुरुष जैसा है। कई स्त्रियों के स्वभाव में पौरुष देखते हो और कई पुरुषों के स्वभाव में स्त्रीत्व। विनय, विवेक, संकोच, मृदुता, धैर्य, मीठा भाषण– ये स्त्रीत्व के गुण हैं। और बल, पौरुष, शौर्य आदि को पुरुष गुण मानते हैं। चूंकि मनुष्य में दोनों चेतनाएँ हैं, तो किसी एक के विशेष हो जाने से शरीर और स्वभाव पर असर पड़ता है।

विवेक, मृदुता, संकोच, धैर्य और ममता पुरुष की अपेक्षा स्त्री में अधिक होती है। इसी वजह से दिल का दौरा पुरुषों को ज्यादा पड़ता है, स्त्रियों को कम। स्त्री चाहे गर्भाशय के कैंसर से मरे, या किसी और वजह से, मगर दिल के दौरे की सम्भावना ज्यादा नहीं होती क्योंकि स्त्री के हृदय पर पुरुष की तरह असर नहीं पड़ता। उसमें विवेक होता है। अब घर में कोई मर जाए तो पुरुष लोग नहीं रोते, औरतें ही जम कर रोती हैं। घर में हाहाकार उन्हीं का सुनाई देता है, आदमियों का नहीं। इस वजह से हृदय में जितना भी तनाव है, सब आँसू बन कर निकल जाता है। वे हृदय को ज्यादा कष्ट देकर नहीं रखतीं।

उसी तरह से दिमाग का जो वजन है, वह स्त्री और पुरुष में समान नहीं होता। स्त्री में कष्ट सहन करने की क्षमता पुरुष की अपेक्षा बहुत अधिक होती है। और इसी वजह से कई हजार वर्षों से पुरुष स्त्री का शोषण करता आया है। आज कम-से-कम एशिया में स्त्रियों की जो हालत है, वह पुरुषों के व्यवहार का परिणाम है। यह बात ध्यान देने की है। स्त्री कभी भी गलत रास्ते पर नहीं जाएगी। जबकि हम उल्टा समझते हैं। हम सोचते हैं कि वही गलत रास्ते पर जा सकती है, इसलिए शाम को घर के बाहर मत भेजो। तुम कहीं भी आ-जा सकते हो, मगर तुम्हारी बहन नहीं, क्योंकि गलत रास्ते पर चली जायेगी। स्त्री गलत रास्ते पर कभी नहीं जाएगी, क्योंकि स्त्री के अन्दर दो मुख्य गुण हैं। तुम अपने घर में माँ-बहनों को देख लो। स्त्री स्थिरता चाहती है और सुरक्षा चाहती है। जबकि पुरुष स्थिरता नहीं चाहता और सुरक्षा की उसे कोई जरूरत नहीं, दो चपत मार देगा। पर स्त्री को चाहिये सुरक्षा और स्थिरता। वह हमेशा एक जगह जमना चाहती है, उखड़ना नहीं चाहती। स्त्री को उखड़ने की इच्छा होती ही नहीं। इसलिये सतीत्व की जो भावना है, सतीत्व पर जो विश्वास है वह स्त्रियों के लिये स्वाभाविक है। अगर नहीं है, तो दोष तुम्हारा है। यह मैं तुम्हें स्पष्ट बता रहा हूँ। सतीत्व स्त्री को सिखाया नहीं जाता, यह उसकी प्राकृतिक आवश्यकता है। कोई भी स्त्री सतीत्व का त्याग नहीं करेगी, क्योंकि उसके लिये यह जरूरी है। हाँ, अगर तुम तंग करोगे तो बात दूसरी है।

हम लोगों ने स्त्री पर शक करके कितना गलत किया है। जो उसका मूल स्वभाव है, उसी पर हमने संदेह किया है। स्त्री कभी भी एक आदमी को छोड़कर दूसरे आदमी के पास जाना पसन्द नहीं करेगी। नहीं, वह जानती है, यह असुरक्षा है, यह अस्थिरता है, मर जाऊँगी। मगर जब तुम उसे तंग करोगे, परेशान करोगे, उसे अपने स्वाभाविक प्राकृतिक अधिकारों से वंचित रखोगे, राजनैतिक अधिकारों से वंचित रखोगे, तो फिर उसके सामने आखिर उपाय क्या है?

इसलिये एशिया में स्त्री जाति के प्रति लोगों का ध्यान जाना चाहिये। स्त्री जाति के प्रति, अपनी माँ के प्रति, खैर माँ को तुम क्या कह सकते हो, वह तो बड़ी ही होती है, कम-से-कम बहन, बेटी, बहू, उनके प्रति ख्याल रखना पड़ेगा। उन्हें कानूनी अधिकार देना जरूरी है। सम्पत्ति पर उनका भी अधिकार होना चाहिए। तुम्हें मालूम नहीं, यूरोप और अमेरिका में लड़कियों के क्या अधिकार हैं। आज एक विदेशी लड़की को छेड़कर देखो बाजार में,

चौबीस घण्टे के अन्दर राज्य के मुख्यमंत्री को भारत के प्रधानमंत्री का संदेश आयेगा कि मुजरिम को गिरफ्तार करो। इतने अधिकार हैं उनके। वह सीधे अपने राजदूत को फोन करेगी, राजदूत सीधे गृह मंत्रालय या प्रधानमंत्री को फोन करेगा, वहाँ से संदेश आ जायेगा कि चौबीस घण्टे के अन्दर गिरफ्तार करो। वहाँ की लड़कियाँ कहीं भी जाती हैं, उनको किसी का डर नहीं। उनकी सरकार ने उनको ये अधिकार दिये हैं।

स्त्रियों को अधिकार देना समाज को मजबूत बनाने का सबसे सरल उपाय है। यहाँ के लोग काम करके पैसा कमाएँ, अमीर बनें, बच्चे खूब पढ़ें, बी.ए. और एम.ए. करें, नौकरी-चाकरी करें, अमेरिका, जर्मनी या बैंगलोर जाकर नौकरी करें, यह तभी सम्भव है जब यहाँ की लड़की पढ़ी-लिखी हो। अन्यथा यह सब सम्भव नहीं। चाहे सरकार यहाँ पैसे का खजाना रख दे, रिखिया के लोग कंगाल के कंगाल रह जायेंगे। कोई भी जाति स्त्री के बिना उन्नति नहीं कर पायेगी। हमारे आश्रम को ही देखो न, हमारे तो ऐसे सैकड़ों आश्रम हैं, सब लड़कियाँ चलाती हैं। हाँ, आदमी लोग भी रहते हैं, स्वामी निरंजन भी रहता है, मगर नियंत्रण लड़कियों का है। सब कुछ लड़कियाँ करती हैं, क्योंकि हम विश्वास करते हैं लड़कियों पर। ईमानदारी, सदाचार, संयम, तप और सेवा का दूसरा नाम है औरत।

तुम लोगों का घर तो बहुत कमजोर है। बुरा नहीं मानना भाई, हम तुम्हारे समाज की निन्दा नहीं कर रहे हैं, पर सच्चाई यह है कि तुमने अपनी औरत को, अपने घर के मुख्य आधार को कमजोर रखा है। और ऊपर का मकान तुम बढ़िया बना रहे हो। लड़की को जमकर पढ़ाओ और जितने सामाजिक अवसर लड़के को दिये हैं, उससे कुछ अधिक अवसर लड़की को दो। उसके अधिकारों की रक्षा करनी होगी। तुम्हारे घर में पैसा अवश्य आयेगा क्योंकि स्त्री लक्ष्मी का माध्यम है। लक्ष्मी जब भी पैसा भेजती है तो औरत के लिये भेजती है, आदमी के लिये नहीं, क्योंकि वह तो उसकी जात की है न। हमारे यहाँ सब काम स्वामी सत्संगी चलाती है। क्या वह किसी आदमी से कम है? नहीं।

लड़की गलत रास्ते पर जा ही नहीं सकती, जब तक उसे मजबूर न किया जाय। मजबूर किया जाय तो क्या करेगी बेचारी? कोई लड़का छेड़े तो चप्पल उठाती है बेचारी, यह नहीं कि उसको एक लात मारे तो दाँत टूट जायें। आत्म रक्षा की विद्या सिखाई है उसको तुमने? कोई छेड़े तो चप्पल उठाने के बजाय ऐसा मुक्का मारना चाहिये कि दाँत टूट जायें। अपने घर में लड़कियों की रक्षा

करो, उनको उपयोगी बनाओ। लड़की कभी भी खानदान पर कलंक नहीं लगा सकती। वही लड़की खानदान पर कलंक लगाती है, जिसका खानदान उसको ठीक तरह से नहीं रखता। कमजोरी माता-पिता, बुजुर्गों और खानदान की है, न कि लड़की की। मैंने साफ-साफ बोल दिया, इस बात को कभी नहीं भूलना। लड़की का मुख्य स्वभाव एक जगह टिकना है। इसे उसकी कमजोरी कहो या विशेषता, लेकिन लड़की कभी भी उखड़ना नहीं चाहती। यह उसका मुख्य गुण है। एक जगह वह जम गई, फिर वह राज करेगी।

एशिया की सबसे बड़ी कमजोरी यही है कि यहाँ औरतें कम पढ़ी-लिखी हैं, अनपढ़ हैं, गंवार हैं और इसी वजह से यहाँ बहुत गरीबी है। पूरा एशिया गरीब है। यहाँ की गरीबी का अन्दाजा लगाना और उसे समझाना बहुत मुश्किल है।

थोड़ा-थोड़ा विकास तो हो रहा है न?

तुम्हारी दृष्टि से, हमारी दृष्टि से नहीं। विदेश का मिस्त्री हर साल यहाँ आता है, घूमने के लिये, योग सीखने के लिये। और यहाँ का मिस्त्री भागलपुर नहीं जा सकता, इतना पैसा नहीं है उसके पास।

उसका एक कारण यह भी तो हो सकता है न कि वहाँ का एक डॉलर यहाँ के रुपये में कितना गुना अधिक हो जाता है?

हाँ, मगर डॉलर की इतनी ऊँची विनिमय दर का कारण क्या है? आज के जमाने में हमारी जो अर्थव्यवस्था है, उसे झूठी अर्थव्यवस्था कहते हैं, फॉल्स इकॉनमी। झूठी अर्थव्यवस्था का आधार होता है शेयर बाजार। पाश्चात्य सभ्यता का सारा व्यापार झूठी अर्थव्यवस्था पर चलता है। इसलिये उनके डॉलर की कीमत हमेशा ऊपर रहती है। जबकि वे लोग सब अनाज यहीं से खरीदते हैं। यूरोप तो कृषि प्रधान देश है नहीं। यूरोप में छः महीने तो बर्फ होती है। सब अनाज, फल, सब्जी यहीं से जाता है। मगर इतना सब होते हुए भी हम लोग गरीब इसलिये हैं कि हमारे यहाँ जो मिस्त्री, मजदूर या कारीगर है, वह पढ़ा-लिखा नहीं है, वह समाज का सक्रिय सदस्य नहीं है। उसने मिस्त्री के काम का कोई व्यवस्थित तरीके से प्रशिक्षण नहीं लिया है, उसके पास कोई डिग्री-डिप्लोमा नहीं है। यहाँ का पेंटर बस कूची से चूना लगा देता है। उनके यहाँ जो पेंटर है, उसने प्रशिक्षण लिया है, डिप्लोमा लिया है। आखिर वहाँ

मिस्त्री इतना क्यों कमाता है? क्योंकि पढ़ा-लिखा है, अपने अधिकारों के लिये लड़ता है। उसको पैसा ठीक ढंग से मिलता है। वह घण्टे के हिसाब से पैसा लेता है, उसकी कमाई निश्चित है, उसकी सुरक्षा निश्चित है।

हमारे यहाँ मालदार लोग कौन हैं? उद्योगपति। उनके लड़के-लड़कियों के पास दो-दो गाड़ियाँ हैं, हर दूसरे महीने इंग्लैंड, अमेरिका, स्विटजरलैंड मौज करने जाते हैं। ये जो पैसा खर्च कर रहे हैं वे लोग, यह हमारा पैसा है। इसका हिस्सा हमको भी मिलना चाहिये। किसी फैक्ट्री में अगर एक मजदूर को दो हजार रुपये मिलते हैं, तो चार हजार क्यों नहीं मिल सकते? दो हजार में किसका पेट भरता है? जबकि मालदार लोगों का एक दिन का खर्चा बीस हजार है! मैं तो जानता हूँ, उन लोगों के यहाँ रह चुका हूँ। मुझे यह सब पसन्द नहीं। मैं तो साफ-साफ बोलता था, अभी भी साफ-साफ बोलता हूँ। मैं तो उन्हें यहाँ आने नहीं देता, कहता हूँ कि आना है तो ठीक ढंग से आओ। हम लड़कियों को गहना देते हैं, हमको सोना-चाँदी चाहिये, पेड़ा और पूरी नहीं।

हर व्यक्ति को समाज का ऋण चुकाना पड़ेगा। मैं भी चुका रहा हूँ। अगर आज तुम्हारा समाज नहीं होता तो तुम क्या जिन्दा रहते? समाज ने तुमको दिया है और तुमको समाज का ऋण चुकाना पड़ेगा। समाज का ऋण चुकाने के लिये क्या करना पड़ता है? जिसके पास पैसा है वह पैसा देगा, जिसके पास विद्या है, उसे विद्या देनी है, जिसके हाथ में कानून है उसे न्याय करना है। हमने तो संकेत दे दिया, पर इस बारे में आप लोगों को सोचना होगा। सबसे पहले अपने घर में शिक्षा देनी शुरू करो, शिक्षा पहले आनी चाहिये।

शिक्षा के लिये हमारी सरकार को भी तो सक्रिय होना चाहिये न, क्योंकि शिक्षा का स्तर बहुत गिरता जा रहा है?

हमारे यहाँ तीन-चार प्रकार की शिक्षा देनी होगी। अलग-अलग पाठ्यक्रम रखना होगा। गाँव के लोगों की शिक्षा, पटना के लोगों की शिक्षा से अलग होनी होगी, बम्बई के लागों की शिक्षा से अलग होनी होगी। गाँव में एक लड़की पन्द्रह-सोलह साल तक स्कूल जाती है, उसके बाद कहाँ जाती है? ससुराल। वहाँ उसको क्या करना पड़ता है? तुम सब जानते हो। क्या इस शिक्षा प्रणाली ने उस लड़की को इतनी शिक्षा दी है कि वह अपने ससुराल में व्यावहारिक जीवन बिता सके? अकबर कब पैदा हुआ और औरंगजेब कब मरा, क्या उसको वहाँ यह काम आयेगा? नहीं। परिवर्तन होना चाहिये।

बच्चा बीमार हो गया, देवर को पीलिया हो गया, ससुर जी बीमार हैं, तब किस प्रकार का खाना, किस प्रकार की प्राथमिक देखभाल हो? गाय बीमार है, बकरी बीमार है, क्या करना चाहिए? इस प्रकार की शिक्षा उसे मिली है क्या? हाँ, अक्षर-ज्ञान और थोड़ा-सा गणित तो जरूरी है, यहाँ तक मानने के लिये हम तैयार हैं। आगे की जितनी भी शिक्षा है, जिसमें रवीन्द्रनाथ ठाकुर, सुमित्रानन्दन पंत और सुभद्रा देवी चौहान के बारे में पढ़ा रहे हैं वह अनावश्यक है। हाँ, उसको पढ़ने वाले लोग भी हैं, जो पटना में रहते हैं, वहाँ इसकी आवश्यकता है।

गाँव के लोगों की आवश्यकता है ग्राम शिक्षा, वही जो गाँधी जी ने बुनियादी शिक्षा के रूप में शुरू की थी। आप लोगों को याद है या नहीं, मैं नहीं जानता, मगर गाँधीजी ने बुनियादी शिक्षा के नाम से एक शिक्षा पद्धति का विकास करवाया था। विनोबा जी उसमें शामिल थे, जय प्रकाश बाबू भी थे, कई और लोग भी उसमें शामिल थे। इन शिक्षा-केन्द्रों में मैं शुरू-शुरू में जाया करता था। अब तो वे प्राय: खत्म हो गये हैं। वहाँ जो लड़के पढ़ते थे, उन्हें क्या पढ़ाया जाता था? सबसे पहले गाँव में क्या व्यवसाय होता है? खेती, पशुपालन, बागवानी, साग-भाजी उगाना, ये गाँव के व्यवसाय हैं। हिन्दुस्तान का मुख्य व्यवसाय, हिन्दुस्तान के आर्थिक जीवन का आधार केवल कृषि है। यहाँ साठ से सत्तर प्रतिशत लोग केवल कृषि के बल पर जीवित रहते हैं। उनका दूसरा आधार नहीं है। लेकिन यहाँ की शासन व्यवस्था में कृषि को उतना महत्व नहीं दिया जाता, जितना उद्योग धंधों, सेना-सुरक्षा, खेलकूद और रंगमंच को दिया जाता है।

दूसरी शिक्षा है, उच्च शिक्षा। वह भी अपनी जगह जरूरी है। पर 80 प्रतिशत के नीचे नम्बर हों तो उच्च शिक्षा में नहीं जाना, नहीं तो छँट जाओगे। आजकल लोग 40-50 प्रतिशत के साथ भी उच्च शिक्षा में चले जाते हैं, इससे बेकारी की समस्या ही बढ़ती है, और कुछ नहीं होता। विदेश में लोग पहले अपना पैर जमा लेते हैं, उसके बाद आगे पढ़ते हैं।

कई लोग सूर्य को भगवान के रूप में पूजते हैं। इसका कोई आधार है क्या?

जो सूर्य तुमको दिखता है, सृष्टि में ऐसे करोड़ों सूर्य हैं। वैज्ञानिक भी इस बात को मानते हैं। यह सूर्य हमारे परिवार का है। हमारा परिवार क्या है? चन्द्रमा,



पृथ्वी, नव ग्रह, आदि। ये इसके चारों ओर घूमते हैं। फिर दूसरा सूर्य है, उसका परिवार है। फिर तीसरा सूर्य है, उसका भी परिवार है। इस प्रकार से लाखों-करोड़ों, अनन्त कोटि सूर्य हैं और सबका अपना एक-एक परिवार है। और ये जितने भी सूर्य हैं, इन सबके बीच में एक महासूर्य है, जिसके चारों ओर सभी सौर परिवार घूमते हैं। यह एक ऐसा बृहत् विषय है, जिसके बारे में कहते नहीं बनता, और सोचना भी बहुत कठिन है। अचिन्त्य, अलौकिक, अद्भुत विषय है यह।

किसी भी विषय या वस्तु को दो दृष्टियों से देखा जा सकता है, पहली वैज्ञानिक और दूसरी आध्यात्मिक। आध्यात्मिक दृष्टिकोण सूर्य को सात घोड़ों वाले रथारूढ देवता के रूप में देखता है, जिसकी दो पत्नियाँ हैं, संज्ञा और छाया। आध्यात्मिक दृष्टि में साहित्य है, काव्य है, भावना है। दूसरी दृष्टि है, वैज्ञानिक। वैज्ञानिक दृष्टि सूर्य को हाइड्रोजन का भण्डार मानती है, जिसमें से ताप और प्रकाश निकलता है जो सुदूर शनि ग्रह तक पहुँचता है। और इसमें जो गुरुत्वाकर्षण शक्ति है, उसके बल पर वह मानो सबको अपने में समेटे हुए है। कोई इधर से उधर नहीं हो पाता है। अब इस दृष्टि में क्या है? यह दृष्टि पदार्थवाद की भावना है, पदार्थवाद का ज्ञान है। हम लोगों के ऋषि-मुनियों ने आध्यात्मिक और भौतिक, दोनों दृष्टियों से सूर्य को देखा। आध्यात्मिक दृष्टि से देखा तो सूर्य को साक्षात् ब्रह्म माना और भौतिक दृष्टि से देखा तो सूर्य को सौरमण्डल का केन्द्र माना और इसे 12 राशियों में बाँटा। इन 12 राशियों में सूर्य के अलग-अलग नाम बता दिये जैसे, सूर्य, मित्र, रवि, भास्कर, अर्क, सविता, हिरण्यगर्भ, आदि। जब पृथ्वी सूर्य का 365 दिन में एक चक्कर मारती है, तब यह एक वर्ष हुआ जिसे हम लोग कहते हैं, सौर वर्ष।

पर हमारे यहाँ और अरब देशों में भी पृथ्वी और चन्द्रमा के सम्बन्धों को लेकर भी साल गिना जाता है। अभी तो हमने सूर्य के सम्बन्ध में कहा कि 365 दिन का एक वर्ष हुआ। एक वर्ष में दो अयन और बारह मास हुए, जिनमें

कभी घट-जोड़ नहीं होता। 14 जनवरी पर बराबर मकर संक्रान्ति रहेगी, और 16 जुलाई को बराबर कर्क संक्रान्ति। उसमें उन्नीस-बीस नहीं होता क्योंकि वह सूर्य से सम्बन्धित है। हमारे यहाँ कई पर्व सूर्य से सम्बन्धित हैं पर ज्यादा पर्व ऐसे हैं जो चन्द्रमा और पृथ्वी से सम्बन्धित हैं। चन्द्रमा हर महीने पृथ्वी का चक्कर लगाता है और हर महीने को दो पक्ष में बाँटा जाता है, शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष। इस क्रम में कभी कोई पक्ष 14 दिन का होता है, तो कभी 15 दिन का। कभी-कभी तिथि क्षय हो जाती है। और कुल मिलाकर साल में 10 दिन का फर्क पड़ जाता है, सौर वर्ष की तुलना में। इस साल अगहन शुक्ल पंचमी कौन-से दिन है? 4 दिसम्बर को है। पिछले साल सीताजी का विवाह 14 दिसम्बर को हुआ था, इस बार 4 दिसम्बर को होगा। इस बार सर्दी भी जल्दी होगी।

हमारे यहाँ जितने भी पर्व और त्योहार हैं, चाहे दीवाली हो, शिवरात्रि हो, होली हो या नवरात्रि, उनमें से अधिकांश चन्द्रमा और पृथ्वी के सम्बन्ध के अनुसार निर्धारित होते हैं। इस देश में चन्द्रमा मुख्य इसलिये माना जाता है कि यद्यपि सूर्य जीवन का दाता है, मगर चन्द्रमा वनस्पतियों का राजा है। और हम लोग तो कृषक हैं ही। हम बाँस कब काटते हैं, शुक्ल पक्ष में? नहीं, शुक्ल पक्ष में कभी बाँस नहीं काटा जायेगा। बाँस कृष्ण पक्ष में काटते हैं, क्योंकि कृष्ण पक्ष में वनस्पतियों में जो जीवन होता है, वह सोने लगता है, कम क्रियाशील होता है। माने आराम करता है। थोड़ी देर के लिये ऐसा मानो कि वह उनकी रात हुई। और जब शुक्ल पक्ष होता है तब वनस्पतियों में जितने जीवाणु होते हैं, वे सब जाग जाते हैं। वनस्पति जगत् पर चन्द्रमा का गहन असर पड़ता है। यहाँ वनस्पतियों से सम्बन्धित जितने भी त्योहार हैं, वे चन्द्रमा को आधार मानकर मनाये जाते हैं ताकि किसानों को चन्द्रमा की स्थिति का पता रहे। किसान नक्षत्र को देखकर बीज बोते हैं और नक्षत्र का सम्बन्ध चन्द्रमा से है।

सूर्य आदि को देवता के रूप में मानना मनुष्य की अद्‌भुत उपलब्धि है। मनुष्य ने किसी प्राकृतिक घटना, किसी प्राकृतिक प्रक्रिया को एक प्रतीक का रूप दे दिया। सूर्य का रथ तो है नहीं, यह तो हम जानते ही हैं। इसमें किसी भी प्रकार के सन्देह की गुंजाइश नहीं। मगर उड़ीसा में एक जगह है कोणार्क जहाँ विशाल सूर्य मन्दिर है। वहाँ एक जगह सूर्य के रथ के 24 पहिये बने हैं। ये 24 घण्टों के प्रतीक हैं। कहने का मतलब यह कि मनुष्य के अन्दर जितनी भी कल्पनाएँ हैं, वे यथार्थ के आधार पर ही हैं। इस बात को हमेशा याद रखो

कि वस्तु जैसी दिखती है, वैसे होती नहीं है। यह सब दार्शनिकों ने कहा है, आजकल के वैज्ञानिक भी बोल रहे हैं। संसार, जैसा तुमको दिखता है, केवल वैसा नहीं है। हो सकता है सूर्य जैसा तुमको दिखता है, वैसा ही न हो। हो सकता है कि ऋषि-मुनियों ने सूर्य की जैसी कल्पना की थी, वह वैसा ही हो।

किसी भी विषय के बारे में अन्तिम बात तो नहीं कही जा सकती। अब सूर्य में हमें कोई रथ नहीं दिखता, इसलिये हम कह देते हैं रथ नहीं है। चन्द्रमा में हमें कोई देवी-देवता नहीं दिखते, इसलिये हम चन्द्रमा को देवता नहीं मानते। बृहस्पति और शुक्र को हम कोई ऋषि-मुनि नहीं, ग्रह समझते हैं। वह अपनी जगह पर ठीक है, परन्तु मनुष्य की जो भावना होती है, वह भी तो एक दृष्टि है न? केवल आँखों से ही सब कुछ नहीं दिखता। भावना से जो तुम्हें दिखता है, उसकी भी तो कम-से-कम तुलना कर लो। अगर भावना की दृष्टि से नहीं देखोगे तो तुम्हारी माँ, तुम्हारी माँ नहीं। तुम्हारा भाई, तुम्हारा भाई नहीं। भावना की वजह से वह तुम्हारी माँ है, वह तुम्हारा भाई है, वह तुम्हारी पुत्री है, वह तुम्हारे गुरुजी हैं।

जगत् को देखने के लिए चर्मचक्षु एक दृष्टि है और भावना दूसरी दृष्टि। एक दृष्टि और होती है, आत्म दृष्टि, पर अभी उसकी बात नहीं कर रहा हूँ। बात उठी थी कि सूर्य भगवान हैं या नहीं, और उसका संक्षिप्त उत्तर इतना ही कि वह तो दृष्टि की बात है। किसी ने भावना से देखा तो भगवान दिखाई दिया, उसका बेकार में खण्डन कर रहे हो। किसी ने आँख से देखा, वैज्ञानिक उपकरणों से देखा तो उनको हाइड्रोजन का गोला दिखाई दिया। वह भी ठीक है। रामचरितमानस में कहा भी गया है न, *जिन्ह कें रही भावना जैसी, प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी।*

हमारे यहाँ वेदांत में दृष्टि-सृष्टि शब्द आता है। दृष्टि और सृष्टि का परस्पर सम्बन्ध है। आखिर सृष्टि की व्याख्या क्या है? दृष्टि को जो दिखाई दे, यही तो व्याख्या है न? तुम्हें वह लड़की माँ की तरह दिखाई दी, या तुम्हें वह लड़की बेटी की तरह दिखाई दी, बस वही व्याख्या है। दृष्टि ही सृष्टि की व्याख्या करती है। और दृष्टि तीन तरह की होती है–भौतिक दृष्टि, भावनात्मक दृष्टि, और दिव्य दृष्टि। इन तीन दृष्टियों से एक ही वस्तु तीन तरह से दिखाई दे रही है, बताओ सच क्या है। तीनों को सच मान लो तो अच्छा है। बेकार के फेरे में काहे पड़ते हो।

–27 अक्टूबर, 1997



अध्याय 16

हम लोगों के बचपन में, आज से पैंसठ-सत्तर साल पहले पैसे की कोई कीमत नहीं थी। आदमी पैसे के लिये काम नहीं करता था। आबादी कम थी, आज की एक तिहाई थी। छोटे-छोटे गाँव थे, छोटे-छोटे शहर थे। चोरी वगैरह नहीं होती थी। घरों के साधारण दरवाजे रहते थे, कुछ लोग तो ताला भी नहीं लगाते थे। हम लोगों का गाँव अल्मोड़ा से पाँच-छ: मील की दूरी पर था। अल्मोड़ा की आबादी पाँच हजार थी। वहाँ पहुँचने में 5-6 घण्टे लगते थे। एक पहाड़ उतरो, फिर नदी पार करो, फिर दूसरा पहाड़ चढ़ो, उतरो। और पहाड़ भी छोटे-मोटे नहीं, ऊँचे-ऊँचे हैं।

हम लोगों के पास करीब एक हजार एकड़ खेती की जमीन और डेढ़ हजार एकड़ जंगल की जमीन थी। जंगलों में हिरण और बन्दर थे, जो खेती खाने आ जाते थे। बन्दर दिन में और हिरण शाम में। हिरण तो 400-500 की टोली में आते थे। चिड़िया एक साथ दो-तीन हजार आती थीं। अगर उनको छोड़ दिया जाय, तो खेती एक ही दिन में खत्म। हम लोगों के गाँव में खेत के लिये रखवाले रखे जाते थे। वे रखवाले जानते थे कि क्या करना है। उन लोगों को साल में एक बार सोने की चवन्नी दी जाती थी, यह उनकी तनख्वाह थी। और उसको वे खर्च नहीं करते थे। जब भी नौ इकट्‌ठी होती थीं, उनकी औरतें उसकी माला बना कर पहनती थीं। जब हम लोगों के यहाँ खेती हो जाती थी, अनाज भण्डार में नहीं जाता था। दीवाली के समय नाई, बढ़ई, लुहार, चमार, ब्राह्मण, दर्जी, सब लोग आते थे। सब का एक निश्चित हिस्सा रहता था। वे लोग अपना हिस्सा ले जाते थे। उसके बाद ही अनाज भण्डार में जा सकता था।

ब्राह्मणों का गाँव अलग था और ठाकुरों का अलग। ठाकुर लोग बहुत मालदार होते थे। वे लड़ाई में जाते थे, उनको जागीर मिलती थी, पैसा मिलता था, तलवार-घोड़ा, सब मिलता था। और खेती की जमीन मिलती थी। पर हम लोगों के यहाँ पैसा नाम की चीज केवल रखवाले को दी जाती थी। बाकी किसी को नगद नहीं मिलता था। केवल अनाज का हिस्सा देते थे। और जब कुर्ता सिलवाना हुआ, कपड़ा दे दो, हल बनाना हुआ, लकड़ी दे दो, वे सब बनाकर दे देते थे। लड़का पैदा हुआ, पण्डितजी को बुला लो। सब लोगों का यही हिसाब था।

हमारी जो हजार एकड़ की जमीन थी, उसमें हल हम नहीं जोतते थे। किसी को दस एकड़, किसी को चार एकड़, ऐसा करके अलग-अलग व्यक्ति को दे देते थे। हम जमींदार थे, वह हमारी प्रजा थी, रैयत थी। वह हमें लगान देती थी। उन दिनों लगान दो-चार पैसा होता था। यह नया पैसा नहीं, हम लोगों के समय 64 पैसे का एक रुपया होता था। एक पैसे में तीन पाई होती थी। सब से पहले पाई, फिर पैसा, आना और रुपया। रुपये का नोट नहीं होता था, चाँदी का बड़ा, भारी सिक्का होता था। उससे ऊपर कुछ नहीं था। अठन्नी भी चाँदी की होती थी, और चवन्नी भी। शुद्ध चाँदी की। औरतें उनकी माला बना-बना कर पहनती थीं। वह उनका आभूषण हो जाता था।

सर्दियों में हम लोगों के यहाँ बहुत ठण्ड होती है, बर्फ पड़ने लग जाती है। जैसे ही दीवाली हुई, अनाज कटा और भण्डार में रख दिया। फिर लोग अपना गाय-घोड़ा लेकर वहाँ से नीचे आ जाते हैं हल्द्वानी, काठगोदाम या बरेली में। वहाँ भी उनकी खेती की जमीन होती है। उसको देश कहते हैं। अल्मोड़ा वगैरह को पहाड़ और उसको देश कहते हैं। पहाड़ की खेती में दीवाली के बाद सब अनाज वगैरह रखकर ताला लग जाता है। वे लोग बेचने के लिये कुछ साथ में ले जाते हैं। वहाँ सबके पास घोड़ा या टट्टू होता है। उसपर सामान लादकर देश चले जाते हैं। देश जाकर कोई अपनी खेती करता है, कोई दुकान खोलता है, कोई पकौड़ी बेचता है, तो कोई किसी के यहाँ नौकरी करता है। वैशाख महीने में अक्षय तृतीया के बाद वे लोग वापस आ जाते हैं।

उन दिनों हमारे पिताजी को 18 रुपये महीना तनख्वाह मिलती थी, स्कूल की फीस थी एक आना। दो-तीन आना में स्कूल की किताब मिलती थी, एक पैसे में पेन्सिल मिलती थी। उन दिनों पैसे के लिये आदमी कुछ नहीं करता

था। तब चोरी भी नहीं होती थी। चोरी का माल लेकर जाए कहाँ? उस जमाने में मोटर-गाड़ी, सड़कें, बिजली कहीं नहीं थी। घोड़े से या अपने कन्धों पर माल लेकर इधर-से-उधर जाते थे। यहाँ भी ऐसा ही रहा। यह जगह रिखिया, जहाँ आप बैठे हैं, सन् 1956 में यहाँ पूरा जंगल था। हम तो सन् 1956 में यहाँ आये हैं, घूमे हैं, सब जंगल ही जंगल, पेड़ ही पेड़ थे। यहाँ हर्रे के पेड़ बहुत थे, अब तो सब कट चुके हैं।

जब पाश्चात्य सभ्यता आयी, यह लायी पैसा, नगद नारायण। और आज का आदमी नगद नारायण के ही पीछे पड़ा है। जिस आदमी को उस समय अठारह रुपया महीना तनख्वाह मिलती थी, आज उसी नौकरी में साढ़े तीन हजार रुपया तनख्वाह मिलती है, फिर भी वह कहता है कि घर-गृहस्थी नहीं चलती। अब समय बदल गया है, और समय के साथ आदमी को भी बदलना पड़ता है। मगर मजे की बात यह हो गई है कि इंग्लैंड, अमरीका और यूरोप जैसे पाश्चात्य देशों में अब जेब में रुपये रखने की जरूरत नहीं। वहाँ सब क्रेडिट कार्ड पर चलता है। बस अपना क्रेडिट कार्ड दिखा दिया और सामान या टिकट ले लिया।

क्रेडिट कार्ड इस्तेमाल करते समय पैसा जाता हुआ नहीं दिखता। इससे लोगों का खर्चा नहीं बढ़ जाता क्या?

एक बात समझ लो कि जिस देश में लोग ज्यादा खर्चा करते हैं, उस देश में लोगों की आमदनी ज्यादा होती है। जिस देश में लोग कंजूसी से खर्चा करते हैं, उस देश में आमदनी भी कम होती है। यही तो व्यापार का सिद्धांत है। खरीददारी ज्यादा करोगे, तो आमदनी ज्यादा होगी। हिन्दुस्तान में आमदनी कम क्यों है? क्योंकि लोग माल कम खरीदते हैं, पैसा बचाकर सोने के गहने बना देते हैं, और सोने के गहने बनाकर बैंक में रख देते हैं। उसमें किसी का फायदा नहीं है। पहले के जमाने में ठीक था। मगर आज के जमाने में घर में जो दस-पाँच तोला सोना रखते हैं, वह बेमतलब है। अगर तुम उस दस तोले सोने के बदले बैंक में पचास हजार रुपये रखोगे तो चार-पाँच साल में एक लाख रुपया हो जाता है। तुमको वहाँ पचास हजार की आमदनी होती है। पर तुम सोने को घर में रखते हो तो कोई आमदनी नहीं होती। हिन्दुस्तान के हर घर में लोग सोना रखते हैं। औरतें तो पढ़ी-लिखी हैं नहीं, बैंक तो जा नहीं सकतीं, तो सोने की चूड़ी, अँगूठी वगैरह बनाकर छुपाकर रखती हैं।

अगर तुम्हारे पास दो हजार हैं और तुम उसे खर्च करते हो तो किसी की दो हजार आमदनी हो जाती है। अगर तुम दो सौ खर्च करोगे, तो दूसरी की दो सौ की आमदनी होगी। जितना खर्चा होता है, समाज को उतनी ही आमदनी होती है। और जितनी आदमनी होती है, लोगों को उतना ही फायदा होता है। वह फिर दूसरों को काम दे सकता है। ये जितने भी अंग्रेज, जर्मन, फ्रेंच या अमरीकी लोग हैं, ये अपने पास ज्यादा पैसा नहीं रखते। बैंक से पैसा लेकर खर्च कर देते हैं। दुनिया में घूमते-घूमते कहाँ-कहाँ पहुँच जाते हैं। राजस्थान में जहाँ पेड़-पौधे ही नहीं, दस-बीस मील तक कुछ नहीं, केवल रेत ही रेत है, जहाँ घोड़ा नहीं चल सकता, गाड़ी नहीं जा सकती, केवल ऊँट जा सकता है, ये वहाँ भी पहुँच गये हैं। यही वजह है कि ये लोग इतने धनवान् हैं और हिन्दुस्तान के लोग इतने गरीब।

यह भी हो सकता है कि हिन्दुस्तान के लोगों को थोड़ा पैसा मिलने पर ही सन्तोष हो जाता है, इसलिये वे ज्यादा काम नहीं करना चाहते?

नहीं, ऐसी बात नहीं। क्या हिन्दुस्तान के लोगों को पैसा नहीं चाहिये? यह सन्तोष नहीं, मजबूरी है। बिहार, बंगाल, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, राजस्थान, कहीं भी जाओ, सब जगह यही हाल है। लोग संघर्ष नहीं करते, जोखिम नहीं उठाते। आदमी को आगे बढ़ने के लिए जोखिम लेना पड़ता है। और वह जोखिम कम उम्र में लिया जाता है, ज्यादा उम्र में नहीं।

जो देश बहुत गरीब हैं, वहाँ लोग जीविका कैसे चलाते हैं?

बहुत-से देश हैं, जहाँ जानवरों को खाकर जीते हैं। कई देशों में फूल-पत्ता खाकर जीवित रहते हैं। वेस्ट-इण्डीज़ की तरफ कई छोटे-छोटे द्वीप हैं, वहाँ अधिकतर वेश्यावृत्ति होती है। अधिकांश पर्यटक वेश्याओं के पास जाते हैं। उनके जीवन में बस यही है, खाओ, पियो और मौज उड़ाओ। उनको भगवान, सत्संग और ज्ञान से कोई मतलब नहीं है। अनेकों देश ऐसे हैं जहाँ पूजा-पर्व कुछ नहीं है। उनका काम बस भोग भोगना है। इसलिये वहाँ कोई भी चीज गलत नहीं मानी जाती।

संसार में प्राय: बहुत-सी ऐसी जातियाँ हैं, जिनके जीवन का लक्ष्य सिर्फ खाना, पीना और मौज उड़ाना है। ईश्वर के बारे में सोचना या कीर्तन-

भजन करना, यह सब उनकी समझ में नहीं आता। दुनिया को छोड़ो, अभी हिन्दुस्तान को देख लो। हिन्दुस्तान तो बहुत आध्यात्मिक देश है मगर यहाँ रेडियो, टीवी या शादी में जितने भी गाने बजते हैं, नब्बे प्रतिशत शृंगार प्रधान गाने होते हैं। लोगों की यही प्रवृति हो गई है, तभी तो बजते हैं। नवरात्रि जैसे धार्मिक उत्सवों के समय भी शृंगार के गाने बजते हैं। कोई विरोध नहीं करता, किसी को ऐतराज नहीं। भाई-बहन, बाप-बेटी साथ में बैठे हैं, और वहाँ फिल्मी गाने चल रहे हैं। सभी फिल्मों में क्या है? मार-पीट, नाच-गाना। यह बतलाता है कि हम लोगों के विचार किस तरफ जा रहे हैं।

आज की दुनिया में सारे के सारे लोग आज और कल के लिये जिन्दा रहते हैं, अगला जन्म कैसा होगा, कौन सोचता है। जैसे वेस्ट-इण्डीज़ या सिसिली या स्पेन के द्वीपों में जो पर्यटक लोग जाते हैं, वे दिनभर मौज करते हैं, उनको कुछ काम ही नहीं है। होटल में मुर्गी और खरगोश भूनकर खाते रहते हैं, शराब पीते रहते हैं, स्विमिंग पूल में पड़े रहते हैं। यह जो प्रवृत्ति है, वह आज दुनिया में बढ़ती जा रही है।

आधुनिक भारत की लड़कियाँ

आजकल लड़कियाँ स्कूल में जाने लगी हैं, नम्बर भी अच्छे ला रही हैं। पहले तो लड़कियों के लिये एक ही भविष्य था, शादी। अब लड़कियों के लिये एक और भविष्य हो गया है, पढ़ाई और साथ ही नौकरी। अब लड़कियाँ नौकरी भी कर सकती हैं। केरल भारत का सबसे शिक्षित राज्य है। वहाँ हर एक आदमी और हर एक औरत शिक्षित है। केरल, जिसको पहले मलाबार कहते थे, वही देश है जहाँ श्री राम सीता जी को खोजते-खोजते पहुँचे थे। जब सीता जी का अपहरण हुआ था तब भगवान श्री राम उन्हें खोजते-खोजते शबरी के आश्रम में गये थे। केरल में एक पहाड़ है, उसका नाम है शबरी मलय। मलय माने पहाड़। वहाँ लोग पूजा के लिये जाते हैं।

केरल में हिन्दू, ईसाई और मुसलमान, तीनों धर्म के लोग रहते हैं। वहाँ की लड़कियाँ बहुत तेज हैं। हिन्दुस्तान में तुम किसी भी अस्पताल में चले जाओ, तुमको केरल की नर्स मिलेगी। दुबली, पतली, साड़ी पहने हुए, दो-तीन हजार रुपये महीना उनको मिलता है। उसी में वे अपना खाना बनाती हैं, खर्चा चलाती हैं। साल में एक बार वे अपने माता-पिता से मिलने के लिये घर जाती हैं। परिवार प्रथा बहुत अच्छी है वहाँ की। उनका चाल-चलन और रहन-

सहन बहुत अच्छा है, पूजा-पाठ, धर्म-कर्म, सात्त्विक जीवन। वे 25 साल के बाद ही विवाह करती हैं, उससे पहले नहीं।

हिन्दुस्तान की सबसे दमदार लड़कियाँ केरल की हैं। केरल के बाद आता है पंजाब। पंजाब की लड़कियाँ भी बहुत दमदार हैं। बहुत अच्छे-अच्छे पदों पर हैं। एक महिला पुलिस अफसर है, किरण बेदी, वह पंजाब की है। वह हिन्दुस्तान की नामी पुलिस अफसर है। उसको दुनियाभर में बड़े-बड़े पुरस्कार मिले हैं। ऐसे पुरस्कार जो साधारण आदमी को नहीं मिलते। वह एकदम मर्द की तरह बोलती है। दिल्ली के तिहाड़ जेल में दो-चार हजार कैदी रहते हैं, बड़े-बड़े नामी कैदी वहाँ रहते हैं। जब वह तिहाड़ जेल की इंसपेक्टर जनरल थी तो उसने उस जेल में आसन, प्राणायाम, सूर्य नमस्कार, ध्यान और प्रार्थना की व्यवस्था बना दी। सबको लिखना-पढ़ना सिखाया, बहुत सुधार किया।

कहने का मतलब यह कि लड़कियों के सामने कुछ मुश्किल नहीं है, अगर उन्हें अपने पर विश्वास हो, और माता-पिता का विश्वास भी उन्हें प्राप्त हो, वे समझदार हों, उनमें विवेक हो, वे अच्छे और गलत रास्ते को समझें। हर लड़की और लड़के को यह जानना चाहिये कि कौन-सा रास्ता गलत है और कौन-सा रास्ता सही। यह जानना कठिन तो है नहीं। जिस रास्ते पर जाने से पतन होता है, गिरावट होती है, चोट लगती है, वह गलत रास्ता है। जिस रास्ते से जाने में उन्नति होती है, प्रशंसा होती है, सुख मिलता है, वह अच्छा रास्ता है। इसी को विवेक कहते हैं, अच्छे और बुरे का भेद जानना। जब तुम चावल साफ करते हो, तब किस चीज को बाहर फेंकते हो, कंकड़ या चावल? अगर तुम चावल को फेंक दो और कीड़ा-कंकड़ को रख लो तो तुम्हें पागल बोलेंगे न? कंकड़ और चावल में जो भेद देखा जाता है, उसको कहते हैं विवेक। लड़कों में विवेक नहीं भी होगा, तो चलेगा। मगर लड़की में विवेक होना बहुत जरूरी है। अगर उसमें विवेक नहीं होगा तो वह मिट जायेगी।

पति और पत्नी परिवार रूपी बैलगाड़ी के दो पहिये हैं, एक घर चलाता है, दूसरा बाहरी काम-काज। पढ़े-लिखे परिवार में यह जरूरी नहीं कि सब नौकरी करें, मगर जरूरत आ पड़े तो? अपनी लड़की को, अपनी पत्नी को दुनिया की सब चीजों की जानकारी होनी चाहिये, ताकि उस पर कोई अन्याय न हो, कोई अत्याचार न हो। जब लड़की विधवा हो जाती है, तो उसके लिए कितना मुश्किल हो जाता है। देवर-जेठ उसको हटा देते हैं, मायके तो जा नहीं सकती, उसको गलत रास्ते में जाना पड़ता है। अगर वह पढ़ी-लिखी हो, तो

कोई-न-कोई नौकरी कर लेगी। समाज शुद्ध रहेगा, उसे भी सुख मिलेगा। इसलिये कुछ पुरानी चीजें, जो उस वक्त के लिये सही थीं, मगर अब ठीक नहीं हैं, उन्हें छोड़ना होगा।

लड़कियों को घर की चहार-दीवारी में रखना, पर्दा-घूँघट में ढकना, अनपढ़-अशिक्षित रखना, यह हमारे धर्म का विचार नहीं है। यह विचारधारा इस्लामी संस्कृति के साथ यहाँ आई और हमारे ऊपर लादी गई। इस्लामी संस्कृति रेगिस्तान में जन्मी और उसके बहुत-से रीति-रिवाज वहाँ की परिस्थितियों की वजह से पैदा हुए। पर हमारी संस्कृति ऐसी नहीं है। हमारे यहाँ मदालसा, गार्गी, सुलभा, मैत्रेयी, अनुसूया–ये कितनी पढ़ी-लिखी थीं। राजदरबार में इन लोगों का वाद-विवाद होता था। आखिर जिस चण्डी देवी की तुम पूजा करते हो, वह गँवार थी क्या? जो तलवार-भाला चला सकती थी, राक्षसों से लड़ सकती थी, वह क्या गँवार लड़की होगी? नहीं, वह शक्तिशाली थी, और शक्तिशाली व्यक्ति हमेशा पढ़ा-लिखा होता है।

अब समय बदल गया है, पुराना राज नहीं है। हमारे राज में लड़कियाँ खुले सर घूम सकती हैं, साड़ी भी पहन सकती हैं, सलवार-कमीज़ भी पहन सकती हैं, स्कर्ट भी पहन सकती हैं। छोटे बाल भी रख सकती हैं और बड़े बाल भी। गाड़ी भी चला सकती हैं और हवाई जहाज भी। सब कुछ कर सकती हैं। उनको केवल एक बात का ख्याल रखना है कि धर्म और अधर्म का रास्ता जानें, सत्य और असत्य को जानें। अब तुम बाल छोटा रखो या बड़ा, जीन्स पहनो या सलवार, उससे तुम्हारा धर्म थोड़े ही जाता है। धर्म और अधर्म आचरण में होता है। व्यक्ति का केवल आचरण और रहन-सहन ठीक होना चाहिए। इतना ही जानने की जरूरत है।

अब लड़कियाँ सब तरह की प्रतिस्पर्धाओं में जा सकती हैं। सरकार, समाज और साधु-महात्मा, सभी कहते हैं कि लड़कियों को आगे बढ़ाओ, डॉक्टरी-वकालत में भेजो, व्याख्याता-कुलपति बनाओ, व्यवसाय में भेजो, नेता बनाओ। अब तो औरतें पुलिस और सेना में आ गई हैं, हवाई जहाज चलाती हैं। स्वामी सत्संगी हवाई जहाज में ही तो काम करती थी। देश-विदेश जाती थी, बाहर के मुल्कों में छः-छः महीने रहती थी। वह बहुत पढ़ी-लिखी है, सब जगह घूमी हुई है। दुनिया का कोई देश ऐसा नहीं, जो उसने नहीं देखा। यह सब करने में लड़कियों को शर्म-लाज या संकोच नहीं करना चाहिए। शर्म तो बुरे काम में आनी चाहिये, अच्छे काम में शर्म किस चीज

की? इसलिये भगवान से प्रार्थना करो कि हमें शक्ति दो, हमें बुद्धि दो और हमें मौका दो।

इतिहास में सबसे पहले कौन-सी स्त्री महान् बनी थी?

आधुनिक इतिहास में झांसी की रानी, महारानी लक्ष्मीबाई महान् बनी। और उनके पहले इन्दौर की मराठी महारानी, अहिल्याबाई होलकर। वे बहुत प्रबल महारानी थीं। हिन्दुस्तान में जितने भी मन्दिर मुसलमानों ने तोड़े थे, उन सबका उद्धार कराया। काशी विश्वनाथ जैसे मन्दिरों में सोना-चाँदी दिया, साधु-महात्माओं और ब्राह्मणों की सेवा की। अहिल्याबाई होलकर बहुत महान् मानी जाती थीं। फिर इतिहास में और पीछे जाओ तो शिवाजी की माँ, जीजाबाई का नाम आता है। वे अपने बेटे को रोज घुड़सवारी सिखाती थीं, अस्त्र-शस्त्र चलाना सिखलाती थीं, ताकि वह हिन्दुस्तान को मुगलों के अधिकार से बचा सके।

इतिहास में सबसे पहले नाम आता है आम्रपाली का, जो आज से दो हजार पाँच सौ साल पहले, भगवान बुद्ध के समय थी। भगवान बुद्ध यहाँ बिहार में मुंगेर, दरभंगा, समस्तीपुर, राजगीर, श्रावस्ती, मुजफ्फरपुर और वैशाली जैसे स्थानों में घूमते रहते थे। उस वक्त गंगा के उस पार एक बहुत बड़ा गणतंत्र राज्य था, जिसे वैशाली कहते थे। वहाँ जो राजनर्तकी थी उसका नाम था आम्रपाली। उन दिनों जो राजनर्तकी होती थी, उसका राज-सभा में बहुत सम्मान होता था। आम्रपाली इतिहास में बहुत प्रसिद्ध मानी जाती है।

फिर इतिहास के बाहर पौराणिक नामों में आते हो तो द्रौपदी है, कुन्ती है, उसके पहले सीता जी हैं। सीता जी तो बहुत प्राचीन हैं। आज तो हम लोगों के यहाँ घर-घर में उन्हें देवी के रूप में पूजते हैं, सीता माता के रूप में पूजते हैं। वे मिथिला की रहने वाली थीं, राजा जनक की पोष्य पुत्री थीं। माने उनकी अपनी स्त्री से पैदा नहीं हुई थीं। सीता का मतलब क्या होता है, मालूम है न? हल के आगे जो लोहा होता है, उसको सीता कहा जाता है। हल चलाते समय मिलीं तो सीता नाम पड़ा। उनके और भी नाम हैं। वे विदेहराज की पुत्री थीं, इसलिये उनको वैदेही भी बोलते हैं। वे मिथिला की रहने वाली थीं, इसलिये उनको मैथिली भी कहते हैं, जनक की पुत्री थीं, इसलिये जानकी या जनकनन्दनी भी कहते हैं। उनके जन्म के बारे में लोग अलग-अलग बातें कहते हैं। मिथिला में एक बार अकाल पड़ा, तो पुरोहितों ने राजा जनक से कहा, महाराज आप हल चलाइये। वे हल चलाने जिस खेत में गये, वहाँ देखा कि एक बच्ची पड़ी हुई

थी। उनकी अपनी सन्तान तो थी नहीं, तो उन्होंने सीता जी का पालन-पोषण करना शुरू कर दिया। छोटी उम्र से ही उनके घर में विचित्र बातें घटने लगीं। सबसे विचित्र बात यह घटी कि जिस शिव-धनुष को लोग मिलकर भी हिला नहीं सकते थे, उस धनुष को उन्होंने बात-बात में सरका दिया!

अब कहानियाँ तो अलग-अलग हैं, कोई कुछ कहता है, कोई कुछ। कुछ लोग तो यह भी कहते हैं कि वे दशरथ की पुत्री थीं। मगर यह सही नहीं है। दशरथ की पुत्री का नाम था शान्ता। चार पुत्रों के अलावा महाराज दशरथ की एक पुत्री भी थी, शान्ता। अयोध्या के बगल में एक राज्य था, जहाँ का राजा था रोमपाद। उस राजा को राजा दशरथ ने अपनी लड़की गोद दे दी। एक बार राजा रोमपाद के राज्य में अकाल पड़ा। तब पण्डितों ने कहा, 'महाराज, यज्ञ के लिये किसी अखण्ड ब्रह्मचारी को लाना पड़ेगा।' उस समय एक ही अखण्ड ब्रह्मचारी थे, श्रृंगि ऋषि। उन्होंने जीवन में किसी औरत को नहीं देखा था। अद्‌भुत बात है न। उनको मालूम ही नहीं था कि औरत नाम की चीज भी होती है। तब श्रृंगि ऋषि को किसी तरह फँसाकर लाया गया, उन्होंने यज्ञ किया और फिर वहाँ बरसात हुई। जब श्रृंगि ऋषि के पिताजी, विभाण्डक वहाँ पहुँचे तब उनसे पूछकर, राजा दशरथ की पुत्री की शादी श्रृंगि ऋषि से करायी गयी।

तो सीता दशरथ की पुत्री नहीं, उनकी बहू थीं, बड़ी बहू। और मिथिला की राजकुमारी थीं। उनके विवाह में तीन चीजें परोसी गयी थीं, दाल, चावल और घी। यह भोजन था उस दिन का, पत्तल और दोने पर। और भोजन के बाद पान। और जब दशरथ जी आ रहे थे, तब जनक जी ने कहाड़ों से भर-भर कर दही और चूड़ा दिया था, उपहार के रूप में–

दधि चिउरा उपहार अपारा। भरि भरि काँवरि चले कहारा॥

दही और चूड़ा, यह मैथिल लोगों का भोजन है। और यह हिन्दुस्तान का सर्वश्रेष्ठ भोजन है। स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत बढ़िया है। दक्षिण भारतीय लोग रसम-चावल लेते हैं, पर वह सब अम्लीय है। बंगाली लोग चावल और मछली का झोल लेते हैं। उन्होंने भी यहाँ से दही और चूड़ा खाना सीखा है। यह मिथिला का भोजन है। और सत्तू पश्चिम बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश का भोजन है। उस क्षेत्र में भोजपुर भी आता है। मगध, भोजपुर, मिथिला और अंगिका, ये यहाँ की चार संस्कृतियाँ हैं। बिहारी नाम की कोई अलग संस्कृति नहीं है।



सीता जी को भगवान विष्णु की शक्ति का अवतार मानते हैं। जब भगवान नारायण ने राम जी के रूप में अवतार लिया, तब लक्ष्मी जी ने उनकी सहचरी बनकर सीता के रूप में अवतार लिया। राम और सीता हमारे यहाँ भगवान और भगवती के रूप में माने जाते हैं। स्त्रियों में सबसे पहले सीता जी का नाम आता है। यह पौराणिक है। मगर आधुनिक युग में तुमने जो पूछा तो आम्रपाली, जीजाबाई, अहिल्याबाई होलकर एवं झांसी की रानी लक्ष्मीबाई का नाम आता है। और हमारे समय की सबसे महान् महिला कौन थी? इन्दिरा गाँधी, एकदम जबरदस्त, शक्तिशाली। बंगलादेश को आजाद करवाकर पाकिस्तान का एक हिस्सा ही काट दिया। वे मानो चण्डी का अवतार थीं।

आज के जमाने में अगर कोई लड़की संन्यासिनी बनना चाहती है, तो बनने दो, क्या फर्क पड़ता है? गृहस्थाश्रम से तो संन्यास अच्छा है। कम-से-कम जनसंख्या तो घटेगी। मगर देखना यह है कि वह हमारे ऊपर भार न बने। हम किसी का भार लेने को तैयार नहीं। कोई यहाँ रहकर उम्मीद करे कि हम उसकी परवरिश करें, यह हमारे बस की बात नहीं। हम कहते हैं कि हम क्या तुम्हारी परवरिश करेंगे, तुम हमारी परवरिश करो। अरे, हमारी उम्र पचहत्तर साल साल की है, अभी हम दूसरों की परवरिश करें या दूसरों की जिम्मेदारी है कि हमारा ख्याल करें। हम संन्यास किसी को भी दे सकते हैं, मगर उसका अपना पैर मजबूत होना चाहिये। उसे विद्यावान् और गुणवान् होना चाहिये, कोई योग्यता होनी चाहिये उसमें। चाहे गाड़ी चला ले, छापाखाना चला ले, रामायण पर प्रवचन करे, किताब लिखे या आसन-प्राणायाम सिखाये, उसमें कोई गुण होना चाहिये। केवल मैट्रिक पास करने से कुछ नहीं होता। इंजीनियर हो, इलेक्ट्रीशियन हो, नर्सिंग कर सकती हो, बढ़ई का काम कर सकती हो, बन्दूक चला सकती हो, माने कोई-न-कोई गुण होना चाहिये संन्यासी में।

– 28 अक्टूबर, 1997



अध्याय 17

संन्यास मार्ग

मनुष्य हमेशा आगे की कम सोचता है, पीछे की ज्यादा। आदमी का भूतकाल से बहुत मजबूत सम्बन्ध रहता है। सुख-दुःख, आशा-निराशा, जन्म-मृत्यु, गरीबी-अमीरी, रोग-बीमारी, उसके दिमाग में यही ज्यादा रहता है। इसको कहते हैं राग। पन्द्रह-बीस साल पहले इतना बड़ा घर था या इतना छोटा घर था, माँ खराब थी या अच्छी थी, बहन मर गई, टी.बी. हो गया, इतने बड़े जमींदार थे, इतनी गाड़ियाँ थीं, यह जो सुख-दुःख आदमी को पहले हो चुका है, वही आदमी के दिमाग में बना रहता है। और बहुत मजबूत रहता है, स्वप्न में भी आता है। राग की परिभाषा, राग की व्याख्या यही है। अगर मन को इन चीजों से हटा दो, तो उसको कहते हैं वैराग्य।

वैराग्य का मतलब भूतकाल के अनुभवों की तृष्णा को हटा देना। भूतकाल सत्य नहीं है, आज सत्य है और आने वाला कल सत्य है। न प्रेम सत्य है, न घृणा, आशा और निराशा। पर आज जो है, वह सत्य है। पेट में आज दर्द हुआ, सत्य है। उसका उपचार करो। कल पेट में दर्द हुआ था, वह आज सत्य नहीं है। राग से मुक्त होना बड़ा मुश्किल है। जो मुक्त हो गया, उसके लिए संन्यास सरल है। नहीं तो संन्यास कठिन है। संन्यास बहुत सरल भी है और बहुत कठिन भी। हर एक की मानसिकता पर अलग-अलग असर पड़ता है। बहुत-से लोगों को अपना जन्मदिन बहुत याद रहता है। उस दिन अगर किसी ने बधाई नहीं दी तो बहुत निराशा होती है। ये छोटी-छोटी चीजें संन्यास में बाधा बनती हैं। बड़ी बाधा हो तो चिन्ता नहीं, पर ये छोटी-छोटी चीजें बाधाएँ बन जाती हैं।

अगर दिल्ली जाना हो तो पहले रेलवे टाइम-टेबल देखना पड़ता है, या किसी से पूछना पड़ता है कि दिल्ली के लिए कौन सी गाड़ी पकड़ें? कितने बजे जाती है? क्या किराया है? यह सब जानकारी पहले चाहिए। उसी तरह अगर आदमी आध्यात्मिक मार्ग में जाना चाहता है, तो उसकी कुछ जानकारी भी तो होनी चाहिए? लोग तो अपने ढंग से सोचते हैं, आध्यात्मिक मार्ग ऐसा होगा, यहाँ से कुण्डलिनी जागेगी और ऊपर चली जाएगी। पर वास्तव में आध्यात्मिक मार्ग क्या है? ऋषि-मुनियों ने आध्यात्मिक मार्ग की क्या व्याख्या की है?

हमारे यहाँ वैदिक धर्म में अध्यात्म मार्ग के बारे में बहुत चिन्तन रहा है। हर एक ने अपनी-अपनी व्याख्या दी है। गीता की व्याख्या अलग है। योग वाशिष्ठ अध्यात्म की अपने ढंग से व्याख्या करता है। उपनिषदों की अपनी अलग व्याख्या है। कुण्डलिनी योग और हठयोग की भी अलग-अलग व्याख्या है। कभी-कभी एक व्याख्या दूसरे से मेल नहीं खाती है। दिल्ली पहुँचना है, कौन-सी गाड़ी पकड़ोगे? देवघर से दिल्ली के लिए एक गाड़ी होगी, बम्बई से दूसरी, मद्रास से तीसरी। दिल्ली जाने वाली गाड़ी तुम्हारे वर्त्तमान स्थान पर निर्भर करती है। उसी प्रकार अध्यात्म की व्याख्या मनुष्य के जन्म के अनुसार होती है। सब के लिए एक व्याख्या नहीं है। तुम्हारा रास्ता अलग है, हमारा रास्ता अलग है। सब एक ही रास्ते से कैसे जा सकते हैं। एक ही रास्ते से तब जायेंगे, जब सब एक ही शहर में रहते हों। मगर सब तो एक शहर के रहने वाले हैं नहीं। किसी में सतोगुण प्रबल है तो किसी में तमोगुण, किसी में लोभ प्रबल है, तो किसी में कामना। एक ही रास्ते से कैसे जायेगा आदमी?

पहले उपनिषदों और गीता जैसे शास्त्रों को पढ़कर देखना पड़ेगा कि कौन-सा रास्ता सही बैठता है। संन्यास रेल की पटरी है, जिस पर ट्रेन चलती है। बिना पटरी के ट्रेन नहीं चलती। मगर पटरी तो देवघर और दिल्ली के बीच में भी है और बम्बई और दिल्ली के बीच भी। पटरी तो सब जगह है। संन्यास मार्ग वही पटरी है। केवल संन्यासी बनने से काम नहीं चलता है, यह भी पता लगाओ कि पटरी पर कौन-सी ट्रेन जाएगी, तुम्हारे लिए कौन-सी ट्रेन उपयुक्त है।

उपनिषदों पर स्वामी शिवानन्द जी और स्वामी चिन्मयानन्द जी जैसे बहुत-से महात्माओं ने लिखा है। अँग्रेजी में जो व्याख्याएँ लिखी हैं, उनका स्तर प्राय: हिन्दी से अच्छा है। गीता पर तो बहुत-सी व्याख्याएँ हैं। स्वामी शिवानन्द

जी, श्री अरविन्द, भक्ति वेदान्त, स्वामी चिन्मयानन्द जी, महात्मा गाँधी और विनोबा भावे जैसे मनीषियों ने गीता की व्याख्या की है। अपनी नौकरी-पेशा करते हुए जो बाकी समय मिले उसमें इन ग्रन्थों का स्वाध्याय करना। कहने का मतलब तुरन्त सब छोड़-छाड़ कर आ गए, यह गलत है। संन्यास तो सबसे सरल चीज है। संन्यास का मतलब बीवी भी छोड़ो, बच्चा भी छोड़ो,यह भी छोड़ो, वह भी छोड़ो, सब छोड़ो। जबकि गृहस्थ जीवन कठिन है, यह भी जोड़ो, वह भी जोड़ो। उसमें बहुत मेहनत लगती है। मगर लोगों को जोड़ने में मजा आता है, छोड़ने में नहीं। तो तुम अपनी नौकरी भी करते रहो, अध्ययन भी करते रहो, छुट्टी में आश्रम आओ और आश्रम आकर कर्मयोग करो। कर्मयोग के बिना योग सधेगा नहीं। कर्मयोग बहुत वैज्ञानिक विधि है। कर्मयोग करने से शरीर और मन में संतुलन आता है।

छुट्टियों में आश्रम भी आना चाहिए, वहाँ सेवा भी करनी चाहिए, सत्संग भी करना चाहिए। फिर घर लौट जाना चाहिए। इसलिए नहीं कि संसार में लौटना है। इसलिए कि संन्यास लेने वाले को जब तक संसार में अपूर्णता नहीं मालूम पड़ेगी, तब तक संन्यास सफल नहीं होगा। जब तक तुम्हें यह नहीं लगे कि संसार अच्छा नहीं है, इसमें बहुत झंझट है, बेकार में सर मारते हैं, शादी करते हैं, बच्चा पैदा करते हैं, फिर रोते हैं, तब तक संन्यास नहीं लेना। संसार में लोग पैसा कमाते हैं, फिर पैसा खर्च करते हैं, खूब खाना खाते हैं, बीमार पड़ जाते हैं, दवाई खाते हैं, रात-दिन रोते हैं। संसार में सुख है ही कितना? हर एक आदमी के पास जाकर देख लो। हम तो पिछले सत्तर साल से घूमते रहे हैं, लोगों को देखते रहे हैं। तब पता चलता है कि कितना सुख है। लोग सुख को प्राप्त करने के लिए दुःख उठाते हैं और हँसने के लिए रोते हैं। हमेशा चिन्ता करते हैं। संन्यास में केवल एक चीज है, इसमें ममता नहीं है। जबकि गृहस्थ जीवन में मुख्य चीज है ममता। मम पिता, मम माता, मम भ्राता, मम सम्पत्ति, मम प्रेमी, मम स्त्री, मम पति–सबमें में मेरा-मेरा रहता है। संन्यास में मम नहीं है। मगर संन्यासी को साथ ही विद्वान्, गुणवान और होशियार होना चाहिए। बुद्धू संन्यासी कैसा लगेगा! हनुमान जी के लिए कहते हैं न, 'विद्यावान गुणी अति चातुर।' वे पढ़े-लिखे थे, गुणी थे, योग्य थे, बहुत अधिक बुद्धिमान् थे। जो आदमी विद्यावान होता है, योग्य होता है, बुद्धिमान् होता है, वह गुरु का काम भी बहुत अच्छी तरह से करता है, 'रामचन्द्र के काज सँवारे।'

गेरू कपड़ा पहनकर तो कोई भी संन्यासी दिखता है। उतना ही काफी नहीं है। समाज चाहता है कि संन्यासी का समाज के लिए कुछ योगदान हो। यह जमाना उपयोगितावाद का है। अगर समाज में तुम्हारा कोई उपयोग है, तब तो ठीक है, नहीं तो फिर तुमसे कोई मतलब नहीं। आज दुनिया में सब जगह यही है। ईसाई धर्म में कमजोरी क्यों आई? क्योंकि जिस वक्त ईसाई धर्म शुरू हुआ, उस वक्त यूरोप गरीब था। औद्योगिक क्रांति के पहले यूरोप की हालत भी यही थी। ईसाई पादरी अस्पताल, स्कूल और अनाथालय खोलते थे, गरीबों की सेवा करते थे। वे समाज के लिए उपयोगी थे, इसलिए लोग उनको बहुत मानते थे। सेंट फ्रांसिस, सेंट ज़ेवियर, ऐसे कई लोग थे जो चर्च के आधार थे। इन लोगों की बहुत इज्जत थी।

इसी बीच इन लोगों के देश अमीर होने लगे, सरकार ने स्कूल और अस्पताल जैसी सभी संस्थाएँ अपने हाथ में ले लीं, सामाजिक कार्य अपने हाथ में ले लिया। पादरियों की भूमिका ही खत्म हो गयी। वे अब क्या अनाथालय और अस्पताल चलाएँगे, सरकार की तो अपनी योजनाएँ हैं। चर्च निरर्थक बन गया, उसकी समाज के लिए कोई आवश्यकता ही नहीं रही। इसलिए यदि संन्यासी जीवित रहना चाहते हैं तो उन्हें समाज के लिए उपयोगी होना चाहिए, नहीं तो नहीं रह सकते।

गेरू कपड़ा पहन कर, दो-चार भजन गाकर, कथा कहकर संन्यासी जीवित नहीं रह सकता। या तो संन्यासी को शंकराचार्य की तरह होना चाहिए, जो ज्ञान की पुनर्व्याख्या करके समझाए या विवेकानन्द जी की तरह होना चाहिए, या श्री अरविन्द की तरह होना चाहिए, या महात्मा गाँधी की तरह होना चाहिए। आज की दुनिया का यही नियम है। जो चीज काम की है वह ठीक, जो चीज काम की नहीं है, उसे फेंको। संन्यासी को समाज के लिए उपयोगी होना है, चाहे संगीत में, चाहे नृत्य, साहित्य या चिकित्सा में, कहीं भी उसे उपयोगी होना है, नहीं तो वह जीवित नहीं रहेगा।

आज समाज को नये विचार के संन्यासी की जरूरत है। पाँच हजार साल पुराना विचार आज काम नहीं करेगा। आत्मज्ञान सनातन है, यह मैं मानता हूँ, मगर सामाजिक परम्परा, व्यवस्था और प्रथा सनातन नहीं है। वह युग के मुताबिक बदलती है। आज का जमाना तुम देख ही रहे हो। हम तो उस जमाने में पैदा हुए जिस समय मिट्टी के तेल से लालटेन जलाते थे, छः मील पैदल स्कूल जाते थे। जितनी देर में हम गाँव से शहर तक पहुँचते थे, उतनी देर में

आज हम बम्बई से लंदन पहुँच जाते हैं। उस जमानें में खबर करने में इतनी देर लगती थी, अब तो टेलीफोन उठाते हैं, एक सेकण्ड में बात कर लेते हैं। पहले लड़की घर से बाहर निकलती ही नहीं थी। मुँह देखने को नहीं मिलता था। असूर्यंपश्या बोलते थे उसको। आज लड़कियाँ स्कूल-कॉलेज जाती हैं, खेल खेलती हैं, आमने-सामने बात करती हैं। तो बदलते हुए समाज में संन्यासी को अपने सामाजिक नियमों को बदल कर आगे बढ़ना चाहिए।

संन्यास के तीन रूप होते हैं–संन्यास सम्प्रदाय, संन्यास आश्रम और संन्यास वृत्ति। ये तीनों अलग-अलग होते हैं। संन्यास सम्प्रदाय में चुटिया काटी, सिर मुड़ाया, मंत्र जपा, गेरू कपड़ा पहना, अब आज से तुम गृहस्थ नहीं हो, शादी-वादी की बात नहीं करना। यह सम्प्रदाय हुआ। संन्यास आश्रम में क्या है? साठ-सत्तर साल की उम्र हो गयी, बाल-बच्चे बड़े हो गए, नाती-पोते हो गए, तो कहीं आश्रम जाकर आराम से रहेंगे, गेरू कपड़े पहनेंगे। ज्यादा उम्र में तो एक ही बार खाना खाने से काम चल जाता है। एक बार खाया और भगवान का भजन किया। फिर एक दिन मर गए। यह संन्यास आश्रम है, जो प्राचीन काल में था।

तीसरी होती है संन्यास वृत्ति। इसमें व्यक्ति की मानसिकता संन्यास की होती है। वह शादी करे, तो भी संन्यासी, बाल-बच्चे रखे तो भी संन्यासी, यह सब नहीं भी करे तो भी संन्यासी। कोई कॉलेज में प्राचार्य है या सचिवालय में नौकरी करता है या अपनी छोटी-मोटी फैक्ट्री चलाता है, वह भी संन्यासी है अगर उसकी संन्यास वृत्ति है। प्रश्न उठता है कि संन्यास वृत्ति क्या होती है? व्यक्ति कुछ भी काम करे, किन्तु जो भी फल मिले, उसे चुपचाप स्वीकार कर ले। न रोकर, न हँसकर। *'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'* काम करना तुम्हारा अधिकार है, करना पड़ेगा, कोई रोक नहीं सकेगा। तुम शिक्षक बनना चाहते हो, बन सकते हो, तुम फौज में जाना चाहते हो, जा सकते हो। वह तुम्हारा अधिकार है। मगर उसका जो फल है, उसपर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है। तुमने बीज लगा दिया, अब पेड़ बड़ा होगा या नहीं, फल खूब लगेगा या नहीं, यह तुम्हारे हाथ में नहीं है। वह इसपर निर्भर करता है कि जमीन कैसी थी, खाद कैसी थी, पानी कैसा था, बीज कैसा था।

मनुष्य का हर एक कर्म बीज होता है, जिसका फल निर्भर करता है, काल, कर्म और स्वभाव पर। संन्यासी अपना कर्म करता है। उससे फल मिले तो उसे स्वीकार करता है, फल न मिले तो उसे भी स्वीकार करता है। कम-से-कम में

अपना काम चला लेता है। वह गृहस्थ भी हो सकता है। गृहस्थ का मतलब यह नहीं कि छः-छः लड़की-लड़का पैदा कर लो। लोग चाहते हैं कि लड़की को शादी के बाद गर्भवती होना चाहिए। नहीं तो घबरा जाते हैं। बच्चा पैदा करना लोगों का एक शौक हो गया है। पाल नहीं सकते, खिला नहीं सकते, बढ़िया पढ़ा नहीं सकते, चिकित्सा-उपचार भी नहीं करा सकते, मगर बच्चा होना ही चाहिए। संन्यासी ऐसा नहीं करेगा। अगर हमारे पास साधन नहीं है तो शादी नहीं करते, क्या फर्क पड़ता है? बीवी तो आखिर सफेद हाथी होती है। आदमी जितने दाम का कपड़ा पहनता है, औरत के शरीर पर उससे ज्यादा दाम का कपड़ा होगा। आदमी एक घड़ी से काम चला लेता है, मगर औरत के शरीर पर कम-से-कम मंगल सूत्र तो होना ही चाहिए, चूड़ी और अँगूठी तो होनी ही चाहिए। बीवी हमेशा खर्चीली होती है। फिर बच्चा पैदा करती है तो खर्चा। इसलिए शादी तो भाई सोच-समझ कर करो। केवल माँ-बाप के कहने से नहीं। यह देखकर कि इसने शादी की है तो हम भी शादी कर लें, ऐसा नहीं। शादी के पहले प्रश्नवाचक चिह्न लगा देना चाहिए।

क्या आजकल के मर्द कम हैं! बीस हजार का सूट पहनते हैं, हर अंगुली में अंगूठी पहनते हैं।

यहाँ किसी की निन्दा या आलोचना नहीं हो रही है, केवल संन्यासियों से बात हो रही है कि शादी क्यों नहीं करनी चाहिए। शादी तो मथुरा का पेड़ा है, जो खाएगा सो पछताएगा, जो नहीं खाएगा वह भी पछताएगा। शादी करो तो पछताओ, नहीं करो तो भी पछताओ। इसलिए शादी के पहले प्रश्नवाचक चिह्न लगा लो, मैं शादी करूँ या नहीं? संन्यास लेने वाले को जब कभी मन में कहीं शादी का विचार आता है, दूसरों को देख कर या अपने में कोई भावना उठती है, उस समय मध्यम मार्ग रखना चाहिए। आसमान में सब तरह के बादल आते हैं, वासना के बादल, काम-क्रोध के बादल, आसक्ति के बादल, महत्त्वाकांक्षा के बादल, मगर आसमान में वे बादल स्थायी रहते हैं क्या? कभी ज्यादा देर तक रहते हैं, कभी नहीं। सावन-भादों में ज्यादा देर तक रहते हैं, वैशाख-ज्येष्ठ में नहीं।

मनुष्य का अन्तःकरण, मनुष्य का हृदय भी आकाश की तरह है। जो संन्यास लेना चाहते हैं, उनका हृदय बहुत साफ होता है। फिर भी उनको ये विचार बादल की तरह आते हैं। बादल आए और आदमी तुरन्त झुक जाए,

ऐसा नहीं होता है। काम, क्रोध, लोभ या मोह आत्मा के स्वभाव नहीं हैं। ये अन्त:करण के भी स्वभाव नहीं हैं। जैसे यह सामने वाला खम्भा गेरू रंग का है। मगर खम्भे का वास्तविक रंग गेरुआ नहीं है। यह इस पर लगाया गया है, यह इसका स्वभाव नहीं है। आसमान का कोई रंग नहीं है, मगर वह नीला दिखता है। वैसे ही अन्त:करण का जो स्वरूप है, कम-से-कम संन्यासी के अन्त:करण का जो स्वरूप है, वह काम-क्रोध पर आधारित नहीं है। वे तो परछाइयाँ हैं जो आती-जाती रहती हैं। जवानी में ही नहीं, बुढ़ापे में भी आती हैं। आदमी आखिरी श्वासें गिन रहा है, उसके मरने का समय आ रहा है, मगर उसके मन से ममता नहीं जाती है। मेरा बेटा, मेरी बेटी, मेरा भाई, मेरी पत्नी। यह मेरा-तुम्हारा कहाँ से आ गया? ऋषि-मुनि कहते हैं कि पूर्वजन्म का बैरी बदला लेने के लिए तुम्हारा बेटा बनकर जन्म लेता है। सबसे ज्यादा कष्ट माँ को किससे होता है? बेटे से। ये सब जो बैठे हैं न, सब एक-दूसरे से बदला लेने के लिए जन्म लेकर बैठे हैं। बहुत परेशान करके रखा है। जिस दिन लड़की पैदा हुई, उस दिन से माँ की खोपड़ी में चिन्ता सवार हो गई। लड़का-लड़की पैदा होने से खुशी जरा-सी और चिन्ता जिन्दगीभर की। जैसे एक मन रेत में एक कण चीनी। और तुम खोज रहे हो कि कहाँ है वह चीनी का कण।

इसलिए संन्यास मार्ग अच्छा है, मगर ढंग से प्रवेश करना चाहिए। जैसा मैंने कहा, पहले पढ़ना चाहिए। अगर पिताजी अच्छा पढ़ा सकते हैं तो अच्छे स्कूल में पढ़ना चाहिए, अंग्रेजी माध्यम से पढ़ना चाहिए। क्योंकि इस युग में जितने भी सन्त-महात्मा हुए हैं, सबने अंग्रेजी में लिखा है। स्वामी विवेकानन्द जी, स्वामी शिवानन्द जी, श्री अरविन्द, स्वामी रामतीर्थ, स्वामी चिन्मयानन्द जी, प्रभुपाद भक्ति वेदान्त, महात्मा गाँधी, सभी ने अंग्रेजी में लिखा है। क्योंकि आने वाली सभ्यता अंग्रेजी बोलने वाली है। पिछले पचास सालों में, जब से आजादी प्राप्त हुई है, अंग्रेजी बोलने वाले बढ़े हैं, घटे नहीं हैं। आदमी हमेशा छोटे रास्ते से जाना चाहता है। अंग्रेजी भाषा बहुत सरल है। इसमें बस 26 अक्षर हैं जो एक लाइन में रहते हैं। हिन्दी में तो ऊपर टोपी है और नीचे पूँछ!

दर्शन शास्त्र, संगीत शास्त्र, नृत्य शास्त्र, विज्ञान शास्त्र, धर्म शास्त्र, मोक्ष शास्त्र, काम शास्त्र, अर्थ शास्त्र, इन सब पर बृहत् साहित्य अंग्रेजी में पक्का मिलेगा। स्वामी विवेकानन्द जी तो बंगाली में लिख सकते थे, मगर उन्होंने

नहीं लिखा। स्वामी शिवानन्द जी तमिल में लिख सकते थे, नहीं लिखा। हम तो हिन्दी क्या संस्कृत में लिख सकते थे, हमें संस्कृत अच्छी तरह से आती है, धड़ाधड़ बोल लेते हैं, मगर नहीं लिखा, अंग्रेजी में लिखा। क्योंकि आगे समाज को चलाने वाले व्यक्ति अंग्रेजी जानने वाले होंगे। दिल्ली में बैठे सब पढ़े-लिखे लोग अंग्रेजी जानते हैं। इसलिए थोड़ी-सी अंग्रेजी सीखनी चाहिए, कम्प्यूटर भी सीखना चाहिए। आश्रमों में आना चाहिए, दो-तीन महीने स्वाध्याय करना चाहिए, फिर घर लौट जाना चाहिए। इस तरह आते-जाते रहना चाहिए। फिर देखो कि यहाँ जम गया, तो जम जाओ। आज के जमाने में लड़कियाँ संन्यास मार्ग में ज्यादा आ रही हैं। गृहस्थ आश्रम में उन्हें बहुत तकलीफ होती है।

स्त्री जाति स्वभाव से भक्ति वाली होती है परन्तु अब तक उसके पास स्वतंत्रता नहीं थी। माँ-बाप जो कहें, वही उसको करना पड़ता था। अब लड़की कुछ पढ़-लिख गई है तो अपना कुछ सोच सकती है। वह देखती है कि आखिर शादी करके करेंगे क्या? शादी में क्या आनन्द है? लड़की के साथ बहुत बुरा बर्त्ताव करते हैं। लड़का खाना खाकर थाली छोड़ देता है, माँ थाली धोती है। जबकि धर्म यह है कि लड़के को माँ की थाली साफ करनी चाहिए। लेकिन नहीं, वह थाली छोड़ देता है, या तो बीवी साफ करेगी या माँ। यह तो गलत चीज है। मर्द अपनी मर्जी के मुताबिक चलते हैं, स्त्रियों पर बहुत अत्याचार करते हैं। उनके ऊपर तो कोई कानून, कोई अंकुश है नहीं। जबकि स्त्री थोड़ा-सा भी इधर-से-उधर नहीं हो पाती है। इसलिए हिस्टीरिया की बीमारी औरतों को बहुत ज्यादा होती है ।

कार्तिक स्नान और स्त्री-स्वास्थ्य

सवेरे घूमना, स्नान करना, यह स्वास्थ्य के लिए अच्छा माना जाता है। इसका यह मतलब नहीं कि तुम सुबह बहुत जल्दी नहाओ। सूर्य निकलने के बाद भी नहा सकते हो। पोखर का पानी तो ठण्डा होता है मगर कुएँ का पानी गर्म होता है, उसमें नहा सकते हो। कार्तिक महीने में सुबह नहाने का रिवाज है। मगर यह कार्तिक स्नान ज्यादा उम्र वालों के लिए ठीक नहीं है। यह छोटी उम्र वाले लड़के-लड़कियों के लिए है। कार्तिक स्नान का जो महत्व है, वह मुख्यत: कुंवारी लड़कियों के लिए है, जो बारह से अठारह साल की उम्र तक हैं। ऐसा शास्त्र में लिखा है। बारह साल तक लड़का-लड़की एक समान होते

हैं। लड़की मानते हैं बारह-तेरह साल के बाद, जब वह मासिक धर्म में आती है। तब से लेकर अठारह साल तक, जब उसकी किशोर अवस्था समाप्त होती है, तब तक कार्तिक स्नान का महत्व है। अठारह साल में किशोर अवस्था खत्म होती है और उसके बाद आती है, युवा अवस्था, जिसे जवानी कहते हैं। इसलिए अठारह साल के पहले लड़की की शादी नहीं करनी चाहिए, ऐसा नियम है। बारह से अठारह साल तक लड़की के शरीर में गर्भाशय आदि प्रजनन अंग मजबूत होते हैं, पक्के होते हैं। बचपन में ये अंग कच्चे रहते हैं। इसलिए पहले के जमाने में जब कम उम्र में शादी होती थी और उनके बच्चे होते थे तो अधिकतर बच्चे मर जाते थे।

अगर अच्छी संतान पैदा करनी हो तो लड़की की शादी में थोड़ी देर करना जरूरी है। कायस्थ लोगों को देखो, उनमें लड़के-लड़कियाँ बहुत पढ़े-लिखे होते हैं। 25 साल के पहले कायस्थ लोगों में शादी नहीं होती। पंजाबियों में भी देर से शादी होती है। सिंधियों में भी बीस के पहले शादी नहीं होती। लड़की बीस साल के पहले अगर माँ बनेगी तो बच्चा कमजोर बनेगा। यह तुम लोगों को आगे के समाज के लिए सोचना है। लड़की की शादी तब हो जब वह माँ बनने के लायक हो, उसके पहले नहीं। लड़कियाँ तो घर में रहती हैं, और कैसा घर है? तुम तो देखते ही हो, खिड़की भी नहीं रहती है। सबके फेफड़े खराब रहते हैं, खाँसती रहती हैं। कार्तिक के महीने में न ठण्डा रहता है, न गर्म। अगर वे एक महीने खुली हवा में जाएँगी तो उनके फेफड़ों में शुद्ध वायु जाएगी, आधा घण्टा तो पैदल चलेंगी ही।

स्त्रियों का मासिक धर्म, उनका हॉर्मोन चक्र स्वस्थ होना चाहिए। स्त्रियों का मासिक धर्म होना चाहिए शुक्ल पक्ष में। शुक्ल पक्ष में ही हो तो समझो लड़की स्वस्थ है और अगर कृष्ण पक्ष में होता है तो समझो लड़की अस्वस्थ है। यह पहला नियम माना जाता है, इसको शास्त्र कहते हैं रजस्वला स्त्री। और जब वह पाँचवे दिन नहा लेती है, तब उसको कहते हैं ऋतुमती। पाँचवे दिन के बाद जो तेरह दिन का काल होता है, उसे कहते हैं ऋतु काल। यह स्मृतियों में लिखा है। शास्त्र कहता है कि इस ऋतु काल में ही स्त्री और पुरुष का मिलन ठीक है। नहीं तो फिर उससे बीमारी होगी, आदमी को भी और औरत को भी। तुम देखते हो न जानवरों में, वे ऋतु काल में ही मैथुन करते हैं। प्रकृति का यह नियम है। मगर मनुष्य ने उस नियम को तोड़ दिया है, क्योंकि उसकी तो समझ में आता नहीं है।

मासिक धर्म स्वस्थ रखने के लिए स्त्रियों को व्यायाम करना चाहिए, शुद्ध वायु में रहना चाहये, थोड़ी सैर करनी चाहिए। तब जाकर मासिक धर्म स्वस्थ होता है, और जब वह स्वस्थ होता है तो गर्भाशय का आकार अच्छा होता है। गर्भाशय थैली की तरह होता है। हर महीने उसकी सफाई होती है। जैसे तुम घर को झाड़ू देते हो तो गंदगी निकलती है न, वैसे ही गर्भाशय के अन्दर की दीवाल में लगी हुई पपड़ी की हर महीने सफाई होती है, जिसको तुम मासिक धर्म कहते हो। उस माहवार सफाई का होना आवश्यक है।

लड़की से यह नहीं कहना चाहिए कि बाहर मत जाओ, लोगों से बात मत करो, बड़ी हो गई है, तुम अभी भी खेलती हो? बल्कि तुम्हें बोलना चाहिए कि खेलो, कूदो। रस्सी खेलना, स्कूल जाती है तो फुटबॉल खेलना, बैडमिंटन खेलना, बॉल फेंकना, दौड़ना, कूदना, यह सब लड़की के स्वास्थ्य के लिए बहुत जरूरी है। लड़की को कभी यह नहीं सोचना चाहिए कि वह लड़की है इसलिए उसे यह नहीं करना चाहिए। जो व्यायाम लड़का कर सकता है वह लड़की भी कर सकती है। लड़की-लड़के में कोई फर्क नहीं देखना चाहिए। फर्क देख-देख कर ही तो आज तुम्हारा यह हाल हुआ है। तुम्हारी लड़की कमजोर है, अपनी रक्षा नहीं कर सकती, कमा नहीं सकती।

यह जो कार्तिक स्नान है वह लड़कियों की माहवारी के स्वास्थ्य के लिए है। लड़कियों की माहवारी शुरू होती है बारह-तेरह साल की उम्र से। कार्तिक स्नान उसे नियमित, नियंत्रित और स्वस्थ बनाने के लिए है। और यह स्नान अठारह साल की उम्र तक चलता है, उसके बाद उसका उद्यापन होता है। विवाह के दिन उसका उद्यापन माना जाता है। वैसे दूसरे लोग भी कार्तिक स्नान करना चाहें, तो करें, मगर साठ-सत्तर साल की उम्र वालों के लिए कार्तिक स्नान नहीं है। इस उम्र में स्नान करोगे तो ठण्ड पकड़ लेगी।

स्वामीजी, यह छठ की पूजा क्यों करते हैं?

छठ की पूजा सारे हिन्दुस्तान में नहीं है, सिर्फ बिहार में करते हैं। यह सूर्य की पूजा है। यह साधारण नहीं, बहुत प्रभावशाली पूजा है। एक प्रकार का अनुष्ठान है। इसको तीन दिन बड़े नियम से करना पड़ता है। इसमें उदित और अस्त होते सूर्य को अर्घ्य देते हैं। व्रत करते हैं, पानी भी नहीं पीते। पानी सूर्य अस्त होने के बाद पीते हैं। अन्तिम दिन कुछ नहीं लेते, एकदम निर्जल, निराहार होता है। हमारे एक परिचित को ल्यूकोडर्मा था, सब जगह सफेद दाग

थे। हमने उनसे कहा, छठ पूजा करो। ठीक हो गये। चमड़ी की बीमारियाँ छठ व्रत से दूर हो जाती हैं।

क्या इसके पीछे कोई वैज्ञानिक या मनोवैज्ञानिक कारण है?

वैज्ञानिक कारण भी है और मनोवैज्ञानिक कारण भी। जो भी बीमारी तुम्हें होती है, उसका कारण खान-पान और रहन-सहन में गलती है। उसे लोग व्रत-पूजा के समय ठीक कर लेते हैं। अगर आदमी पूरा दिन खाना नहीं खाए, पानी नहीं पिए तो क्या होगा? उसके शरीर में आग पैदा होगी, गर्मी पैदा होगी। वह गर्मी उसके शरीर में रोग को समाप्त कर देगी। इसीलिए तो बीमारी में उपवास कराते हैं। बुखार आता है तो खाना नहीं खिलाते हैं।

माघ महीने में भी लोग प्रयाग या किसी तीर्थस्थान में जाते हैं और नदी में स्नान और पूजा-पाठ करते हैं। उसका क्या महत्व है?

माघ महीने में बहुत-से लोग प्रयाग जाते हैं, और एक महीने छोटी-सी कुटिया बना कर वहाँ गंगा के तट पर रहते हैं। उस एक महीने को कल्पवास कहते हैं। माघ महीना बहुत ठण्डा रहता है, उस वक्त लोग प्रयाग जाते हैं, झोपड़ी बना कर रहते हैं। अमीर भी जाते हैं, गरीब भी जाते हैं। सब कुटिया बना कर रहते हैं, खुद अपने हाथ से खाना बनाते हैं, जमीन में पुआल बिछाकर सोते हैं, सवेरे स्नान करते हैं। वहाँ तुम्हें पुराने-पुराने असाध्य रोग वाले लोग मिलेंगे, जिनको डॉक्टर भी दवा से ठीक नहीं कर सकते हैं। अभी माघ महीने में जाओ तो पूरी त्रिवेणी बुक रहती है। एक साल मैं वहाँ जाना चाहता था, पर सारा बुक था, मुझे वहाँ जगह ही नहीं मिली। मुझे बीमारी नहीं थी, मगर मुझे लगा कि वहाँ एक महीने का एकान्तवास अच्छा रहेगा। यह होता है माघ महीने का कल्पवास। कल्पवास करने से आदमी अपने पाप, दु:ख और रोग से मुक्त होता है।

ये जितने व्रत, पर्व और त्योहार हैं, सबको करने से लाभ नहीं होता। किसी के लिए कुछ अच्छा है, तो किसी के लिए कुछ और। बचपन में तुम्हारे अन्दर जो ताकत थी, वह अभी तो नहीं है। और जब तुम बारह-चौदह साल की लड़की थी, उस समय तुम्हारी जो जरूरत थी, वह आज नहीं है। आज तुम्हारी जरूरत दूसरी है। तो जरूरत के मुताबिक ही व्रत और त्योहार किये जाते हैं।

जिस उम्र में हम लोग हैं, पचास-साठ के ऊपर, उन लोगों को भगवान का नाम लेना चाहिए, भगवान की पूजा करनी चाहिए और बच्चों को केवल हाँ या न कहना चाहिए, बस। उनको जो करना है, करने दो। उनसे कह दो, अपना दु:ख-सुख खुद झेलो, अब हमारे सर पर मत चढ़ो। हमने अपना उत्तरदायित्व पचास साल तक निभा लिया है। तुमको बड़ा किया, पढ़ाया-लिखाया, खिलाया, अब हमको छोड़ो, तुम खुद करो। पचास के बाद यही नियम है। पच्चीस साल तक ब्रह्मचर्य आश्रम, फिर पच्चीस साल गृहस्थ आश्रम। 50 से 75 तक वानप्रस्थ, इसमें घर में ही रहना, पर घर से अलग रहना, हाँ या ना बोल देना बस। 75 के बाद अगर आदमी जिन्दा रह गया तो फिर संन्यास। किसी से कोई मतलब नहीं। संन्यासी की जो अंत्येष्टि होती है, क्रियाकर्म होता है, वह गृहस्थ से भिन्न होता है। संन्यासी का श्राद्ध नहीं होता। ये सब नियम बने हैं। अब हम मरेंगे तो हमको आग में थोड़े ही जलायेंगे? जमीन में गाड़ देंगे। संन्यासियों का श्राद्ध वगैरह नहीं होता।

वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम का जीवन जीने से तुम्हें चिन्ता और फिक्र कम होगी। तुम्हारा बेटा इतना बड़ा हो गया है कि बाल सफेद हो गए हैं, उसकी भी अगर तुम चिन्ता करोगे तो तुम मूर्ख हो। चिन्ता करने की एक सीमा होती है। हमारी छोटी बच्ची है, उसकी शादी करनी है, वहाँ तक ठीक है। अब लड़का नौकरी में लग गया, अच्छी नौकरी करता है या नहीं करता, इन सब चीजों से तुमको क्या मतलब। जब बच्चे बड़े हो जाएँ तब माता-पिता को चाहिए कि वे अलग रहकर केवल भगवत्-भजन करें। जहाँ सत्संग या कीर्तन होता है, वहाँ चले जाएँ, कहीं बगल में पूजा-पाठ, सत्यनारायण पूजा हो रही है, तो वहीं चले जाएँ। कुछ पैसा हो तो थोड़ी तीर्थयात्रा करके आ जाएँ। कुछ और पैसा हो तो अपने घर में 24 घण्टे के लिए राम नाम संकीर्तन करवा दें। कहने का मतलब केवल भगवान की संगत में, भगवान की शरण में रहना चाहिए। उस वक्त यह नहीं सोचना कि मेरे लड़के की नौकरी लग गयी या चली गयी, उसके पास पैसा ज्यादा हो गया या कम, उसका मकान बन गया कि नहीं, उसने अपनी लड़की की शादी की या नहीं की। अब नाती-पोते की शादी करना भी तुम अपना काम समझो तो यह गलत है, यह अति है। इससे तुम्हारे बच्चे कमजोर हो जाएँगे। वे हमेशा तुम्हारी तरफ देखेंगे, माँ-बाप तो सब कुछ कर लेंगे। उनको मालूम होना चाहिए कि माँ-बाप तो कुछ करने वाले नहीं, वे तो भगवान में ही रमे हुए हैं, अब हम को ही सब करना है। तब वे मजबूत होंगे।

बच्चे माता-पिता से कहें कि 50 के बाद गृहस्थाश्रम का विराम। अगर कोई 75 के बाद जिंदा रह जाय तो फिर उसे संन्यास लेकर, कहीं कुटिया या झोपड़ी बनाकर रहना चाहिए। इससे क्या होगा? यह जन्म तो तुम्हारा जैसा-तैसा निकल ही गया है, मगर आगे का? आखिर दूसरा जन्म भी तो है न। इस साल गेहूँ कटा, कुछ खाया, कुछ रखा अगले साल बोने के लिए। अगले साल फिर गेहूँ निकलेगा। अच्छा गेहूँ होगा तो अच्छा निकलेगा, घुन लगा होगा तो मर जायेगा, वह बीज पर निर्भर करता है। जब उम्र ज्यादा हो जाती है, तब हर एक व्यक्ति को दो काम जरूर करने चाहिए। पहला, भगवान में मन लगाना, और दूसरा इस जन्म की घर-गृहस्थी से मन को अलग करना, क्योंकि अब आगे के जन्म की तैयारी करनी है। 50 साल तक इस जन्म की तैयारी थी, 50 के बाद हर आदमी को आगे के सफर की तैयारी करनी चाहिए। जाना तो सब को है, यहाँ तो किसी को रहना नहीं है। न राम रहे, न कृष्ण रहे। दुनिया में कोई भी आदमी नहीं रहा। जब जाना ही पड़ेगा तो आदमी क्या कमाई लेकर जाएगा? उसकी तैयारी तुम लोगों को करनी चाहिए। बाल-बच्चों से कहो, अब तुम संभालो। हमने काफी देख लिया, अब अन्तिम श्वास तक थोड़े ही सब कुछ करते रहेंगे।

– *29 अक्टूबर, 1997*





अध्याय 18

आत्म-निरीक्षण

हवा में जब दबाव होता है, तब बरसात होती है। उसी तरह से जब आदमी के मन में दबाव या विषाद होता है, तब उसमें भी बरसात होती है। विषाद तब होता है, जब विचारों का दबाव बहुत बढ़ जाता है, जब आदमी के मन में बहुत-से विचार एक साथ आते हैं। जैसे बम्बई के रेलवे प्लेटफार्म पर जाते हो तो कितनी आवाजें सुनाई देती हैं। लोग क्या कह रहे हैं, यह भी समझ में नहीं आता, केवल एक प्रकार की आवाज मालूम पड़ती है। ऐसे ही मन में भी होता है, अनेक विचार एक साथ आते हैं। उसको कहते हैं, क्षुब्ध अवस्था। विक्षिप्त अवस्था में विचार कम आते हैं, मगर दबाव की अवस्था में आदमी के मन में विचार बहुत आते हैं। और मजे की बात यह है कि आदमी को मालूम नहीं पड़ता। यही मनुष्य की सबसे बड़ी कमजोरी है। अगर उससे पूछो कि तुम्हारे मन में विचार आते हैं क्या, तो कहेगा, 'नहीं, कुछ विचार नहीं आते हैं।'

दुनिया में कोई आदमी ऐसा नहीं है जो अपने को देख सकता है। हाँ, दूसरों को देखना सबको आता है। हमको मालूम है कि तुम्हारा चेहरा कैसा है, तुम्हारे बाल कैसे हैं, तुम्हारी नाक कैसी है, तुम कैसा बोलते हो, मीठा बोलते हो या कड़वा, अच्छा गाते हो या खराब, हमको यह सब मालूम पड़ जाएगा, मगर तुमको खुद कभी मालूम नहीं पड़ेगा। सबका यही हाल है। दुनिया में जितने जीव हैं, इस मामले में सब अज्ञान में हैं। मनुष्य स्वयं कैसा है, इसकी जानकारी दूसरे से होती है। जैसे चेहरे की जानकारी दर्पण से होती है, वैसे ही तुम्हारे स्वभाव की जानकारी निन्दा करने वाले से होती है। जो तुम्हारी

आलोचना करता है, निन्दा करता है, वही तुम्हारे चेहरे का, स्वभाव का सही रंग बतलाता है। इसलिए कभी कोई कहे कि तुम ऐसा क्यों करते हो, तो उस समय प्रतिकार नहीं करना चाहिए, न ही अपनी सफाई देनी चाहिए। कहना कि हाँ, ऐसा है, फिर उस पर आत्म-निरीक्षण करना चाहिए।

आत्म-निरीक्षण के वक्त आदमी को अपने विवेक को जज बनाना पड़ता है, जो तुम्हारी तरफदारी न करे। वकील तरफदारी करता है, मगर जज तरफदारी नहीं करता। अपनी तरफदारी नहीं करनी चाहिए। इसको कहते हैं – स्व-आलोचना। ईसाई धर्म कहता है, 'अपनी आलोचना करो।' तुलसीदास ने भी कहा है – *'मो सम कौन कुटिल खल कामी।'* मतलब उन्होंने स्व-आलोचना को स्वीकार किया है। बहुत मुश्किल है अपना चेहरा देखना। जब दूसरे लोग तुम्हारी तारीफ करते हैं कि तुम बहुत सुन्दर हो, बहुत विनम्र हो, बहुत अच्छा गाते हो, बहुत अच्छा लिखते हो, बड़ा अच्छा स्वभाव है, बहुत अच्छे कार्यकर्त्ता हो, बहुत सज्जन हो, तो वह भी तुम्हारा चेहरा है। मगर जब तुम्हारी निन्दा की जाती है तब तुम्हारा चेहरा लटक जाता है, तुम अपने को बचाते हो, कहते हो, 'नहीं, नहीं, मैं कहाँ करता हूँ ऐसा। मैं किसी को बुरा नहीं कहता हूँ, मेरी आदत ही नहीं है किसी को बुरा-भला कहने की।'

आलोचना करने पर आदमी अपना बचाव ही करेगा, लेकिन जब उसको बोला जाएगा कि तुम बहुत अच्छा गाते हो, उस वक्त वह फूल जाएगा, उसमें अहंकार आ जाएगा। आदमी की ये दो बहुत बड़ी समस्याएँ हैं, आलोचना में बचाव और प्रशंसा में अहंकार। अब जैसे कोई लड़की बहुत अच्छा गाती है और उसे प्रशस्ति-पत्र मिल गया, पन्द्रह हजार रुपये का इनाम भी मिल गया, उसका नाम तक अखबार में छप गया, तो इन सबसे मद आता है, घमण्ड आता है। मगर उसके बाद आलोचना सुन कर अपने को बचाने की प्रवृत्ति आती है। और दोनों ही गलत हैं।

आदमी को दोनों जगह अलग रवैया रखना पड़ता है। यहाँ सबसे बड़ी चीज है, चिन्तन और आत्म-निरीक्षण। अगर कोई कहे कि तुम बहुत अच्छा भाषण देते हो, बहुत अच्छा लिखते हो, बहुत अच्छे नेता हो, तो अपने मन में सोचना चाहिए, 'हाँ, मानते हैं ऐसा होगा। मगर देखो, गाँधीजी में कैसी नेतागिरी थी, तानसेन कैसा गायक था, महाराणा प्रताप कैसे योद्धा थे, शिवाजी कैसे कूटनीतिज्ञ थे, हममें तो वैसा कुछ नहीं है, हमको तो और आगे

बढ़ना होगा।' आदमी को प्रशंसा में विनम्र होना चाहिए। बाहर से जो बोले सो बोले, लेकिन अन्दर भावना दूसरी होनी चाहिए। जब निन्दा होती है, आलोचना की जाती है, उस वक्त तुम्हारे मन में स्वीकृति आनी चाहिए, 'हाँ, यह सही है।' और जब तुम्हारी प्रशंसा की जाती है उस वक्त स्वीकृति नहीं होनी चाहिए, उल्टा सोचना चाहिए, 'ठीक है, स्कूल में इनाम मिल गया, पर इससे क्या होता है, दुनिया तो बहुत बड़ी है।' जैसे पेड़ फल लगने से झुक जाता है, उसी प्रकार जो गुणवान् व्यक्ति होते हैं, वे गुणों के कारण नम्र हो जाते हैं। जो आदमी दबना जानता है, वह दुनिया पर राज करता है। जो दबता है, उसके अन्दर बहुत दम होता है।

लेकिन जो मैं कह रहा हूँ, यह आसान नहीं है। यह एक बहुत कठिन चीज है। कबीरदास जी कहते थे –

निन्दक नियरे राखिए, आँगन कुटी छवाय ।
बिन साबुन पानी बिना, निर्मल करे सुभाय ॥

जो तुम्हारी आलोचना करे, उसको तुम अपने कमरे में रखो, ताकि वह बिना पानी और साबुन के तुम्हारा कपड़ा साफ कर दे। तुमको डिटर्जेंट और पानी की जरूरत नहीं है। पर ऐसा होता नहीं है। आदमी हमेशा अपनी बुराई करने वाले की उपेक्षा करता है और अपनी तारीफ करने वाले को अपने निकट रखता है। दुनिया में सब जगह ऐसा ही होता है।

सुकरात कहता था – स्वयं को जानो। उपनिषद् में कहा गया है – *आत्मानं विजानीमहि।* रमण महर्षि भी एक ही बात कहते थे। वे तो हिन्दी नहीं जानते थे, जब भी कोई उनके पास उपदेश के लिए जाता था, वे कहते – 'नान यार' – मैं कौन हूँ, यही विचार करो। अपने को जानो, अपने को पहचानो। अपने को पहचाने बिना ये चीजें बहुत कठिन हैं जीवन में। बहुत बार तुम परीक्षाओं से गुजरते हो। परिवार में, समाज में, संस्थाओं में बहुत परीक्षाएँ आती हैं। जहाँ भी जाओगे, चुनौतियाँ और परीक्षाएँ ही पाओगे।

दूसरों के दोषों के बारे में और सहनशील कैसे बना जाए?

दूसरों के दोषों के प्रति अधिक सहनशील बनने के लिए आदमी को पहले अपने दोष देखने चाहिए। जब तुम्हें अपना दोष दिखेगा, तब तुम्हें पता चलेगा। दूसरे में दोष दिखे तो वही दोष अपने में खोजो।

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिल्या कोई ।
जो दिल देखा आपना, मुझ सा बुरा न कोई ॥

संत-महात्माओं ने तो पहले इसका प्रयोग किया है। दूसरे के दोष देखने की बजाय आदमी को अपने में दोष देखना चाहिए। लेकिन ऐसा होता नहीं है। अगर तुम अपने में बहुत ज्यादा दोष देखोगे तो तुम्हारा आत्म-विश्वास कम हो जाएगा। तुम्हें यही लगेगा कि मैं नालायक हूँ। इसलिए अपने में दोष देखना, यह प्राकृतिक नियम नहीं है। प्रकृति ने एक नियम बनाया है कि अपना चेहरा अपने को नहीं दिखाई दे। प्रकृति ने यह नियम सबके लिए बनाया है। किसी व्यक्ति को अपने दोष, अपने दुर्गुण स्वयं खोजने पर भी नहीं मिलते। पहले तुम उन्हें दूसरे में देखते हो कि वह बहुत आलसी है, बहुत बोलता है, बड़ा अहंकारी है। तब तुम उन दोषों का विश्लेषण करते हो कि घमण्ड क्या है, ईर्ष्या किसे कहते हैं। ये सब चीजें पहले दूसरों में अध्ययन करोगे। अपने में नहीं मिलेंगी, चाहे तुम लाख कोशिश करो। मैं यहाँ मौजूद हर एक व्यक्ति से खुले तौर पर कह सकता हूँ कि तुम कितनी भी कोशिश कर लो, तुमको अपने में कोई दोष मिलने वाला नहीं है। दोष तुमको दूसरे में ही मिलेगा।

यह प्रकृति का नियम है। पहले दूसरे में अध्ययन किया, तब तुमको अपने बारे में पता चला। तुमको कैसे पता कि आँख ऐसी होती है? तुमने दूसरे की आँख देखी, नाक देखी, होंठ देखे, बाल देखे, ललाट देखा, तब जाकर तुमको पता चला कि मेरा भी ऐसा ही होता होगा। प्रकृति ने अपने को जानने के लिए दूसरे को बनाया है। दूसरा आदमी तुम्हारा दर्पण है। वह तुमको बताता है कि गुस्सा क्या होता है। तुमको क्या मालूम कि गुस्सा क्या होता है। तुमको तब मालूम पड़ेगा जब तुम्हारे सामने दूसरा आदमी खूब गुस्सा करेगा। तब तुम सोचोगे, 'यह बड़े गुस्से में है, अच्छा तो गुस्सा इसको कहते हैं।' माता-पिता को देखकर सोचोगे, 'हमारे माता-पिता हमें बहुत प्रेम करते हैं, तो यह प्रेम है।' प्रेम क्या है, क्रोध क्या है, नफरत क्या है, यह तुम जिन किताबों से सीखते हो, वे किताबें हैं तुम्हारे आस-पास के लोग। तब फिर उस दोष को अपने में ढूँढना पड़ता है। इसके पहले अपने में बुराई खोजना गलत है। इसलिए पहले तुम दूसरे की निन्दा करते हो।

दूसरे की निन्दा करना एकदम स्वाभाविक है। यह मानव मन के विकास-क्रम में प्रकृति का नियम है। तुम शुरू में कैसे कह सकते हो कि हम नालायक

हैं, जब तुम्हें यही नहीं मालूम कि नालायक कहते किसको हैं। खाली तुमने एक मत बना लिया कि हम नालायक हैं, किसी काम के नहीं हैं, बेकार हैं, बिना यह जाने कि इसका मतलब क्या है। उससे व्यक्तित्व को चोट पहुँचती है। और इसी तरह आदमी अपनी तारीफ भी करता है, मैं बहुत सुंदर हूँ, मैं बहुत अच्छा गाती हूँ, मैं बहुत अच्छी हूँ। लेकिन क्या तुम्हें मालूम है कि सुंदरता क्या है? सुरीला स्वर क्या है? अच्छाई क्या है? पहले तुम जानो कि सुंदरता क्या है, संगीत क्या है, अच्छाई क्या है, तब वह तुम्हें अपने भीतर मालूम पड़ेगा। नहीं तो, मैं बहुत अच्छी हूँ, यह अहंकार हो जाएगा। इसलिए जीवन को बनाने के लिए प्रकृति ने जो नियम तैयार किए हैं, उनको समझना चाहिए। कोई तुम्हारी आलोचना करता है, बुराई करता है, करने दो। चुप रहो। प्रतिकार मत करो। और जब तुम दूसरे की निन्दा करते हो, तब उस समय अपने भीतर खोजो कि कहीं मेरे में तो यह दोष नहीं है।

स्वयं को जानना दुनिया में सबसे मुश्किल चीज है। दुनिया में आदमी सब चीजें जान सकता है, लेकिन अपने को नहीं जान सकता। अपने को जानना ही आत्म-साक्षात्कार है। यह सामान्य उपलब्धि नहीं है, बहुत ऊँची उपलब्धि है। हम लोगों को अभी यह उपलब्धि नहीं हुई है। हम लोग सब गप्प लगाते हैं कि आप बहुत अच्छे हैं, बहुत पहुँचे हुए हैं। स्वयं को जानना जीवन की महानतम उपलब्धि है। उपनिषदों ने इसे आत्मज्ञान कहा, किसी ने ईश्वर-साक्षात्कार कहा। स्वामी शिवानन्दजी कहा करते थे, दोनों एक ही हैं, अपने को जानना और भगवान को जानना बराबर है।

हम सब लोगों के जीवन का उद्देश्य तो वही है न?

नहीं। जीवन का उद्देश्य मत खोजना, जीवन का पड़ाव खोजना। आदमी को पड़ाव के बारे में सोचना चाहिये, लक्ष्य के बारे में सोचने से आदमी गलती कर सकता है। लक्ष्य पर पहुँचने के लिये अलग-अलग पड़ाव होते हैं। जबलपुर से बम्बई जाने वाले के लिये अलग पड़ाव है, देवघर से जाने वाले के लिये अलग और मद्रास से जाने वाले के लिए अलग। दूरी एक समान हो सकती है, लेकिन बीच में पड़ने वाले स्टेशन समान नहीं होते। जीवन के उद्देश्य के बारे में तभी सोचना चाहिये जब तुम कलकत्ता पहुँच जाओ और बम्बई के लिए हवाई जहाज पकड़ लो। जीवन की जो भी परिभाषा तुम आज दोगे वह सही नहीं बैठेगी।

कोई लड़का स्कूल में पढ़ रहा है, उसे बोलो कि आत्मज्ञान जीवन का लक्ष्य है, उसकी समझ में नही आयेगा। कोई लड़का शादी करने वाला है, उसे भी समझ में नहीं आयेगा। पर यह बात बड़े-बूढ़े लोगों की समझ में आयेगी। ज्ञान तब आता है जब तुम मन की एक विशिष्ट परिपक्व अवस्था में पहुँचते हो। पाँच-छ: साल के लड़के को उन भावनाओं के बारे में बताओ जो अठारह-उन्नीस साल के लड़के में होती हैं तो उसे कुछ समझ में नहीं आयेगा। और पचहत्तर साल की उम्र वाले को अठारह-उन्नीस साल वाली भावनाओं के बारे में बताओ तो बोलेगा, छोड़ो फालतू बात है, क्योंकि उसने अनुभव कर लिया है। मन की परिपक्वता के अनुसार मनुष्य को कोई चीज समझ में आती है। बुद्धिमत्ता, अगर हम कहें।

स्वयं को जानना और भगवान को जानना लक्ष्य तो है पर उससे पहले जीवन के सारे क्षेत्र को देखना चाहिये। जीवन का क्षेत्र बहुत बड़ा होता है। पैदा होने से लेकर मरने तक जो निरंतरता रहती है, उसे जीवन कहते हैं और इस जीवन में बहुत-से अनुभव होते हैं जो मनुष्य के विकास में सहायक होते हैं। उसमें सुख भी है, दु:ख भी। आशा भी है, निराशा भी। इच्छा, महत्त्वाकांक्षा और क्रिया है। जीवन की ये चीजें सब में होती हैं।

इन्सान एक फूल के पेड़ की तरह है। पहले वह पौधा होता है, फिर बड़ा होता है, उसमें टहनियाँ और पत्ते लगते हैं, फिर उसमें फूल आते हैं, फल आते हैं, फिर वह खत्म हो जाता है। यह उसका जीवन है। मनुष्य का जीवन बहुत ज्यादा विकसित है। उसमें बचपन से ही सुख और दु:ख को भोगने की इच्छा होती है, उसका ज्ञान रहता है। बच्चे को भी ठण्ढी-गर्मी का ज्ञान, माँ का ज्ञान, सब ज्ञान रहता है। और उसमें भावनाएँ भी हैं। जैसे आदमी की वाणी, विचार-शक्ति और शारीरिक शक्ति का विकास होता है, वैसे ही उसमें भावना का भी विकास होता है। छोटों के प्रति वात्सल्य भाव, बराबर वालों के प्रति सखाभाव, बड़ों के प्रति पूज्यभाव है, ये भाव सबमें होते हैं। पशु में भी भाव होता है, पर सीमित। घोड़े में भाव है, घोड़ा मालिक को नहीं पहचानता क्या? जरूर पहचानता है। गाय में भाव है, गाय पहचानती है। तुम्हारे प्रति नहीं तो कम-से-कम अपने बछड़े के प्रति तो भाव होता है न? कुत्ते में मालिक के लिये भाव होता है, जिसको नापसंद करता है, उसके लिये एक भाव होता है।

भावना का विकास जीवन के लिये बहुत आवश्यक है। इन भावनाओं को हम लोगों के यहाँ भाव के रूप में माना जाता है। भाव में एक रस होता

है। हमारे यहाँ श्रृंगार रस, वीभत्स रस, आदि नौ रस माने जाते हैं। ये रस भावनाओं से पैदा होते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो मानव मन पर भाव के प्रभाव को रस कहते हैं। तुम्हारे अन्दर यदि वात्सल्य भाव हुआ, तो उससे एक रस, एक प्रभाव, एक प्रकार की भावना, एक प्रकार की क्रिया की उत्पत्ति होती है। श्रृंगार रस है, अपने अन्दर किसी लड़के या लड़की के लिये माधुर्य भाव जागा, तो एक रस की उत्पत्ति होती है। जब तुम्हें डर लगता है, तब अंदर एक अन्य रस पैदा होता है। आधुनिक विज्ञान कहता है कि उस वक्त हॉर्मोन्स पैदा होते हैं।

ये जो नौ रस होते हैं, ये हमारे मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य को बढ़ाते हैं। सब लोगों के सामने पेड़ से आम गिरता है, सेब भी गिरता है, कोई भी चीज ऊपर फेंको, नीचे गिरती है। यह हजारों साल से होता आया है और हजारों लोगों ने इसे देखा है, मगर केवल न्यूटन को पता चला कि क्यों गिरा। उसका दिमाग इतना विकसित हो गया था कि वह गिरते हुए सेब को अवधान के साथ देख सका। बहुत-सी चीजें हमारे आस-पास होती रहती हैं, पर हम लोग ध्यान नहीं देते। धुँआ ऊपर क्यों जाता है, पानी नीचे क्यों गिरता है। इस ध्यान देने को दार्शनिक अवधान कहते हैं। न्यूटन को गुरुत्वाकर्षण का अवधान हुआ। ऐसा ही एक वैज्ञानिक था, जिसे एक बार रास्ते में बहुत ज्यादा बुखार हो गया। वहाँ एक तालाब था, वह उसी के किनारे बैठ गया। प्यास लगी तो तालाब का पानी पी लिया और पीकर पेड़ के नीचे सो गया। जब वह उठा तो उसके पूरे शरीर में पसीना था, बुखार उतर चुका था। इस तरह क्वीनीन का आविष्कार हुआ। उस तालाब के किनारे सिंकोना के पेड़ थे, जिनके पत्ते पानी में गिरते थे। पानी में क्वीनीन का असर हुआ। उसने पानी पिया तो समझो क्वीनीन खाया, और सोया तो पसीना आया, मलेरिया का बुखार उतर गया।

हम लोगों को ऐसा अवधान नहीं होता। इस गुण को प्राप्त करने के लिये भावनाओं को दबाना नहीं, बाहर आने देना चाहिए। आज क्या कारण है कि हिन्दुस्तान के लोग उन्नति नहीं कर रहे हैं? दक्षिण पूर्वी एशिया के लोग उन्नति क्यों नहीं कर रहे हैं? खाली यूरोप के लोगों ने उन्नति क्यों की? उन्होंने विज्ञान में इतनी उन्नति क्यों की? छोटी-छोटी चीजों को लेकर उन्होंने इतने बम और सैटेलाईट कैसे बना दिये? क्या सिद्धांत निकाला कि दिल्ली में कोई नाचे और देवघर में उसे कोई देखे, बिना तार के। जिन आदमियों ने इन चीजों का

आविष्कार किया, समझ लो कि उनकी भावनाएँ बाहर आ गई होंगी। जैसी भी भावनाएँ हों उन्हें बाहर आने दो। भय, वात्सल्य, माधुर्य, घृणा और स्नेह जैसी बहुत-सी भावनाएँ होती हैं। हर एक चीज को देखकर मन में एक भावना उठती है, एक भावनात्मक प्रतिक्रिया होती है। भावनात्मक प्रतिक्रिया को बाहर आने देना चाहिए। ऐसा करने के बाद ही यूरोप ने विकास किया। नहीं तो उनका समाज भी एकदम दब्बू समाज था, प्रतिबंधित समाज था, यह मत करो, वह मत करो। उनके ईसाई धर्म में बहुत निषेध थे। जब उन्होंने धर्म और समाज के बन्धनों को तोड़ा, भावनाएँ बाहर आईं और उन्होंने कितने बड़े-बड़े वैज्ञानिक तैयार किये। आज हम भले ही उनकी निन्दा करें कि वे सब जगह युद्ध करवा देते हैं, अपने टैंक और तोपें भिजवाकर पैसा कमा लेते हैं और अपने लोगों को मक्खन और डबलरोटी खिला लेते हैं, लेकिन इसके बावजूद भी उनकी उपलब्धियों को मानना पड़ेगा।

मानव सभ्यता की विकास-यात्रा में दो निर्णायक मोड़ आए। पहला, जब मनुष्य को आग की जानकारी हुई। उसके बाद जब आदमी को बिजली का पता चला, सभ्यता ने फिर एक छलांग लगाई। आज सब कुछ बिजली पर निर्भर करता है। जिस संसार को तुम आज देख रहे हो, वह इसी निर्णायक छलांग का परिणाम है। जिस आदमी ने इन सबका पता लगाया, रसायन शास्त्र और विद्युत को जोड़ा, वह कमाल का आदमी रहा होगा। एक डिब्बे में रसायनों को डाल कर बैट्री बना दी, बिजली पैदा कर दी। बैट्री को एक डिब्बे में डालकर बटन चालू किया तो टॉर्च लाइट जल गयी। यह तो उपलब्धि है। बिजली मानवता के लिए ऐतिहासिक परिवर्तन है। बिजली ने सारी दुनिया को बिल्कुल परिवर्तित कर दिया, किन्तु सबसे बड़ी चीज है, रिमोट कंट्रोल की जानकारी। यहाँ पर बैठकर बटन दबाते हैं तो मंगलग्रह पर मशीन चालू होती है। उसको दायें, बायें करते हैं। यहाँ से स्विच चालू करते हो तो दिल्ली का कार्यक्रम सैटेलाइट में जाता है, वहाँ से तुम्हारी डिश में आता है और डिश से वह कार्यक्रम तुम्हारे टीवी में आता है। ये निश्चित रूप से ऐसे मनुष्य की उपलब्धियाँ हैं, जो अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए पूर्णतः मुक्त हैं।

कालिदास को जानते हो न? संस्कृत का बड़ा जबरदस्त विद्वान् रहा है। कालिदास का रघुवंश पढ़ो, कुमारसम्भवम् पढ़ो, अभिज्ञान शाकुन्तलम् पढ़ो, अद्भुत काव्य हैं। जैसे हिन्दी में हम तुलसीदास को मानते हैं, वैसे ही संस्कृत में कालिदास का स्थान है। पर तुम जानते हो वह कहाँ मरा? एक

वेश्या के घर में। व्यावहारिक तौर से वहीं रहता था। कहने का मतलब यह है कि मनुष्य का विकास उसके भावनात्मक व्यक्तित्व से होता है। आखिर भक्ति क्या है? भक्ति भी तो भावना है न? भक्ति-भावना से ही तो तुम्हारे अन्दर परमेश्वर की अवधारणा आयी। अगर तुम्हारे मन में भक्ति-भावना नहीं होती तो भगवान हैं या नहीं, दोनों चीजें बराबर होतीं। भय की भावना नहीं होती तो शिशु की तरह साँप और माला दोनों बराबर लगते। भावना से मनुष्य के विवेक का जन्म होता है। इसी से वह पहचानता है, भेद करता है। भावना के कारण तुम अंतर करते हो, भगवान है या नहीं, इसमें तुम भेद करते हो। यह प्रकृति का खेल है, माया का खेल है। यह चीज हम लोग इस उम्र में समझ रहे हैं, थोड़ा जल्दी समझते तो अच्छा होता। राम मन्दिर महत्त्वपूर्ण है या हिन्दुस्तान की एकता। हिन्दुस्तान की एकता का मतलब होता है हिन्दू-मुसलमान एकता। उसी की कोशिश करनी चाहिये।

जब मन में भावनाएँ आएँ तो क्या प्रतिक्रिया होनी चाहिये? या केवल उनका साक्षी रहना चाहिये?

अगर आदमी को शौच लगे तो क्या करेगा वह? शौच करेगा। रसोई घर में, बरामदे में, सड़क पर, कहीं भी कर देगा क्या? नहीं, सही जगह पर सही ढंग से करेगा। उसी तरह जब मनुष्य के अन्दर भावना पैदा हो, उस भावना को अभिव्यक्त करना चाहिये, मगर सही ढंग से। चाहे वह भावना भय की हो, या घृणा, ईर्ष्या, प्रेम, दया या करुणा की, उसे प्रकट करने का एक तरीका होता है। अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करना चाहिये, मगर कहीं भी कर दिया, ऐसा नहीं होना चाहिये।

वैदिक धर्म और हिन्दू जाति

हिन्दू नाम का कोई धर्म नहीं है। हिन्दू जाति है, धर्म नहीं। धर्म का नाम वैदिक धर्म है। कुरान के आधार पर जो धर्म बना वह है इस्लाम, बाइबिल के आधार पर जो धर्म बना वह है ईसाई धर्म, तोरा के आधार पर जो धर्म बना वह है यहूदी धर्म, त्रिपिटक के आधार पर जो धर्म बना वह है बौद्ध धर्म, उसी तरह वेदों के आधार पर जो धर्म बना वह वैदिक धर्म है। इस वैदिक धर्म को हिन्दू लोगों ने स्वीकार किया। हिन्दू जाति का नाम है, धर्म का नाम नहीं। गलती कब से शुरू हुई? जब स्वामी विवेकानन्दजी अमेरिका गए थे, तब वहाँ एक

खबर छपी थी जिसमें उन्हें हिन्दू मन्क कहा गया। तब से पश्चिम में हिन्दुवाद का सिलसिला चला।

हिन्दू जाति का नाम है। जाति का सम्बन्ध डी.एन.ए. से, जीन्स से होता है। यूरोप में कई जातियाँ हैं, एंग्लो-सेक्सन, डेनिश, स्लाव, आदि, उन सब जातियों ने ईसाई धर्म को स्वीकार किया। इसी तरह इस्लाम धर्म को मंगोल जाति, अरब जाति और फारसी जाति ने स्वीकार किया। जाति और धर्म अलग-अलग चीजें हैं। इस पर आज कोई ध्यान नहीं दे रहा है, कोई समझा नहीं पा रहा है। नेता लोग भी इस चीज को समझते नहीं हैं।

हमारा जो धर्म है, वह वैदिक धर्म है और इसमें मूर्ति पूजा याने साकार उपासना और पुनर्जन्म, ये दो असली चीज हैं। अन्य धर्मों में मानते हैं कि ईश्वर एक है, अद्वैत है, निराकार है। हम भी मानते हैं, मगर हम लोगों के यहाँ साकार उपासना है जो किसी और धर्म में नहीं है। यद्यपि वे लोग भी क्राइस्ट या मेरी की पूजा वगैरह करते हैं, मगर हमारे यहाँ यह मुख्य है। और दूसरी चीज है पुनर्जन्म। दूसरे धर्मों में पुनर्जन्म नहीं मानते, न ईसाई धर्म में, न इस्लाम में, न किसी और में। जबकि हमारे यहाँ पुनर्जन्म का पूरा सिद्धांत है। ये दो चीजें वैदिक धर्म की विशेषताएँ हैं।

जैसे-जैसे लोग बाहर से आते गये, उनके देवी-देवताओं को हमने स्वीकार किया और वैदिक धर्म में सम्प्रदाय बनते गये। शिवजी आए तो हमने उनके लिये जगह बना दी, कृष्ण जी, देवी जी और गणेश जी आए तो उनके लिये भी जगह बना दी। उनका आपस का सम्बन्ध भी समझा दिया पुराणों में। यहाँ हिन्दुस्तान में जितने लोग भी आ कर रहे, उन्होंने जिस देवी या देवता उपासना की, उस सम्प्रदाय की उपासना को हम लोगों ने स्वीकार कर लिया। कुछ समय तक शैवों और वैष्णवों में दिक्कत रही। तिरुपति मंदिर में स्वामी शिवानन्द जी के एक पूर्वज अप्पय दीक्षित को जाने नहीं दिया गया क्योंकि वे शैव थे। शंकराचार्य जी ने दार्शनिक स्तर पर इस व्यर्थ के संघर्ष को रोका। उन्होंने बद्रीनाथ में नारायणजी के मंदिर में शैव पुजारी नियुक्त किया। भगवान तिलक लगाते हैं, पूजा करता है त्रिपुण्डधारी। मगर जो सबसे बड़ी उपलब्धि थी, वह रही तुलसीदासजी की। उन्होंने शिवजी के मुख से ही रामजी की कथा कहलवा दी। झंझट खत्म हो गया।

परन्तु ईसाई धर्म और इस्लाम धर्म हम लोगों की वैदिक देव सभा में अभी तक स्थान नहीं पा सके हैं। वे कहते हैं, नहीं, हम तुम्हारे वैदिक सम्प्रदाय से

जुड़ना नहीं चाहते। मगर जब से यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति हुई, शिक्षा बहुत अच्छी हुई, रोजगार बहुत बढ़ा, लोगों ने वहाँ चर्च में पादरी बनना बन्द कर दिया। पहले के जमाने में बेरोजगारी बहुत थी, इसलिए बहुत-से लोग पादरी बन जाते थे। चर्च में खाने-पीने को तो मिल ही जाता था, सरकार पैसा जो देती थी चर्च को। वे लोग चर्च में रहते थे, और धर्म का प्रचार करते थे। मगर जब से औद्योगिक क्रान्ति हुई, लोगों को रोजगार मिलने लगा, तब वे साधु क्यों बनेंगे।

दूसरी बात, चर्च के लोग स्कूल बनाते थे, अनाथालय बनाते थे, अस्पताल बनाते थे, वृद्धाश्रम बनाते थे। जब यह सब कार्य सरकार ने ले लिया तो चर्च निरर्थक हो गया। साथ ही वहाँ शिक्षा का स्तर बहुत बढ़ गया। जब आदमी ज्यादा शिक्षा पा लेता है, तो उसकी खोपड़ी चलने लगती है, वह प्रश्न करने लगता है। उन लोगों ने भी प्रश्न करने शुरू कर दिये, भगवान पर, बाइबिल पर, ईसा मसीह पर। मरियम तो अविवाहित थी, उसे बच्चा कैसे हो गया? जो नई पीढ़ी के लोग हैं, वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले हैं, वे इन सब बातों को नहीं मानते। आज से दस साल पहले इंग्लैंड में एक पादरी ने इस पर बड़ा लेख लिखा था कि यह सम्भव नहीं है। इस मुद्दे पर इंग्लैंड में बहुत झंझट हुआ था।

चर्च की किसी भी चीज को वे लोग स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हैं। अब जाकर वे धीरे-धीरे वैदिक धर्म की तरफ मुड़ रहे हैं। अब जाकर उसके लिए परिस्थितियाँ बनीं। अमेरिका वगैरह में जो हरे कृष्ण वाले हुए हैं, उनके पीछे एक परिस्थिति है। हमें तब मालूम पड़ा जब हम सन् 1968 में वहाँ गये थे। हमने भी उस परिस्थिति का फायदा उठाया। उस वक्त वियतनाम की लड़ाई चल रही थी। अमेरिका की जनता उसका विरोध कर रही थी, विशेषकर यहूदी। उन लोगों ने सोचा, हम क्यों मरेंगे अमेरिका के लिये, सब फालतू है। पर लड़ाई में कैसे नहीं जाएँ, क्योंकि उस समय सब जवान लोगों का फौज में भर्ती होना अनिवार्य था। उन्होंने पूरा कानून पढ़ा और एक तरीका निकाला। कानून में एक जगह लिखा था कि अगर कोई व्यक्ति किसी ऐसे सम्प्रदाय का सदस्य हो जो हिंसा में विश्वास नहीं करता तो उसे फौज में भर्ती से छूट है। इसीलिए हजारों की संख्या में लोग योग में आए, हरे कृष्ण मिशन में आए, आचार्य रजनीश के पास गये, महर्षि महेश योगी के पास गये, हमारे पास आए। हम तो उन्हें संन्यास प्रमाण-पत्र देते थे, सिर मुड़ाते

थे, नया नाम देते थे, पासपोर्ट में उनका नाम बदलवाते थे, प्रमाण रहता था कि मैं एक सम्प्रदाय का हूँ।

यह कहानी सबको मालूम नहीं है। मैंने पाश्चात्य देशों को अधीन किया है, जीता है, वहाँ योग का झण्डा गाड़ा है। अगर हमें लड़ाई जीतनी है तो हमें दूसरे का कमजोर पक्ष देखना पड़ता है। हमने 1968 में सब समझ लिया। हमने कहा, डरो मत सत्यानन्द, लड़का हो या लड़की, उसका सर मुड़ाओ, नाम दे दो, प्रमाण-पत्र दे दो, कोई तुम्हें कुछ नहीं बोलेगा। उन लोगों ने इस तरीके से सेना से बचना शुरू कर दिया। फिर वियतनाम लड़ाई खत्म हुई पर तब तक हमारा योग आन्दोलन जोर पकड़ चुका था।

ईसाई धर्म भी कुछ समय बाद अन्य धर्मों की तरह वैदिक देव सभा का सदस्य बन जाएगा। यहाँ ईसा मसीह की आरती होने लगेगी, बाइबिल पर कोई संस्कृत पण्डित पुराण लिख देगा और धीरे-धीरे यह घुल-मिल जाएगा। इस्लाम में थोड़ी देर लगेगी।

यह एक राजनैतिक सिद्धांत है कि जिस हथियार से तुमने लड़ाई जीती थी, उसी हथियार से तुम हारोगे। उदाहरण के लिये तुम देख लो, महात्मा गाँधी ने हड़तालों से आज़ादी की लड़ाई जीती थी, आज वही हड़तालें देश की तरक्की में रोड़ा अटका रही हैं। महात्मा गाँधी ने कहा भी था, 'देखो, अगर बन्दूक से आज़ादी की लड़ाई जीती जाएगी, तो बन्दूक रह जाएगी। इसलिए हमें बन्दूक नहीं चाहिये, हिंसा नहीं चाहिये, मैं अहिंसा से लड़ाई जीतूँगा।' बौद्धधर्म ने राजनीति को अपनाया, इसलिए अशोक के बाद खत्म हो गया। ईसाई धर्म संसद में बैठा, अंत में खत्म हो गया। कोई भी धर्म जब राजनैतिक शक्ति बनेगा, तो उस धर्म का नाश अवश्य होगा। जो तलवार के साथ आया है, वह तलवार के साथ ही जाएगा।

इसलिए धर्म को राजनीति से अलग रहना है। धर्म किसी भी राजनैतिक व्यवस्था को वोट नहीं देता। हम हिन्दू हैं, हम वैदिक धर्म को मानते हैं। हम आज स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के रूप में भाजपा को भी वोट दे सकते हैं, कांग्रेस को भी वोट दे सकते हैं और जनता दल को भी वोट दे सकते हैं। हम यह नहीं कहेंगे कि हमारे जितने भी चेले हैं, वे किसी एक पार्टी को ही वोट दें। जब अशोक बौद्ध बना, तब बौद्ध धर्म हिन्दुस्तान का राष्ट्रीय धर्म बना, जैसे इस्लाम पाकिस्तान का राष्ट्रीय धर्म है। धर्म को संसद से बाहर, राजनेता की पहुँच के बाहर रखना चाहिये।

हिन्दू जाति और वैदिक धर्म की बात चल रही थी। वेदों में शब्द आया है– *सप्त सिंधवः*, याने सात नदियाँ–गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु और कावेरी।

गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिंधु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥

ये सात नदियाँ ही सप्त सिंधु कही जाती थीं। सप्त सिंधु का अपभ्रंश हुआ हफ्त हिंधु। जब सिकन्दर आया तो उसने सिंधु नदी का उच्चारण किया, इन्दुस, क्योंकि ग्रीक में 'ह' का उच्चारण नहीं होता। वे लोग ह की जगह अ कह देते हैं। तो उन्होंने सिंधु को इन्दुस कहा और इन्दुस नाम पर इंडिया कहा गया। सिंधु, हिन्दु, इन्दुस और इंडिया, इन सब शब्दों का मूल धातू एक है, सिन्धु। सात सिन्धुओं या नदियों की जो सभ्यता है, उसे हिन्दु जाति कहते हैं। अब उसमें कोई शैव है, तो कोई मुसलमान है तो कोई ईसाई है। पारसी नहीं है क्योंकि पारसियों में धर्म परिवर्तन का प्रावधान नहीं। यहूदियों में भी धर्म परिवर्तन नहीं होता। इसलिए तो यहूदी लोग इतने साल हिन्दुस्तान में रहे, कोई नया यहूदी नहीं बना। क्योंकि वे बनाते ही नहीं हैं। इतने साल से पारसी हिन्दुस्तान में हैं, कोई नया पारसी नहीं बना। और वे अपने अग्नि मंदिर में किसी को जाने भी नहीं देते हैं। मेरे तो अच्छे-अच्छे दोस्त हैं पारसियों में, मगर अग्नि मंदिर में नहीं ले गये वे लोग। साफ कह दिया जो पारसी नहीं है वह नहीं जा सकता। किसी गैर-पारसी से शादी करने पर मरने के बाद पारसी ढंग से अंत्येष्टि भी नहीं मिलती।

जो लोग उत्तरी आयरलैंड में रहते हैं, वे सब हिन्दू जाति के हैं। महाभारत युद्ध के समय सब भागकर गये थे वहाँ। महाभारत तो बहुत बड़ा गृहयुद्ध था न? गृहयुद्ध में स्थानांतरण नहीं होता है क्या? निश्चित रूप से होता है। आज़ादी के समय हिन्दू-मुसलमान दंगे हुए, दो करोड़ इधर आए, दो करोड़ उधर गए। जिस देश में गृहयुद्ध होगा वहाँ हजारों-लाखों की संख्या में लोग इधर से उधर होंगे। यह स्वाभाविक राजनैतिक परिणाम है। आयरलैंड वालों का धर्म ईसाई धर्म है। उत्तर में ज्यादातर प्रोटेस्टेंट हैं और दक्षिण में ज्यादातर कैथोलिक। उनका धर्म वैदिक धर्म नहीं है, मगर जाति हिन्दू है, और वे इस बात को जानते हैं। उन्होंने कहा है हमसे, स्वीकार किया है कि हम वे लोग हैं जिन्होंने महाभारत के गृहयुद्ध के बाद हिन्दुस्तान छोड़ा। हमारे पूर्वज वहीं से आये हैं।

इसी तरह यूरोप में जितने जिप्सी लोग हैं, सब हिन्दू जाति के हैं। वे सब यहाँ से भागे हुए कलाकार लोग हैं–गवैये, नाचने वाले, नौटंकी करने वाले, दस्तकारी करने वाले। आज से करीब सात-आठ सौ साल पहले, दस-पन्द्रह हजार नहीं, लाखों की संख्या में ये लोग यहाँ से भागे हैं। जब मुसलमानों का उत्तर-पश्चिम में आक्रमण होना शुरू हुआ तब भागे थे ये लोग। उस वक्त एक बहुत बड़ा हत्या-काण्ड हुआ था हिन्दुओं का। लाखों की संख्या में मरे। उस जगह को हिन्दूकुश पर्वत कहते हैं। हिन्दू का मतलब तो जानते ही हो, और कुश वह लव-कुश वाला नहीं, पश्तो में कुश का मतलब होता है कत्ल। जैसे खुदकुशी शब्द होता है, उसका मतलब खुद का कत्ल होता है, अपने को मारना, वैसे ही हिन्दूकुश का मतलब हुआ हिन्दुओं की हत्या। उस वक्त लाखों की संख्या में ये जिप्सी लोग यहाँ से भागे। रूस गये, रोमानिया गये, बुल्गारिया गये, अल्बानिया गये, फ्रांस गये, आज तक कहीं टिक नहीं पाये हैं। उनकी सारी प्रथाएँ हमारे जैसी हैं। हम जब भी उनके यहाँ जाते थे, वे हमारे पैर धोते थे। न ईसाइयों में ऐसा होता है, न मुसलमानों में। हम जितने देशों में जाते थे, वहाँ गुरु पूर्णिमा में हमारे पैर नहीं धोते थे, बस फूल लाकर चढ़ा देते थे या मेरा हाथ छूते थे या मेरा कपड़ा छूते थे या हाथ चूमते थे, माने जो उन लोगों के यहाँ प्रथा होती है। हमारे यहाँ तो गुरु के हाथ-पैर चूमने की प्रथा नहीं है। यहाँ तो झुकने की, वन्दना करने की, पैर धोने की प्रथा है, जो ये जिप्सी लोग किया करते थे।

आपका आश्रम बहुत साफ-सुथरा स्थान है, बड़ा अच्छा लगता है यहाँ आकर।

हमें सफाई का यह संस्कार साबरमती से पड़ा है। हम तीन महीने साबरमती आश्रम में रहे थे, बहुत बचपन में। हमारी माँ कांग्रेसी थी, सोचा होगा हमें भी उसी तरफ सरका दें, इसलिए हमें तीन महीने साबरमती आश्रम भेज दिया। वहाँ सब काम खुद करना पड़ता था। गाँधीजी अपना शौचालय खुद साफ करते थे, अपना कमरा खुद साफ करते थे, अपने कपड़े चरखे पर खुद बुनते थे, अपनी सब्जी काटते थे और अपनी बकरी को भी वे खुद खाना देते थे। उनके यहाँ आश्रम में प्याज भी चलता था, इसलिए हमें प्याज से कभी झंझट नहीं हुआ। वरना साधु लोगों के आश्रम में प्याज होता ही नहीं है। हिन्दुस्तान में किसी भी आश्रम में जाओ, प्याज नहीं मिलेगा।

गाँधीजी तो रंगे कपड़े नहीं पहनते थे, मगर पक्के संन्यासी थे। उनका रहन-सहन, मेहनत, उनके सोचने का तरीका, उनकी निर्भीकता, सब लक्षण संन्यासियों जैसे थे। उनके आश्रम में हर अन्तेवासी को काम करना पड़ता था। नौकरों का सवाल ही नहीं उठता था। वही संस्कार हमने बिहार योग विद्यालय में डाला। ऋषिकेश में हमारे गुरु आश्रम में ऐसा नहीं है। वहाँ नौकर लोग रोज कमरा साफ करने आते हैं, मेहतर शौचालय साफ करता है। सब आश्रमों में, वहाँ के साधु, ब्रह्मचारी या स्नातक, कोई भी निवासी काम नहीं करता। मगर यह हमारा बचपन का संस्कार था और हमें अच्छा लगता था। अगर यह तुम्हारा घर है तो तुम्हें इसको साफ करना चाहिये, अगर पराया घर है तो कोई और करेगा। होटल पराया है तो नौकर आकर साफ करता है। महात्मा गाँधी का यही कहना था कि हर एक आदमी को जितना हो सके अपना काम खुद करना चाहिये। अगर अकेले नहीं कर सकते हो तो मिलजुल कर करो।

साबरमती के बाद हम सेवाग्राम, वर्धा भी गये। वहाँ तो खेती भी होती थी। वहाँ चौदह-पन्द्रह साल की उम्र की लड़कियाँ, बीस-बाईस साल की उम्र की स्त्रियाँ, घुटने तक जांघिया और कुर्ता पहन कर फावड़ा चलाती थीं। हमको यह भी अच्छा लगा। हम आज भी यह समझते हैं कि संन्यासी को अपना काम खुद करना चाहिये, नौकर कम-से-कम रखना चाहिये। स्वावलम्बन का हमारा यह विचार आधुनिक विचार है। तुम किसी भी यूरोपियन परिवार में जाओ, नौकर नहीं मिलेगा। गाड़ी खुद चलानी पड़ती है, खाना खुद बनाना पड़ता है, सफाई खुद करनी पड़ती है। वहाँ अधिकांश परिवारों में ऐसा ही है। हम करोड़पतियों की बात नहीं, सामान्य आदमी की बात कर रहे हैं।

शायद वहाँ के सामान्य आदमी नौकरों का खर्चा उठाने में समर्थ नहीं होंगे?

नहीं, खर्चा उठाने में जो लोग समर्थ हैं, वे लोग भी अपना काम खुद करना चाहते हैं, क्योंकि कोई काम नहीं करने से दिमाग खाली हो जाता है। जैसे किसी जानवर के गले से रस्सी निकाल दो, वह मुक्त हो जाता है और रस्सी लगाओ तो बंध जाता है। कर्म जो है, चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक, एक प्रकार का बंधन है मन का। मन को हमेशा बांधना पड़ता है, नहीं तो मन में बहुत ज्यादा ऊर्जा पैदा हो जाती है। उस ऊर्जा को मुक्त करने के लिये प्रकृति

मांग करती है। तब ईर्ष्या, काम, क्रोध जैसी भावनाएँ बाहर निकलती हैं। इसलिए मन को हमेशा काम के द्वारा बंधन में रखना पड़ता है।

झाड़ू देना, कमरा साफ करना, शौचालय साफ करना, कपड़ा धोना, बर्तन साफ करना, खाना बनाना, लकड़ी उठाना, ये सभी शारीरिक कार्य तो योग हैं। हमारे आसपास जितने भी गाँव हैं, उनमें तुम्हें कहीं भी हृदय की बीमारी नहीं मिलेगी, रक्तचाप नहीं मिलेगा, मधुमेह नहीं मिलेगा। क्यों? क्योंकि यहाँ आदमी दिन भर काम करता है, गोबर उठाता है, झाड़ू देता है, खाना बनाता है, बर्तन साफ करता है, एक किलोमीटर दूर शौचालय जाता है, एक किलोमीटर दूर स्नान के लिये जाता है। जबकि शहरों में ऐसा नहीं होता है, जरा मुड़े तो शौचालय मिल जाता है, थोड़ा नीचे उतरे तो कार मिल गई, रिक्शा मिल गया, बाजार से उस पर सामान ले आये। शहरों में जो शारीरिक कार्य हैं, वे गाँव की अपेक्षा बहुत कम हो गये हैं। इसलिये शहर के लोगों में बीमारी ज्यादा होती है। और शहर की बीमारी बड़ी जटिल होती है, उसे बड़ा डॉक्टर ही देख सकता है। जबकि यहाँ खुजली, दस्त, बुखार, खाँसी, बस यही बीमारियाँ हैं। खराब-से-खराब बीमारी टी.बी. है।

गाँधीजी बहुत मेहनत करते थे, शारीरिक कार्य भी बहुत किया करते थे। और खाना बहुत कमती खाते थे। वे कड़वे नीम की चटनी रोज खाते थे, उसके बिना उनका खाना नहीं होता था।

नीम की चटनी हमारे यहाँ तो चैत के पूरे महीने खाते ही हैं, यह बारह महीने खायी जा सकती है क्या?

हाँ, क्यों नहीं। जब मिर्ची बारह महीने खाते हैं तो नीम की चटनी क्यों नहीं। नीम बहुत ही गुणकारी होता है। नीम में जितने भी रासायनिक तत्त्व हैं, वे सब बहुत लाभकारी होते हैं। अभी अमेरिका में नीम से गर्भनिरोधक गोलियाँ बन रही हैं, उन्होंने एरीज़ोना राज्य में लाखों एकड़ जमीन पर नीम लगाया है। नीम की बहुत-सी जातियाँ-प्रजातियाँ होती हैं, जिनमें से कुछ उन्होंने वहाँ लगायी हैं और उनसे दवाई बना रहे हैं। आने वाले समय में उस पर भी समस्या चलेगी, पेटेंट को लेकर। सवाल यह उठेगा कि नीम से उन्होंने यह जो गर्भनिरोधक दवाई बनाई है, यदि हम भी वैसा कुछ बनाएँ तो वे हमें चुनौती दे सकते हैं क्या? हमें यह सिद्ध करना होगा कि हमारे देश में नीम के ये गुण पहले से ही मालूम थे। यद्यपि अमेरिका की तरह औपचारिक

अनुसंधान नहीं किया गया, मगर नीम के गुण यहाँ हर एक आदमी जानता है, नीम हर एक आदमी खाता है। यह झगड़ा अभी होने वाला है क्योंकि वे लोग नीम से अनुचित लाभ उठा रहे हैं।

नीम तो बहुत ही गुणकारी है। ऐसा लगता है कि नीम एड्स जैसी संयम के अभाव से उत्पन्न होने वाली बीमारियों के इलाज में प्रभावी हो सकता है। यहाँ हम लोगों ने जितने भी पेड़-पौधे लगाये हैं, चाहे आम हो या गुलाब, सबकी जड़ में नीम की खली डालते हैं।

दीपावली रामजी के वनवास से लौटने का दिवस ही है या इसका और कुछ महत्व भी है?

दीपावली बहुप्रयोजन त्योहार है। बहुत-सी चीजें एक साथ आयी हैं। दीपावली के दिन श्रीकृष्ण ने आसाम में नरकासुर का वध किया था। जिसे आज आसाम कहते हैं, उसे पहले पुराणों में प्रागज्योतिषपुर कहते थे। आज ही के दिन रामजी अयोध्या आए थे और उनके आने की खुशी में दीपावली मनाई गई थी। आज ही के दिन हमारे हिन्दुस्तान में बही-खाता बदलता है, नया वित्त वर्ष चालू होता है। और पहले जमाने में आज ही के दिन से घर के बड़े नौकर, जैसे रसोइया या मुनीम आदि का दूसरे साल का ठेका शुरू होता था, माने उसको पिछले साल 50 रुपये देते थे तो इस साल से उसे 60 रुपये देंगे। बड़े-बड़े परिवारों के यहाँ जो नौकर होते हैं वे साल के ठेके पर होते हैं। दीपावली के दिन ठेके का नवीनीकरण होता है। एक और चीज यह है कि इस वक्त अंधेरे की सघनता साल में सबसे अधिक होती है। तुमने देखा होगा कि रात में कभी-कभी अंधियारा ज्यादा होता है और कभी कम। दीपावली की रात को अंधेरे की सघनता ज्यादा रहती है। दीपावली के समय और भी बहुत-सी चीजें होती हैं। इस समय हर समाज में अनाज-पानी बहुत ज्यादा होता है। तो यह बहु-उद्देशीय त्योहार है।

आनन्द रामायण में कहते हैं कि दशरथ जी हर दीपावली पर पूरे राजपरिवार के साथ जनक जी के यहाँ मिथिला जाते थे। इसका मतलब दीपावली उसके पहले भी मनाई जाती थी?

दीपावली का त्योहार तो बहुत पुराना है। ऐसी तो कोई बात नहीं कि दीपावली का त्योहार एकदम नया हो। क्योंकि वेदों में भी इसका संदर्भ है। दीपावली

हमेशा मनायी जाती होगी, उस वक्त कोई घटना हुई तो उसको भी इसमें जोड़ दिया। आज ही के दिन नरकासुर मारा गया, आज ही के दिन ऐसा हुआ, आज ही के दिन वैसा हुआ। कई ऐतिहासिक घटनाएँ एक साथ रखी हैं। खैर सब से बड़ी चीज है कि दीपावली के दिन सब दुकानों की आमदनी होती है। आज के दिन कपड़े की बिक्री होती है, लोग बर्तन लेते हैं, सोना-चाँदी बहुत-सी चीजें खरीदते हैं। बचपन में ऐसा कहते थे कि दीपावली बनियों का त्योहार है, रक्षाबन्धन ब्राह्मणों का, दशहरा व राम नवमी क्षत्रियों का और होली शूद्रों का त्योहार है। पहले के जमाने में दीपावली जुए का त्योहार भी माना जाता था। अभी भी जुआ खेला जाता है परंतु पहले ज्यादा होता था।

जुआ क्यों खेलते थे? क्या लक्ष्मी का दिवस है, इसलिए?

हमारे यहाँ शास्त्रों में जिन चौंसठ कलाओं का वर्णन आता है, उनमें एक कला जुआ भी है। जुए में हमेशा छल किया जाता है। छल करना भी एक कला है, इसे सब नहीं जानते हैं। उसी तरह से चोरी एक कला है, सब लोग चोरी नहीं कर सकते हैं। ये जितनी कलाएँ हैं, सभी भगवान की कलाएँ हैं। भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं, *द्यूतं छलयतामस्मि*, छल विद्याओं में मैं जुआ हूँ। जुआ तो आज कल सब जगह चलता है। शेयर बाजार जुआ नहीं तो और क्या है? बड़े-बड़े केसीनों और होटलों में जुआ ही तो चलता है। जुआ तकदीर की परीक्षा है।

यह भगवान की कृपा है कि हमें ताश खेलना नहीं आता, आज तक हमने ताश छुआ तक नहीं है। प्रवृत्ति ही नहीं रही जुए की। हम पुरुषार्थ पर विश्वास करते हैं। *'उद्योगीनां पुरुषसिंहं उपैति लक्ष्मी दैवं देयं कापुरुषाः वदन्ति'*, अर्थात् उद्योगी पुरुष को लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। उद्योगी का मतलब होता है उत्साही, साहसी। साहसी आदमी को ही लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। ऐसे आदमी को पुरुष सिंह कहते हैं, आत्मविश्वास से पूर्ण आदमी। बहुत-से लोग उत्साही होते हैं, उद्योग करते हैं, पर हमेशा आत्मविश्वास नहीं रहता कि कहीं कुछ अनहोनी न हो जाए। पुरुष सिंह सोचते हैं जो होगा देखा जाएगा। तकदीर हमको देगी, ऐसा कायर और डरपोक लोग कहते हैं।

आदमी का स्वभाव साहसी होना चाहिये। उसे अपने ऊपर विश्वास भी होना चाहिये। और साथ ही साथ उसे चतुर भी होना चाहिये। अगर हम अपनी कहानी कहेंगे तो तुम हैरान रह जाओगे। कई जगह हमें लोग बुलाते

थे कि स्वामीजी, आप आइये, कार्यक्रम कीजिये। हम वहाँ जाते थे लेकिन रेलवे स्टेशन पर हमें लेने के लिये कोई नहीं आता था। खैर, हम किसी तरह खोजबीन कर उनके यहाँ पहुँच जाते थे। जाते समय वे पूछते थे कि कौन-सी श्रेणी का टिकट लेना है, पैसा मुझे देना पड़ता था। कई जगह योग कक्षाओं में हम अकेले ही होते थे, कोई नहीं आता था। हम तो थक गये थे, हार गये थे। सोचा, एकदम फालतू चीज है यह सब। एक बार जबलपुर के एक वकील ने मुझे कार्यक्रम करने के लिए बुलाया। वे मुझे लेने स्टेशन पर नहीं आये। खैर मैं किसी तरह उनके घर पहुँच गया, वहाँ रहा। दूसरे दिन जब वे वकालत के लिये जाने लगे तो मुझे अपने किसी परिचित के यहाँ पहुँचा दिया, क्योंकि उनकी पत्नी वहाँ अकेली थी। अब जिस आदमी पर इतना यकीन नहीं कि वह तुम्हारी पत्नी के साथ अकेला रह सकता है, तो उसे बुलाया ही क्यों? हम तो चतुर आदमी हैं, सब समझ गए। और जाते समय हम अपने पैसे से गये।

लेकिन जब हम 1968 में अमेरिका पहुँचे और हमने वहाँ का पूरा वातावरण देखा, तब हमने सोचा कि बस यही तरीका है, निर्भय हो कर करो, डरपोक मत बनो। किसी ने कहा, 'स्वामीजी मैं मंत्र चाहता हूँ', हमने कहा, 'ठीक है, देंगे तुमको।' हमने उन लोगों को ईसामसीह का मंत्र नहीं, 'ऊँ नमः शिवाय' का मंत्र दिया, 'श्रीराम जय राम जय जय राम' मंत्र दे दिया। किसी ने कहा, 'स्वामीजी, हमें आप संन्यास दे दीजिये।' हमने कहा, 'ठीक है, सिर मुड़ाओ।' गेरू कपड़ा दे दिया, प्रमाण-पत्र दे दिया। उसने पूछा, 'इस नाम को पासपोर्ट में भी इस्तेमाल कर सकता हूँ?' हमने कहा, 'करो।' निर्भय होकर सब कुछ किया। हमने सोचा, जो होगा देखा जायेगा। पहली ही बार में हमने डेढ-दो सौ लोगों का सर मुड़ा दिया। ऑस्ट्रेलिया तक कुछ नहीं किया था। अमेरिका में मैंने सारी परिस्थिति का अध्ययन किया। वह एक प्रकार से हमारा 'सर्वे टूर' था। उसके बाद हम बिल्कुल निर्भय होकर रहे।

उत्साही आदमी को डरपोक नहीं होना चाहिये। उसको मार्केट देखना पड़ता है, खोज करनी पड़ती है। और हमने मार्केट की खोज की। हम इसी नतीजे पर पहुँचे कि वेदांत, भक्ति, आदि कुछ नहीं बिकेगा, केवल हठ योग बिकेगा। हमने सोच लिया कि बीमारी पर बोलेंगे, तनाव पर बोलेंगे, और कुछ नहीं बोलेंगे। मोक्ष, समाधि, ज्ञान की सप्तभूमिका–यह सब नहीं। हमें एकदम स्पष्ट हो गया। और सबसे मजेदार बात यह कि हमने आज की तारीख तक कभी योग का अध्ययन नहीं किया। आज तक योग पर कोई भी प्राचीन

ग्रंथ नहीं पढ़ा है, न घेरण्ड संहिता, न गोरक्षा संहिता, न हठ योग प्रदीपिका। जबकि वेदांत पर सारी किताबें पढ़ी हैं, ब्रह्मसूत्र पर रामानुज और शंकराचार्य की सारी व्याख्यायें पढ़ी हैं। हमको सब याद है, पूरा दोहरा सकते हैं। ब्रह्मसूत्र और गीता पर शंकराचार्य की व्याख्या, रामानुज की व्याख्या, विद्यापति मिश्र का टीका, विज्ञानभिक्षु का टीका, सब पढ़ा है। अगर हमसे कोई बोले कि सोऽहम् पर व्याख्यान दो, तो हम एक महीने से कम नहीं लेंगे। मगर वह सब नहीं किया। जब मार्केट बोलता है कि योग चाहिये, तब तुम वेदांत को दुकान में क्यों रखोगे? कौन खरीदेगा उसको? दुकानदार अगर अपनी दुकान में ग्राहक की इच्छानुसार माल न रख कर, अपनी पसंद का माल रखता है तो उसकी दुकान नहीं चलती।

आजकल आदमी ज्यादातर तकदीर पर निर्भर करता है। आज दीवाली के दिन जुआ खेलकर कोई आदमी लखपति बन सकता है, यह मैं नहीं मानता। यह जरूर मानता हूँ कि लखपति खत्म हो जाते हैं, बहुत-से लोग पैसा हार जाते हैं। रेस का घोड़ा, लॉटरी, यह सब भी तो जुआ है न? हमें इन चीजों पर विश्वास नहीं है। इन सब चीजों को करने की जरूरत ही क्या है? आदमी को खुद परिश्रम करना चाहिये। और अगर तुममें परिश्रम करने की योग्यता नहीं है तो झोपड़ी बनाओ, संतोष के साथ रहो। अगर पुरुषार्थ करने की शक्ति न हो, साहस न हो, तो जैसे हो, उसमें संतोष रखो।

साहसी होना भी तो भाग्य पर निर्भर करता है न?

नहीं, साहस एक अलग स्वभाव होता है, जो जन्म से नहीं होता। उसमें थोड़ा अनुभव होना चाहिये। हमें बचपन से अनुभव रहा है। आठ साल से अपनी सारी सम्पत्ति सम्भालते थे। खेती, जंगल, जानवर, रुपया-पैसा, सब सम्भालते थे। साहसी होने के लिये बचपन से दिमाग का होना जरूरी है। गंगादर्शन के निर्माण में मुझे कोई परेशानी नहीं आई। आठ साल की उम्र से मैं छोटे-बड़े कमरों और मकानों का निर्माण करवा रहा था, दूसरों से काम करवा रहा था। यह मेरा स्वभाव बन गया। उस छोटी उम्र से मैंने 50 नौकर, 20-25 गाय, 200 भेड़, और 6-7 कुत्तों को सम्भाला है। मैं जानता हूँ कि आदमी कैसे सोचता है। वह हमेशा मालिक के व्यक्तित्व को देखता है और प्रभावी व्यक्तित्व वाले के साथ रहना चाहता है। पसंद हो तो रहो, नहीं तो जाओ यहाँ से–यह आदत बचपन से बनी हुई है। हम कभी किसी को खुश करने की कोशिश नहीं करते।



इस आदत ने आगे चलकर हमारी मदद की। और इसके साथ-साथ मुझे रुपये-पैसे सम्भालने की बहुत अच्छी जानकारी है। हालाँकि मैंने कभी इकनॉमिक्स या कॉमर्स जैसे विषय कभी नहीं पढ़े लेकिन पैसे के लेन-देन और हिसाब-किताब के बारे में मुझे अच्छी जानकारी है। जब मैंने ऋषिकेश आश्रम छोड़ा, तब मेरे पास 108 रुपये थे। वे 108 रुपये आज भी हमारे पास रखे हैं, खर्च नहीं किये। याद्दाश्त के रूप में वहाँ अलमारी में रखे हैं, निरंजन से कहा है कि पूजा करो इसकी, यह हमारे गुरुजी ने जाते वक्त हमें प्रसाद-स्वरूप दिया था। 1956 में 108 रुपये बहुत होते थे, फिर भी हमने कभी खर्च नहीं किये। आज तक सम्भाल कर रखा है, क्योंकि हमें मालूम है कि पैसे को कब खर्च करना चाहिये, कब नहीं।

संस्था चलाना बहुत कठिन है। पाँच-दस हजार रुपये में आश्रम थोड़े ही चलता है। पहले छोटी-सी आसन-प्राणायाम-मुद्रा-बन्ध किताब छापी, अब तो उसकी 30-40 लाख प्रतियाँ छप गयी होंगी। कौन-सी किताब कितनी छापनी चाहिये, यह सब ध्यान में रखना पड़ता है। अगर आज बिहार योग विद्यालय को कोई दान न भी मिले, वहाँ छात्र फीस न भी दें, तो भी केवल किताब बेचकर आश्रम चल सकता है। कहने का मतलब यह कि साहसी होने के साथ-साथ कुछ अनुभव भी जरूरी है। यह कोई जरूरी नहीं कि तुम योग पर कोई किताब पढ़ो और खूब याद करो। हमें शारीरिक विज्ञान की थोड़ी-सी जानकारी थी। हमारे गाँव के पास मुक्तेश्वर नाम की एक जगह है, वहाँ भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान था। उस वक्त हिन्दुस्तान में केवल दो जगह पशुचिकित्सा संस्थान थे। जब-जब वहाँ सेमीनार होते थे, हम भाग लेते थे। इससे हमें सीरम, बैक्टीरिया, इत्यादि के बारे में सब मालूम चल गया। इसके बाद हम गुजरात में डॉक्टर अध्वर्यू के साथ रहे। वे वहाँ के मुख्य चिकित्सा अधिकारी थे। हम रोज उनके साथ अस्पताल जाते थे। उनसे

मोतियाबिंद के लिए आँख का ऑपरेशन सीखा, धीरे-धीरे बहुत-सी चीजें सीखीं। बस फिर उस जानकारी को योग से जोड़ दिया। कोई जरूरी नहीं है कि किताब पढ़कर ही आदमी को ज्ञान हो, सूझ-बूझ और समझदारी का अपना महत्व है।

स्वामीजी, आपको अपने संन्यास जीवन में कुछ कठिनाइयाँ तो जरूर आई होंगी?

नहीं, मुझे संन्यास जीवन में कोई परेशानी नहीं हुई। क्या परेशानी होगी? मन में कभी औरत का ख्याल आया होगा, वह तो सबके मन में आता है, उससे घबराने की क्या जरूरत है? जो आदमी चलेगा वह थकेगा न, उसे ठोकर तो लगेगी न? जो खाएगा उसे कभी कब्ज होगा, कभी अपच होगा, कभी दस्त होगा, यह तो धर्म है प्रकृति का। इस पर जरूरत से ज्यादा प्रतिक्रिया क्यों करें? लोग इस पर बहुत ज्यादा ध्यान देते हैं, बहुत ज्यादा प्रतिक्रिया करते हैं। 'बाप रे, मेरे मन में बहुत ज्यादा ख्याल आ रहे हैं। क्यों आ रहे हैं? क्या करें?' अरे यह कुछ नहीं है। मन का स्वभाव है बहना। मन कभी एक जगह स्थिर नहीं रहता है। यह योग का प्रथम नियम है। ठीक है थोड़ी देर के लिये लड़की का विचार आया, फिर खत्म हो जाएगा। फिर दूसरी चीज मिल जाएगी। अगर तुम मन को जबरदस्ती रोकते हो, तो उसे परेशानी हो जाती है। हमें संन्यास में कभी भी परेशानी नहीं हुई, न शारीरिक, न मानसिक, न भावनात्मक, न आर्थिक, न सामाजिक, न राजनैतिक। हमारा जीवन सुख से बीता है। संन्यास में ही नहीं, मुझे घर में भी कोई परेशानी नहीं रही।

जब संन्यासी गृहस्थों के साथ रहता है तब उसे अपना व्यवहार नियंत्रित रखना चाहिये या स्वाभाविक?

संन्यासी को कोई ऐसी बढ़िया बात करनी चाहिये जिससे दूसरे को आनन्द आए। वशीकरण का एक ही मंत्र है, तज दे वचन कठोर। हथौड़ा या पत्थर कठोर होता है, पर फूल कठोर नहीं होता। संन्यासी को कठोर बात नहीं बोलनी चाहिये। उसकी वाणी फूल की तरह कोमल होनी चाहिए।

बोलने के अलावा और भी व्यवहार होते हैं न? उनमें स्वाभाविक रहना चाहिये?

स्वाभाविक का मतलब क्या है? अगर पूरी तरह स्वाभाविक बनना हो, तो कपड़े उतार कर जाओ। वह तो एकदम प्राकृतिक है। आदमी को थोड़ा बनना भी पड़ता है कि नहीं?

संन्यासी को मीठी बात बोलनी चाहिये, यह बात पक्की है। अच्छी बात बोलनी चाहिये, दूसरों को सुख देने वाली बात बोलना चाहिये। क्योंकि संन्यासी का मुख्य धर्म लोगों को शान्ति देना है। कठोर बात कहने से दूसरे को शान्ति कैसे मिलेगी?

ऐसा होता है कि जब संन्यासी को किसी सिद्धि की प्राप्ति हो जाती है, तब उस वक्त उसका व्यवहार बदलता है। तब लोगों को दूर करने के लिये वह अंट-संट बोलता है। जैसे तुम छुप करके रुपया गिनते हो न, उसी तरह से सिद्धि को बचाने के लिये संन्यासी अपने को छुपाता है। क्योंकि दुनिया तो लूटने वाली है। जैसे ही पता चला कि किसी साधु के पास सिद्धि है तो उसे लूटने को चले जाते हैं। इसलिए अपनी सिद्धि को बचाने के लिये कई बार साधु लोग गाली वगैरह देते हैं, भगाते हैं। नहीं तो सामान्यत: साधु को अच्छा बोलना चाहिये, मृदुभाषी होना चाहिये। स्वामी शिवानन्द जी बहुत मृदुभाषी थे। यह अपना-अपना स्वभाव है।

स्वामी नित्यानन्दजी तो लोगों के ऊपर पत्थर फेंकते थे न?

हाँ, मगर हम जब वज्रेश्वरी गये थे, तो स्वामी नित्यानन्दजी ने हमें आशीर्वाद दिया था। वैसे वे लोगों के ऊपर पत्थर मारते थे।

अगर ऐसे किसी को पत्थर लग गया तो आशीर्वाद मानते होंगे?

हाँ, और जहाँ तक आशीर्वाद का सवाल है, कुम्भ मेले में जाकर देखना। इस बार हरिद्वार में बहुत बड़ा कुम्भ मेला होने वाला है। मेले में जहाँ नागा साधु पेशाब करते हैं, वहाँ लोग जाते हैं और पेशाब वाली मिट्टी को लेकर पूरे शरीर में लगाते हैं। बहुत लोग जाते हैं, बड़ी लाइन लगती है।

इसको समझदारी कहेंगे क्या?

इसको नासमझी कहो या समझदारी, इसे रोका नहीं जा सकता। यह सारी दुनिया में होता है। कुछ साधु लोग ऐसे होते हैं जो नित्यसिद्ध होते हैं और कुछ स्वयंसिद्ध होते हैं। जो व्यक्ति नित्यसिद्ध होता है, उसके आचार-विचार,

रहन-सहन में ही सिद्धि रहती है। उसे पता भी नहीं चलता। और जो साधना करके सिद्धि प्राप्त करते हैं, वे स्वयंसिद्ध होते हैं। जैसे कोई अंग्रेज हो, उसे अंग्रेजी सीखने की जरूरत नहीं, वह स्वाभाविक रूप से बोलेगा, मगर किसी गैर-अंग्रेज को सीखनी पड़ेगी।

इस बात को हमेशा याद रखो कि योग में थोड़ा भी परिश्रम करोगे तो कुछ मिलेगा जरूर। उसके लिये कुण्डलिनी का जागरण जरूरी नहीं है, पूरक-रेचक-कुम्भक लगाना भी जरूरी नहीं है। अब ये जो नागा साधु होते हैं, इनकी अपनी एक सिद्धि होती है। ये पहाड़ों में नंगे रहते हैं, बिस्तर पर नहीं सोते हैं, जमीन पर बोरा या पुआल बिछाकर सोते हैं, न मच्छर का डर, न बिच्छू का डर, न ठण्ढी का डर, न गर्मी का डर। माने उनका मन बहुत मजबूत हो जाता है। उनको ज्ञान नहीं है, वे वेदान्त वगैरह पर कुछ भी नहीं कह सकते, यहाँ तक कि अच्छी तरह से बोल भी नहीं सकते, मगर उनका मन बड़ा मजबूत हो जाता है। और मन का मजबूत होना समस्त सिद्धियों का, समस्त विभूतियों का आधार है।

जब नागा लोग कुम्भ मेले में जाते हैं और यहाँ-वहाँ पेशाब करते हैं, तो सब लोग पेशाब वाली रेती उठाते हैं और पूरे शरीर में भस्म की तरह लगाते हैं। अब इसे रोकेगा कौन? यह किसी वेद या शास्त्र में लिखा है क्या? किसी गुरु ने उपदेश दिया है क्या? नहीं, अपना विश्वास है। जो चीज अपने अंदर से पैदा हो, उसे विश्वास कहते हैं और जो दूसरा देता है उसे ज्ञान। यह विश्वास तो अपने अन्दर से पैदा हुआ। लोग वहाँ जाकर रेती लगाते हैं, किस लिये लगाते हैं, यह तो वही लोग जानें। ऐसी चीजें केवल यहीं नहीं, सब धर्मों में हैं। यहाँ तक कि आधुनिक माने जाने वाले ईसाई धर्म में भी हैं।

मनुष्य का मूल आधार विश्वास है, बुद्धि नहीं। तुमने बचपन में कभी भी संदेह नहीं किया कि तुम्हारे पिताजी वाकई तुम्हारे पिताजी हैं या नहीं। कभी प्रमाण पूछा? क्यों नहीं पूछा? क्योंकि यह विचार कभी तुम्हारे दिमाग में ही नहीं आया। जो है, सो है। जो चीज स्पष्ट है उसके बारे में मन में विचार आता ही नहीं है। यह विश्वास है। विश्वास एकदम गहरा और रहस्यमय होता है। ईश्वर पर बच्चे को विश्वास स्वत: होता है। जैसे मीराबाई थी, कोई महात्मा आए, उन्होंने गोपालजी की काठ की मूर्ति मीराबाई को दे दी। मीराबाई को उससे प्रेम हो गया। तब वे छोटी बच्ची रही होंगी। छोटी बच्ची के लिये छोटे गोपालजी उनके पति बन गए। जब वे बड़ी हुईं, तो उन्होंने गोपालजी को

भी बड़े रूप में देखा, अपने जैसे। अब मीराबाई या तो पागल थीं या सहज थीं। उन्होंने कभी सोचा ही नहीं कि लकड़ी का पुतला आदमी कैसे हो सकता है, पति कैसे हो सकता है। यह विचार कभी उनके दिमाग में आया ही नहीं। कितनों ने उन्हें समझाया, मगर उनके मन में एक ही धुन सवार थी–

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई ।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई ।।

कहने का मतलब यह है कि विश्वास को विश्लेषित करने की जरूरत नहीं है। किसी के प्रति श्रद्धा या आदर उसे देखने के बाद होता है कि वह विद्वान् है या सुन्दर है, मगर विश्वास देखे बिना होता है। उसमें दूसरा कोई विचार नहीं आता, वह सहज होता है। तुमने मान लिया कि वे तुम्हारे पिताजी हैं, तुमने सोचकर नहीं कहा। यह विश्वास होता है। ईश्वर के बारे में भी ऐसा ही है। जिन लोगों में इस प्रकार का विश्वास होता है, उन्हें प्राप्ति होती है। ऐसे विश्वासी लोग निष्कपट और सहज होते हैं।

जब हम मुंगेर पहुँचे तो ये नन्दकिशोर गोयनका बारह-तेरह साल की उम्र के थे। उसके होठों पर ल्यूकोडर्मा के सफेद दाग थे। एक दिन हमसे ऐसे ही पूछ बैठा, तो हमने कहा, तुम छठ करो न। उसने छठ किया, दाग चले गये। क्यों? विश्वास के कारण। बच्चों में सहज विश्वास होता है, प्राकृतिक विश्वास होता है। उनको जो बोल दो, वे मान लेते हैं। जिस चीज को तुम चुपचाप मान जाओ, वह विश्वास है। *'विश्वास: सिद्धिदायक: विश्वास: फलदायक:'*– विश्वास से ही फल की प्राप्ति होती है। दुनिया में कम-से-कम नब्बे प्रतिशत लोग विश्वास पर जीवित रहते हैं। ऐसे लोग तुम्हें कुम्भ मेले तो क्या, सब जगह मिलेंगे।

जितने भी बड़े-बड़े महात्मा होते हैं, वे भले ही दुबले-पतले हों, पर उनका पेट बड़ा होता है। क्या यह प्राण शक्ति के मणिपुर में रहने के कारण है या इसके पीछे कोई और कारण है?

ऐसा नहीं है। हम लोग पहले कम बैठते थे, अब ज्यादा बैठते हैं। प्राकृतिक नियम यह है कि जब आदमी बैठेगा तो उसका पेट बढ़ेगा। बहुत ज्यादा बैठने से चयापचय धीमा होता है और चर्बी बढ़ती है। कल अगर हम पहले जैसी मेहनत करना शुरू कर दें तो घट जायेगा। हमारे बारे में ही नहीं, सबके

बारे में यही नियम है। जापान में भगवान बुद्ध को जब दर्शाते हैं तो बहुत ही मोटा दर्शाते हैं।

इससे उनको तकलीफ नहीं होती?

नहीं, सब महात्मा लोग एक बार खाते हैं, इसलिए तकलीफ नहीं होती। दो बार खाएँगे तो तकलीफ होगी। आदमी को साठ साल के बाद एक ही बार खाना चाहिये। दो बार खाना शरीर के ऊपर, पाचन तंत्र के ऊपर बहुत जोर डालता है। किसी खास हालत में कोई डॉक्टरी सलाह हो तो बात दूसरी है, नहीं तो एक ही बार खाना चाहिये। इससे रक्तचाप, दिल की बीमारी और अन्य बीमारियों में काफी फायदा रहता है। कुछ महात्मा शाम को खाते हैं, दिन में नहीं, कुछ दिन में खाते हैं, शाम को नहीं और बहुत-से महात्मा दिन में खाते हैं और शाम को दूध जैसा कुछ हल्का आहार ले लेते हैं।

अगर भोजन में केवल नमक और हल्दी रहे और उसे तला नहीं जाए तो आदमी को दिल की बीमारी कभी होगी ही नहीं। अगर आदमी को दिल का दौरा पड़ भी चुका है, तो भी वह 25-30 साल जिन्दा रह सकता है। इस भोजन में नमक वर्जित नहीं है, पर यदि वह नमक छोड़ सके तो बहुत अच्छा है। हर चीज में प्राकृतिक नमक रहता ही है। जो आदमी ज्यादा मेहनत नहीं करते, जिनका ज्यादा पसीना नहीं बहता, उनके लिये वही नमक काफी है। पर जो लोग मेहनत-मजदूरी करते हैं, पसीना बहाते हैं, उन्हें थोड़ा अतिरिक्त नमक लेना चाहिये।

स्वामी शिवानन्द जी कभी चावल नहीं खाते थे। हमने उन्हें न कभी चावल खाते देखा, न चाय पीते देखा, न कॉफी पीते देखा। दो रोटी और एक छोटी कटोरी हरे मूँग का तड़का, बस यह उनका सामान्य भोजन था। और शाम को एक छोटा प्याला गाय का दूध। स्वामीजी इतना ही खाते थे। वे मद्रासी थे, मगर इडली, डोसा, सांभर, खीर वगैरह कुछ नहीं लेते थे। लेकिन बैठते बहुत थे। सवेरे से लेकर शाम तक बैठकर लिखते थे। बैठने से उदर में मेदा की वृद्धि होती है, यही वजह है। दूसरी वजह यह है कि जब आदमी का मन शांत होने लगता है, ज्यादा चंचल नहीं रहता, उस वक्त शरीर में मन द्वारा प्रेरित सब हॉर्मोन्स बन्द हो जाते हैं। इस वजह से भी शरीर की चयापचय प्रक्रिया मंद हो जाती है।

– 30 अक्टूबर, 1997



अध्याय 19

नाथ सम्प्रदाय

गुरु गोरखनाथ के गुरु मत्स्येन्द्रनाथ तांत्रिक थे, उनको तंत्र की सिद्धि प्राप्त थी। गोरखनाथ जी हठयोगी थे। वे किसी की जाति-पाति नहीं देखते थे। बहुत-से साधु-संन्यासी जाति-पाति को देखते हैं मगर नाथ सम्प्रदाय के लोग यह सब नहीं देखते थे। काम-धंधा भी नहीं देखते थे। उनको कोई साँप नचाने वाला सपेरा मिल जाता तो उसको भी दीक्षा दे देते थे और बोल देते थे तुम साँप नचाते रहो। खाली उसको एक झोली दे देते, झोली में भभूत, कुण्डल, माला और दो-चार दवाइयाँ रहती थीं। बस वह गोरखनाथ की झोली दीक्षा में दी जाती थी। अभी भी कनफटा योगी ऐसे ही करते हैं। उनकी परम्परा में संन्यासी का मतलब वह नहीं होता जो हम लोग लगाते हैं। हम लोग तो समझते हैं कि संन्यासी का मतलब औरत नहीं, बच्चे नहीं। पर उनके यहाँ कोई भी संन्यासी हो सकता है। उनका मानना है कि जो आदमी संसार में रह कर भी भगवान को पाना चाहता है, समाधि-मोक्ष पाना चाहता है, वह गृहस्थ कैसे हुआ, वह तो संन्यासी है। गृहस्थ तो वह है जो चौबीस घण्टे माया में पड़ा हुआ है, जो झूठ-सच में पड़ा हुआ है, जो पैसे के पीछे पागल, औरत-बच्चे के पीछे पागल है। पर अगर शादी-शुदा और बाल-बच्चेदार होते हुए भी उसका मन ऊपर की तरफ लग गया तो वह गृहस्थ कैसा! मोची-नाई कोई भी हो, उसे नाथ पंथ में दीक्षा दे जाती थी। इसलिए नाथ पंथ का प्रचार बहुत जबरदस्त हुआ है। गुजरात में नाथ पंथ बहुत सक्रिय है और उधर बलूचिस्तान में भी, जो अब पाकिस्तान में चला गया। हम बलूचिस्तान की तरफ गए हैं, वहाँ नाथ सम्प्रदाय के बहुत बड़े-बड़े स्थान हैं। हम उन सब स्थानों में गए हुये हैं।

गोरखनाथ जी ने जिस हठयोग का प्रवर्त्तन किया उसमें आसन और प्राणायाम भी आते हैं, पर केवल आसन-प्राणायाम ही हठयोग नहीं है। आसन-प्राणायाम हठयोग का एक अंग है। हठयोग में सबसे पहले षट्कर्म आते हैं–नेति, धौति, बस्ती, कपालभाति, त्राटक और नौली। षट्कर्म के बाद फिर आसन-प्राणायाम आते हैं। राजयोग में पहले यम-नियम आते हैं, फिर आसन-प्राणायाम, प्रत्याहार-धारणा और अंत में ध्यान-समाधि। पर हठयोग में ऐसा नहीं है। हठयोग में पहले आते हैं षट्कर्म, फिर उसके बाद आते हैं आसन-प्राणायाम, फिर धारणा, ध्यान और समाधि। यम-नियम की बात नहीं करते हैं। वे बोलते हैं कि यम-नियम की कोई जरूरत नहीं, वे अपने आप आ जाते हैं।

यह विचारणीय बिन्दु है। जो आदमी सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, आदि का पालन करना चाहता है, उसे यह सब जबरदस्ती करना पड़ता है, दम लगाना पड़ता है। नाथ पंथी बोलते हैं दम लगाने की जरूरत नहीं, जब मनुष्य परिपक्व हो जाता है तब वह अपने आप सिद्ध हो जाता है। जब तुम्हारा शरीर ही शुद्ध नहीं है, तब तुम सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य का क्या पालन करोगे? यही उन लोगों की विचारधारा है। वे आचार-विचार पर ज्यादा जोर नहीं देते थे। बोलते थे तुम्हारा सारा जीवन सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य सिद्ध करने में खत्म हो जाएगा तो क्या पाओगे तुम? इसलिए सबसे पहले षट्कर्मों से अपना शरीर शुद्ध करो। इसको वे लोग घट शुद्धि कहते थे। उसके बाद आसन-प्राणायाम, तब जाकर ध्यान में बैठो। यम-नियम अपने आप आ जाएगा।

उनका यह विचार तो अच्छा है। उन लोगों का कहना है कि मनुष्य का जीवन इतना छोटा है, साठ-पैंसठ साल में आदमी बूढ़ा होकर मर जाता है। ज्यादा-से-ज्यादा चालीस-पचास साल तक आदमी में ताकत रहती है। आज के जमाने में समझो कि पचास के बाद आदमी तैयार हो गया जाने के लिए। इधर दवाई, उधर दवाई, अस्पताल जाओ तो एपेण्डिक्स का ऑपरेशन कराओ–आदमी कमजोर हो गया है, ऐसे में वह क्या करेगा। इसके लिए वे लोग कहते हैं कि जीवन को थोड़ा-सा लम्बा बनाना चाहिए। नाथ सम्प्रदाय में इसके लिए क्रिया है, वह है पारे का प्रयोग। उसको पारा मारना या पारा शोधन कहते हैं। कहते हैं उससे कुछ हद तक उम्र बढ़ती है। यह जो पारे का प्रयोग है उसका आधार आयुर्वेद है।

पारे का प्रयोग आपने देखा है?

हाँ, हिमालय में तो डेढ़ सौ-दो सौ साल के साधु जीवित हैं। हम तो जानते ही हैं, बहुतों से मिले भी हैं। हाँ, इधर दिल्ली-कलकत्ता में नहीं मिलते, यहाँ तो साठ-सत्तर साल में आदमी को दिल का दौरा पड़ जाता है, सब मर जाते हैं। बड़े शहरों में बहुत धुआँ रहता है, जिससे आदमी बीमार पड़ता है। अस्पताल जाता है जहाँ डॉक्टर लोगों की कमाई होती है।

नाथ पंथियों का बहुत बड़ा सम्प्रदाय है। इनको कनफटा योगी भी कहते हैं। मुंगेर जाओगे तो वहाँ की लाइब्रेरी में कनफटा योगियों पर लिखा शोध ग्रन्थ देख सकते हो। वहाँ हमने खरीदकर रखी हुई है। उसमें कनफटा योगियों का पूरा इतिहास दिया हुआ है, कब और कहाँ शुरू हुआ, कैसे शुरू हुआ। ऐसी मान्यता है कि नाथ सम्प्रदाय के मूल भगवान शंकर हैं, उन्हीं से यह सम्प्रदाय चला है।

सम्राट् सिकन्दर भी तो किसी कनफटा योगी के पास गया था कुछ सीखने के लिए?

नहीं, ऐसी बात नहीं है। आज से दो-ढाई हजार साल पहले यूनान में बड़े अच्छे-अच्छे दार्शनिक पैदा हुए थे। उनमें एक बहुत बड़े दार्शनिक सॉक्रेटीज़ थे जिनको हिन्दुस्तान में सुकरात कहते हैं। वे गृहस्थ थे, बड़े ज्ञानी थे, हमेशा यही कहते थे कि अपने को जानो। सुकरात का एक शिष्य था प्लेटो और प्लेटो का शिष्य था अरिस्टॉटल, जिसे हिन्दुस्तान में अरस्तू कहते हैं। अरस्तू के समय मसीदोनिया में बीस-बाईस साल का एक लड़का दुनिया को जीतने का सपना देखता था। उसका नाम था सिकन्दर। वह बहुत बड़ी सेना लेकर यूनान से चला हिन्दुस्तान के लिए। उसे ऐसा मालूम पड़ा था कि हिन्दुस्तान में बहुत ज्ञानी ऋषि-मुनि रहते हैं। जब वह सेना के साथ यहाँ आया तो अपने साथ दार्शनिक लोगों को भी लाया। उसने पूरा ईरान पार किया, पूरा अफगानिस्तान पार किया, पूरा बलूचिस्तान पार किया और झेलम नदी के किनारे उसकी भिड़न्त हुई पोरस से। बहुत जबरदस्त लड़ाई हुई वहाँ।

जब झेलम किनारे सिकन्दर का पोरस से युद्ध हो रहा था उस समय बिहार में बहुत बड़ा साम्राज्य था महाराज महानन्द का। उसको मगध साम्राज्य कहते थे, जिसकी राजधानी पाटलीपुत्र थी। महानन्द ने अपने एक ब्राह्मण के साथ बदतमीजी की। ये ब्राह्मण चाणक्य के पिता थे। वास्तव में उनका

नाम चाणक्य था और जिसे हम आजकल चाणक्य कहते हैं, उसका नाम विष्णुगुप्त था। तो राजा ने चाणक्य के साथ बहुत बदतमीजी की, उनको मरवा दिया। तब विष्णुगुप्त ने मगध छोड़ दिया और तक्षशिला चला गया। तक्षशिला आजकल पाकिस्तान में है, एकदम सीमा पर। तक्षशिला में उस वक्त एक बहुत बड़ा विश्वविद्यालय था जहाँ आयुर्वेद, युद्ध कला, राजनीति, वेद-वेदान्त सब सिखाया जाता था। बड़े-बड़े पण्डित वहाँ रहते थे। तक्षशिला जाकर विष्णुगुप्त अर्थशास्त्र का पण्डित बन गया और अर्थशास्त्र सिखाने लगा। जब विष्णुगुप्त चाणक्य को पता चला कि यूनान से एक राजा हिन्दुस्तान पर कब्जा करने आया हुआ है, तब उसने एक लड़के को तैयार किया। वह लड़का दासीपुत्र था, कुंआरी माँ का बेटा, चन्द्रगुप्त। उसी चन्द्रगुप्त को तैयार किया और यूनानी सेनाओं के साथ भिड़ा दिया। सिकन्दर की सेना में बगावत हो गई, सिकन्दर को वापस जाना पड़ा।

जब सिकन्दर हिन्दुस्तान से लौटा तो एक जैन मुनि को साथ ले गया। यह बात किताबों में लिखी है। उसका नाम था कल्याण मुनि। उसको लेकर वह बेबिलोनिया आया, जो अभी ईराक में है। वहाँ उसके लिए आश्रम बनाना चाहता था। मगर सिकन्दर रास्ते में ही मर गया, या उसको मार दिया गया। अरिस्टॉटल और सिकन्दर के बीच में चिट्ठी-पत्री देखने से लगता है कि दोनों में कुछ खटपट चल रही थी। उसको शायद रास्ते में मार दिया गया। जब वह मर गया तब उसका एक सेनापति सेना लेकर दुबारा भारत आया। उसका नाम था सेल्यूकस। सेल्यूकस की चन्द्रगुप्त के साथ भिड़न्त हुई पाटलीपुत्र में और सेल्यूकस हार गया। तब उसने अपनी बेटी, हेलेना चन्द्रगुप्त को ब्याह दी। हिन्दुस्तान का यूनान से शादी का सम्बन्ध हो गया। चन्द्रगुप्त का पोता था अशोक, जिसका आधा खून हिन्दुस्तान का था और आधा खून यूनान का। वह बड़ा तगड़ा आदमी था, उसने दक्षिण भारत में गोलकुण्डा तक लड़ाइयाँ छेड़ दीं। कलिंग से लड़ाई करा दी, लाखों को मरवा दिया। अन्त में इतनी भयंकर हत्या देखकर उसका मन बदल गया और उसने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। जबकि चन्द्रगुप्त ने राज्य छोड़कर जैन धर्म में दीक्षा ले ली थी और मैसूर के एक मठ में रहने चला गया था।

अशोक की बेटी संघमित्रा और बेटे महेन्द्र ने दूसरे देशों में बौद्ध धर्म का प्रचार किया। जिस वटवृक्ष के नीचे भगवान बुद्ध को ज्ञान प्राप्त हुआ था, उसकी डाल लेकर श्रीलंका में लगाया उन्होंने। वहाँ से वे बलूचिस्तान,

अफगानिस्तान और ईरान गए और वहाँ जाकर बौद्ध धर्म का प्रचार किया। मैं तो अफगानिस्तान गया हूँ। हालाँकि अभी वहाँ इस्लाम धर्म है पर फिर भी गाँव-गाँव में बौद्ध मठ मिलते हैं। एक-दो नहीं, हर गाँव में मिलते हैं। वहाँ कोई बौद्ध भिक्षु या साधु नहीं हैं, बस खण्डहर हैं। जैसे किसी गिरजाघर, मस्जिद या मंदिर की एक खास बनावट होती है वैसे ही बौद्ध मठ की भी होती है। वैसी बनावट वहाँ देखने को मिलती है। अशोक के बाद बौद्ध धर्म हिन्दुस्तान में ज्यादा दिन नहीं रहा। अशोक के बाद गुप्त वंश के राजा आए।

जापान में जो बहुत बड़ा बुद्ध का मन्दिर है वहाँ भी कहते हैं कि उसी वट वृक्ष की शाखा यहाँ लगाई गई है जिसके नीचे भगवान बुद्ध को ज्ञान प्राप्त हुआ था।

नहीं, वह सत्य नहीं है। हम तुमको इतिहास बतलाएँ, जापान में बौद्ध धर्म हिन्दुस्तान से सीधा नहीं गया। हाँ, चीन में हिन्दुस्तान से सीधा गया है। बराबर सम्पर्क था, आचार्य पद्मसम्भव चीन गये, दीपांकर तिब्बत गये। चीन की राज सभा में पद्मसम्भव बैठते थे। संस्कृत की पढ़ाई होती थी वहाँ, पाली का पाठ होता था, भिक्षु होते थे। चीन से बौद्ध धर्म गया कोरिया। और कोरिया से गया है जापान। जब बौद्ध धर्म जापान पहुँचा तो वहाँ के लोगों को ये विचार पसंद आये। वहाँ के एक भिक्षु ने हिन्दुस्तान में आने का प्रयत्न किया। पर उसका जहाज रास्ते में डूब गया। एक व्यापारी ने हिन्दुस्तान आने की कोशिश की, तैयारी में वहीं मर गया। जापान के लोगों ने हिन्दुस्तान आने के लिए बहुत कोशिशें की, पर नहीं आ सके, क्योंकि उन्हें चीन समुद्र से आना पड़ता था और यह दुनिया में सबसे उपद्रवी समुद्र है। वहाँ रोज तूफान उठते हैं। इसलिए समुद्री मार्ग से नहीं आ सके। वे चीन से होते हुए थल मार्ग से भी नहीं आ सके, क्योंकि चीन और जापान के बीच बहुत खटपट चलती थी। उनके बीच कोई भी राजनैतिक सम्बन्ध नहीं था।

बहुत सालों तक जापान के लोगों ने हिन्दुस्तान में आने की कोशिश की, क्योंकि कोरिया से तो उन्हें अप्रत्यक्ष ज्ञान मिला था। वे प्रत्यक्ष ज्ञान चाहते थे। पर नहीं हो सका। तब जाकर जापान के लोगों ने चीन के साथ राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित किए, अपने लोगों को चीन भेजा, चीन में उनकी पढ़ाई हुई, चीन से बौद्ध धर्म जापान गया। याद रख लो, यह इतिहास है। बौद्ध धर्म सीधा यहाँ से जापान नहीं गया। हिन्दुस्तान में पूर्वी एशिया से जितने

भी यात्री आए, फाहियान, ह्वेनसांग, वगैरह सब चीनी थे। ह्वेनसांग तो बहुत मशहूर है, वह तो मुंगेर भी आया था। गज़ेट में लिखा है कि वह यहाँ देवघर भी आया था। उसने देवघर के मन्दिर के बारे में भी लिखा है, यह मन्दिर आदिवासियों का था, यहाँ आदि देवी की पूजा होती थी, बाद में दूसरे लोगों ने हथिया लिया। ह्वेनसांग ने सारे हिन्दुस्तान का दौरा किया था। राजा-महाराजाओं ने उसकी बहुत मदद की। यहाँ से वह ढेरों किताबें, ढेरों पाण्डुलिपियाँ ले गया। जब वह चीन लौट रहा था तो रास्ते में समुद्र में तूफान आ गया। जहाज भारी था, किसी ने कहा किताबें फेंक दो। ह्वेनसांग ने कहा किताब नहीं फेंकेंगे। तुम आदमियों को फेंक दो, वजन कम हो जाएगा। आदमी तो दुबारा भी पैदा हो जाएगा, किताब थोड़े न दुबारा पैदा होगी। इस तरह का आदमी था वह।

दुनिया में आज अपने को बड़ा कहने वाले जितने भी मुल्क हैं, चाहे अमरीका हो या इंग्लैण्ड या जर्मनी, वहाँ चार हजार साल पहले तो लोग नंगे रहते थे, उन्हें कपड़े पहनने, मकान बनाने का भी ढंग मालूम नहीं था। हिन्दुस्तान और चीन दुनिया के सबसे पुराने मुल्क हैं, इन्होंने कागज खोजा, कोयला, चीनी, चाय खोजी। जिस बारूद से आज वे लोग बम बना रहे हैं, वह सब यहाँ से गया है। मार्कोपोलो जब यहाँ यात्रा पर आया था तो अपने साथ बारूद ले गया। अब ये बम बना रहे हैं और हम को सिखा रहे हैं।

चीन और भारत बहुत पुराने देश हैं, और भगवान को तो इन्हीं लोगों ने खोजा है। आखिर भगवान भी तो बहुत बड़ी चीज है न? उनको भी तो किसी ने खोजा होगा न? क्या कुत्ते को मालूम है कि भगवान हैं? कुत्ता, हाथी, बिल्ली या घोड़ा, इनमें से किसी को भी मालूम नहीं कि भगवान हैं। सिर्फ इन्सान को पता चला कि भगवान हैं, यहाँ से लोगों को पता चला। पूरे का पूरा एशिया–चीन, हिन्दुस्तान, तिब्बत, बर्मा–ये एक जमाने में दुनिया के बहुत बड़े मुल्क थे, पर आपस में लड़-लड़ करके सब बिगाड़ दिया। हिन्दुस्तान तो सोने की चिड़िया कहलाता था। यह ऐसा देश है जहाँ पानी भी है, सूखा भी है, जंगल भी है, रेगिस्तान भी है, काला आदमी भी है, गोरा आदमी भी है, छोटा आदमी भी है, लम्बा आदमी भी है, साधु-महात्मा, चोर-डाकू, सभी रहते हैं यहाँ। यहाँ हिन्दुस्तान में छः मौसम होते हैं, यूरोप में दो भी नहीं, डेढ़ मौसम होता है–महा ठण्ढ और थोड़ी कम ठण्ढ। वहाँ क्या गेहूँ लगायेगा, क्या मकई लगाएगा, क्या टमाटर लगायेगा, उनके पास उपाय ही नहीं है।

यहाँ तो आदमी रास्ते से लकड़ी चुनकर, गाय के गोबर से शाम का खाना बना लेता है।

हिन्दुस्तान बहुत पुराना देश है, इसका इतिहास हजारों साल पुराना है। इसकी संस्कृति भी बहुत अच्छी है। बस इतना ही है कि हम लोगों के यहाँ थोड़ा-सी गरीबी है। पर एक बात याद रख लो कि जब पैसा आता है तो अपने साथ सब बुराइयाँ ले आता है। यह तुमको बता देते हैं। मल जहाँ जाएगा अपने साथ दुर्गन्ध ले जाएगा, उसी तरह जहाँ पैसा जाएगा वहाँ दुर्गुण जाएगा। अब दिल्ली में रोज अपराध होते हैं, यहाँ कुछ भी नहीं होता, क्योंकि पैसा ही नहीं है।

भगवान का हुक्म

गृहस्थ एक ही जगह जन्मता है एक ही जगह मरता है। लेकिन हम संन्यासी जहाँ जन्मते हैं वहाँ मरते नहीं। यह हमारा पहला सिद्धांत है। हम हमेशा इसी जगह रहेंगे, यह सोचकर हम यहाँ नहीं आए हैं। ऋषिकेश हमेशा रहेंगे, यह सोचकर भी हम वहाँ नहीं गए, और मुंगेर में भी यह सोच कर नहीं रहे कि बड़ा आश्रम है, बड़े आराम से जिन्दगी बीतेगी। ऐसा कभी नहीं सोचा।

हम ऐसा सोचते हैं कि साधु-संन्यासी को जब भी भगवान का हुक्म आ जाए उसे अपना झोला-झंडा उठा लेना चाहिए। मैं इस बात की गारंटी भी नहीं देता कि यहाँ कितने दिन रहूँगा। मुझे आज हुक्म आ जाए तो आज ही चला जाऊँगा। हम जमीन-जायदाद बनाने के लिए थोड़े ही यहाँ आए हैं। जमीन-जायदाद बनाना था तो जोरू-जत्था रखते। हम लोगों का तरीका दूसरा होता है। जिन्दगी में कितनी जगह छोड़ी, अपने माँ-बाप की जगह छोड़ी, गुरुजी की जगह छोड़ी। इस जगह को भी छोड़ सकते हैं।

स्त्रियों के अधिकार

मनुष्य जीवन में अधिकार भी है और कर्त्तव्य भी। बिना अधिकार और कर्त्तव्य के कोई जन्म लेता है क्या? पति मर गया तो पत्नी सब अधिकारों से वंचित हो गई, यह तो कोई तर्क नहीं हुआ। उससे केवल एक ही अधिकार छीना है–पुरुष से सम्बन्ध का अधिकार, बाकी अधिकार तो तुम नहीं छीन सकते। नए वस्त्र पहने, आभूषण पहने, नौकरी करे, पैसा कमाए, शुभ काम करे, कम उम्र हो तो फिर से शादी भी कर ले। मन न हो तो न भी करे, क्या फर्क

पड़ता है। बहुत-सी महिलाएँ बड़ी ही संवेदनशील होती हैं, दुबारा शादी नहीं करती हैं। बहुत अच्छा है। अगर कोई विधवा दुबारा शादी नहीं करना चाहे तो यह उसकी मर्जी है, जबरदस्ती थोड़े ही करा सकते हो।

लड़कियों को पढ़ाना बहुत जरूरी हो गया है। अभी रिपोर्ट निकली थी कुछ दिन पहले, हिन्दुस्तान में शून्य जनसंख्या वृद्धि केवल केरल में है। परिवार नियोजन की वजह से नहीं, बल्कि इसलिए कि केरल में हर लड़की पढ़ी-लिखी है। यहाँ के अस्पतालों में प्राय: सभी नर्सें केरल की हैं। तुम जर्मनी, अमरीका, ऑस्ट्रेलिया, कहीं भी जाओ, सब जगह केरल की लड़कियाँ मिलती हैं। पढ़-लिखकर टीचर बन जाती हैं, नर्सिंग का काम करती हैं, टेलिफोन ऑपरेटर का काम करती हैं।

हिन्दुस्तान में आबादी को अगर नियंत्रण में रखना है तो एक ही उपाय है–लड़कियों की शिक्षा। और वह पढ़ाई मैट्रिक तक तो निश्चित होनी चाहिए। अगर लड़की अच्छे नम्बर लाती है, तब उसके माँ-बाप, या समाज के किसी व्यक्ति या संस्था को उसे आगे पढ़ाने के लिए मदद करनी चाहिए। शादी तो सबकी होगी, शादी के बारे में कोई शंका या बहस नहीं है। पर शादी ही लड़की का एकमात्र संस्कार है, यह कहना गलत है। पहले के जमाने में लड़की के लिए शादी के सिवा कोई विकल्प नहीं था। आज लड़की के सामने दो विकल्प और हैं–शिक्षा और स्वावलम्बन, याने नौकरी-पेशा। तब माँ-बाप के लिए दहेज की चिंता अपने आप खत्म हो जाएगी। अगर तुम्हारी लड़की स्कूल में टीचर बन जाती है, वहाँ उसे महीने का तीन हजार रुपया ही मिले तो भी महीने में दो हजार तो बचा ही लेगी। साल में चौबीस हजार रुपया हो जाता है, तीन साल में सत्तर हजार हो जाता है। अपना दहेज साथ ले जाए। अपना पैसा है, कौन मना करता है। माँ-बाप के सिर पर बोझ क्यों बनेगी। लड़की का पैसा तुम थोड़े ही रखोगे घर में। वह तो उसका है, उसने कमाया है।

भगवान की कृपा से गाँव-देहात में आजकल कई लड़कियाँ बहुत तेज दिमाग वाली हैं। हमने दक्षिण भारत में गाँव की लड़कियों को देखा है। नई खोपड़ी है, कम्प्यूटर में, मशीनों में बहुत अच्छा काम करती हैं वे लोग। आज लड़कियों के लिए द्वार खुल गया है। नहीं तो हमारे यहाँ बुजुर्गों ने इनके लिए सब दरवाजे बन्द कर दिये थे। हमारी गाड़ी एक पहिये पर चल रही है। मर्द एक पहिया है और औरत दूसरा। दूसरा पहिया लाचार है। इसलिए समाज का विकास नहीं हो रहा है। देखा जाए तो औरत क्या नहीं कर सकती। माँ भी बन

सकती है, बहन भी बन सकती है, सलाहकार भी बन सकती है। स्त्री के पास तो बहुत बड़ी शक्ति है।

इसलिए हम लोगों को अपनी लड़कियों को मैट्रिक तक तो जरूर पढ़ाना चाहिए। उसके बाद उसे शिक्षक प्रशिक्षण दिलवाकर किसी प्राथमिक विद्यालय में नौकरी करवानी चाहिए। उसे बोलना चाहिए, बेटी, जब तुम्हें शादी करनी हो हमें बोल देना, और हमें भी जब ठीक लगे, हम तुमको बोल देंगे। आज के जमाने में लड़की पर शादी थोपना, यह तो लोकतंत्र के सिद्धान्त के खिलाफ है। उस लड़की की भी एक स्वतंत्र सत्ता है, उसे भी कहने का अधिकार है। दूसरी चीज यह कि अगर बहुत तेज दिमाग हो, 80-85% अंक मार रही हो, तब तो शादी को रोकना पड़ेगा। उसको बोलना, देखो बेटी, तुम पढ़ाई में तेज हो। हम कोशिश करते हैं किसी संस्था से अगर पैसे का इन्तजाम हो जाता है, छात्रावास का इन्तजाम हो जाता है, तो हम तुम्हें आगे पढ़ायेंगे। उस वक्त घर का जेवर बेचकर भी पढ़ाना चाहिए। क्योंकि लड़की कभी बेईमान नहीं होती।

लड़की की दो कमजोरियाँ हैं, और वही दो कमजोरियाँ उसका सम्बल भी हैं। लड़की को चाहिए स्थिति, जमना जिसको कहते हैं, और सुरक्षा। ये दो चीजें उसकी कमजोरियाँ हैं, और यही दो उसका बल भी है। स्थिरता के लिए, जमने के लिए वह कभी तुम्हारा घर नहीं छोड़ेगी, चाहे तुम उसे लात मारो या जूता मारो। स्त्री विवेक प्रधान होती है, जबकि मर्द पौरुष प्रधान होता है। स्त्री को अच्छे-बुरे की पक्की जानकारी रहती है, जिसको समझ-बूझ कहते हैं। इसलिए तुम लोग लड़कियों को खूब पढ़ाओ। जब तक हम हैं तब तक मेधावी बच्चों की हम जरूर मदद करेंगे। हम खुद नहीं करेंगे तो किसी को कह देंगे। हम तो बोलने में कमजोर नहीं हैं, हम तो कहेंगे समझ लो कि तुम्हारी एक लड़की और है।

लड़कियों पर बहुत ज्यादा रोक-टोक नहीं लगानी चाहिए। 'अरे चुप कर' यह सब नहीं बोलना चाहिए। भगवान ने पशु और मनुष्य में एक ही अन्तर बनाया। पशु बोल नहीं सकता, पर मनुष्य के स्वर यंत्र है, वह बोल सकता है। जो देखता है उसको समझा सकता है। जब वाणी जैसा एक अस्त्र मनुष्य के हाथ में आ गया तब लड़की बोलेगी क्यों नहीं? उसको बोलना चाहिए। लड़कियाँ तो स्वभाव से वाचाल होती हैं। बचपन में गलत भी बोल सकती हैं पर आगे जाकर सीख जाएँगी।

इक्कीसवीं शताब्दी

तीन साल के बाद नई शताब्दी शुरू हो रही है और यह आने वाली शताब्दी कम्प्यूटर की होगी। अमरीका के गाँवों में पटवारी नहीं होता, वे लोग सब जानकारी कम्प्यूटर पर रखते हैं। मेरे पास रिखिया का पूरा नक्शा और जानकारी कम्प्यूटर पर है। हमको तो घर-घर का पता रखना है, किसके घर में कौन पैदा हुआ, कौन मर गया, साल में हम कपड़ा वगैरह देते हैं। जाहिर है हमारे पास पूरी सूची होनी चाहिए।

कम्प्यूटर आ जाने से पूरी की पूरी कार्य प्रणाली बदल गई है। एक कार्यालय की सूचना बाकी सब कार्यालयों में अपने आप पहुँचती है। चपरासी से नहीं, फाइल से नहीं, कम्प्यूटर और इंटरनेट के माध्यम से। तुमने किसी से जमीन ली, उसे कार्यालय में दाखिल-खारिज कराया, यह जानकारी बाकी कार्यालयों के कम्प्यूटर में अपने आप इंटरनेट से आ जाती है। उस जमीन का क्षेत्रफल कितना है, प्लॉट संख्या क्या है, यह सब जानकारी कम्प्यूटर में रहती है। आजकल वहाँ सर्वेक्षण भी सैटेलाईट से होता है। भारत में वैसी व्यवस्था आने में अभी समय लगेगा। पर सैटलाईट से इतना जरूर पता चला है कि राजस्थान में दो नदियाँ बहती थी। सैटेलाईट से खींची तस्वीरों में उनका निशान मिला है। हमारे वेदों में उल्लेख भी आता है कि सरस्वती और दृशदवती, दो नदियाँ राजस्थान-गुजरात से बहती हुईं अरब सागर में मिलती थीं। मगर अब तो उन नदियों का कोई नामो-निशान नहीं है, केवल किताबों में नाम बाकी है, सरस्वती और दृशदवती। पर सैटेलाईट ने इस ऐतिहासिक तथ्य की पुष्टि की है कि वहाँ दो नदियाँ बहती थीं। उन नदियों का मार्ग भी मिल गया है।

हनुमान जी

हनुमान जी बहुत ही बुद्धिमान् थे, अति चतुर थे– *'विद्यावान गुणी अति चातुर'*–तभी वे भगवान राम का काम कर सके। वे संस्कृत के विद्वान् थे, काव्य प्रेमी थे, संगीत प्रेमी थे, नाच सकते थे, अखाड़े में दण्ड-बैठक कर सकते थे, और वकील की तरह रावण के सामने वाद विवाद भी कर सकते थे। वे गुणी थे, बहुत-सी योग्यताएँ थीं उनमें।

मजे की बात यह है कि राम जी को हनुमान जी जैसा सचिव मिला। क्योंकि राम जी स्वयं चतुर थे। तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में श्री राम

को 'चतुर शिरोमणि' कहा है। मतलब जितने भी चतुर थे उन सबमें वे सर्वोच्च थे। तो 'चतुर शिरोमणि' को 'अति चातुर' सचिव मिल गया। इसलिए *'राम काज करीबे को आतुर'*–हनुमान जी तुरन्त भगवान का काम कर देते थे। नहीं तो पूछते, 'रामजी, हिमालय पर्वत जाते हुए रास्ते में कोई मिल जाय तो क्या करूँगा?' नहीं, वे इतने होशियार थे कि कालनेमी को रास्ते में ठीक कर दिया। द्रोणाचल में जो प्रभारी था उसको भी उन्होंने ठीक-ठाक कर दिया। उधर अयोध्या के पास भरतजी को भी ठीक कर दिया, उसके लिए रामजी से सलाह लेने की जरूरत नहीं पड़ी।

–31 अक्टूबर, 1997



नोट

नोट

नोट

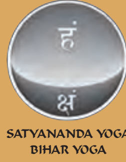


स्वामी सत्यानन्द सरस्वती का जन्म उत्तर प्रदेश के अल्मोड़ा ग्राम (उत्तरांचल) में सन् 1923 की मार्गशीर्ष पूर्णिमा को हुआ। उनमें बाल्यावस्था से ही आध्यात्मिक जीवन के प्रति झुकाव था और विलक्षण प्रतिभाएँ परिलक्षित होती थीं। 18 वर्ष की अवस्था में उन्होंने गुरु की खोज में घर छोड़ दिया। 1943 में उन्हें ऋषिकेश में अपने गुरु स्वामी शिवानन्द के दर्शन हुए। 12 सितम्बर 1947 को गुरु ने उन्हें परमहंस संन्यास में दीक्षित किया। वे 12 वर्ष गुरु की सेवा में रहे और आध्यात्मिक जीवन के हर आयाम में दक्षता प्राप्त की। तत्पश्चात् उन्होंने परिव्राजक संन्यासी के रूप में आठ वर्षों तक सम्पूर्ण भारत, अफगानिस्तान, बर्मा, नेपाल एवं श्रीलंका का भ्रमण किया। इस अवधि का उपयोग उन्होंने यौगिक तकनीकों को प्रतिपादित एवं परिष्कृत करने में किया, ताकि मानवता को कष्टों से त्राण मिल सके।

योग की प्राचीन पद्धति को आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने की आवश्यकता का अनुभव होने पर उन्होंने 1956 में अन्तर्राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल एवं 1963 में बिहार योग विद्यालय की स्थापना की। अगले 20 वर्षों तक विश्व भ्रमण करते हुए उन्होंने योग की पताका विश्व के कोने-कोने में फहरा दी और बिहार योग विद्यालय को योग की एक अग्रगण्य संस्था के रूप में ख्याति दिलायी। उन्होंने योग, तंत्र एवं आध्यात्मिक जीवन पर अस्सी से अधिक ग्रन्थों का प्रणयन किया।

'सत्यानन्द योग' एक ऐसी परम्परा बन गयी, जिसमें शास्त्रीय और अनुभवात्मक ज्ञान तथा आधुनिक दृष्टिकोण का सुन्दर समन्वय है। ग्राम्य-विकास की भावना से 1984 में उन्होंने दातव्य संस्था 'शिवानन्द मठ' की एवं योग पर वैज्ञानिक शोध की दृष्टि से 'योग शोध संस्थान' की स्थापना की। सन् 1988 में उपलब्धियों के शिखर पर पहुँचकर उन्होंने सबकुछ त्याग दिया और क्षेत्र संन्यास लेकर परमहंस संन्यासी की जीवन पद्धति अपना ली। सन् 1989 में उन्हें रिखिया आने का दैवी आदेश हुआ, यहाँ उन्होंने एकान्तवास करते हुए उच्च वैदिक साधनाएँ कीं। सन् 1991 में अपने पड़ोसियों को सुविधाएँ उपलब्ध कराने का आदेश मिलने पर उन्होंने आश्रम को उस क्षेत्र के अभावग्रस्त ग्रामीणों की सहायता करने की अनुमति दी। सन् 1995 में उन्होंने वैश्विक सुख, शान्ति एवं समृद्धि का संकल्प लेकर बारह वर्षीय राजसूय यज्ञ आरम्भ किया और सन् 2007 में 'सेवा, प्रेम और दान' को अपनी मुख्य गतिविधि बनाने का आदेश देकर रिखियापीठ की स्थापना की घोषणा की।

स्वामी सत्यानन्द 5 दिसम्बर 2009 की मध्यरात्रि में अपने शिष्यों की उपस्थिति में महासमाधि में लीन हो गये।



श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती झारखण्ड राज्य के अज्ञात-से गाँव, रिखिया में सन् 1989 में पधारे और यहाँ उन्होंने अपने आध्यात्मिक जीवन का एक नया अध्याय प्रारम्भ किया। गहन वैदिक तपस्याओं और साधनाओं को सम्पन्न कर उन्होंने भावी पीढ़ियों के लिए संन्यास परम्परा का एक उच्च आदर्श स्थापित किया। सन् 2007 में उन्होंने 'सेवा, प्रेम और दान' के आदर्श को व्यावहारिक रूप देने के उद्देश्य से रिखियापीठ की स्थापना की। 5 दिसम्बर, 2009 की मध्यरात्रि में वे यौगिक विधि से स्वेच्छानुसार महासमाधि में लीन हो गए।

यह पुस्तक श्री स्वामीजी द्वारा रिखियापीठ में अक्टूबर 1997 में दिये गये सत्संगों का संकलन है, जिनमें उन्होंने संन्यास परम्परा, भगवद् भक्ति, योग, ध्यान, सेवा, आरोग्य, ग्रामीण विकास, बुनियादी शिक्षा, पौराणिक इतिहास तथा अर्थशास्त्र जैसे अनेक प्रासंगिक विषयों पर अपना मौलिक चिंतन प्रस्तुत किया है। श्री स्वामीजी के व्यावहारिक तथा प्रेरक विचार जीवन में प्रकाश खोजते सभी जिज्ञासुओं को एक नयी दिशा और ऊर्जा प्रदान करते हैं।



[bar code here]

ISBN : 978-93-81620-16-8